वर्ष 2025 अंक 4

पुराविज्ञान स्मारिका

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की राजभाषा पत्रिका

1946

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्थान,
भारत सरकार, नई दिल्ली
http://www.bsip.res.in

भारत का संविधान, अनुच्छेद 351

'संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।'

Constitution of India, Article 351

'It shall be the duty of the Union to promote the spread of the Hindi language, to develop it so that it may serve as a medium of expression for all the elements of the composite culture of India and to secure its enrichment by assimilating without interfering with its genius, the forms, style and expressions used in Hindustani and in the other languages of India specified in the Eighth Schedule, and by drawing, wherever necessary or desirable, for its vocabulary, primarily on Sanskrit and secondarily on other languages.'

पुराविज्ञान स्मारिका

वर्ष 2025 अंक 4

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की राजभाषा पत्रिका

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्थान, भारत सरकार, नई दिल्ली

http://www.bsip.res.in

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ-226007, उत्तर प्रदेश, भारत

संरक्षक एवं प्रकाशक

निदेशक

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान

53, विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ-226007, उत्तर प्रदेश, भारत

दूरभाष : +91-522-2740470 / 2740413 / 2740011 / 2740865

फैक्स : +91-522-2740485 / 2740098

ई-मेल : director@bsip.res.in

वेबसाइट: http://www.bsip.res.in

संपादन एवं संकलन

डॉ.(श्रीमती) पूनम वर्मा, विज्ञानी 'ई', बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

सह-संपादन

डॉ.(श्रीमती) स्वाति त्रिपाठी, विज्ञानी 'ई', बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

डॉ.(श्रीमती) नीलम दास, विज्ञानी 'ई', बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

टंकण सहायता

डॉ.(श्रीमती) पारुल दत्त सक्सेना

प्रकाशन में विशेष सहयोग

डॉ.सैयद राशिद अली

प्रस्तुति

राजभाषा कार्यान्वयन समिति तथा प्रकाशन इकाई,

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

सितम्बर 2025

नोट: पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखकों के निजी विचार हैं। इससे संपादक या संस्थान कि सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका की लोक उपयोगिता की दृष्टि से कुछ छायाचित्र इंटरनेट से पुनर्मुद्रित किए गए है।

निदेशक की कलम से .....

भारत सरकार की राजभाषा नीति के अनुरूप बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान द्वारा वार्षिक राजभाषा गृह-पत्रिका *'पुराविज्ञान स्मारिका'* का चतुर्थ अंक प्रकाशित किया जा रहा है। राजभाषा हिन्दी राष्ट्र की एकता, अखंडता और सांस्कृतिक धरोहर की संवाहक होने के साथ-साथ वैज्ञानिक विषयों को सरल एवं बोधगम्य रूप में समाज तक पहुँचाने का प्रभावी माध्यम भी है। प्रशासनिक एवं वैज्ञानिक कार्यों में हिन्दी का प्रयोग हमारी राष्ट्रीय प्रतिबद्धता को और अधिक सशक्त बनाता है।

'पुराविज्ञान स्मारिका' केवल संस्थान की गतिविधियों का दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह हमारे वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों और शोधार्थियों की रचनात्मकता एवं अकादमिक दृष्टिकोण का प्रतिबिंब है। यह पत्रिका विज्ञान और समाज के मध्य एक सशक्त संवाद स्थापित करने का माध्यम है। पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु मैं संपादक डॉ. पूनम वर्मा एवं उनकी संपादकीय टीम, राजभाषा कार्यान्वयन समिति तथा सभी सहयोगी लेखकों का आभार व्यक्त करता हूँ। मुझे विश्वास है कि यह अंक पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक, रोचक एवं प्रेरणादायी सिद्ध होगा।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'पुराविज्ञान स्मारिका' का यह अंक पाठकों के लिए न केवल ज्ञानवर्धक और रोचक होगा, बल्कि यह उन्हें हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक लेखन और अध्ययन की प्रेरणा भी देगा। इस प्रकार की पत्रिकाएँ संस्थान की बौद्धिक ऊर्जा, अकादमिक योगदान और सांस्कृतिक सशक्तिकरण की प्रतीक होती हैं। आशा है कि आने वाले वर्षों में भी यह पत्रिका अपने उद्देश्य की पूर्ति करती रहेगी और हिन्दी को वैज्ञानिक अनुसंधान एवं नवाचार की भाषा के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

संस्थान के सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों से मेरा आग्रह है कि वे भविष्य में भी इसी प्रकार पत्रिका की समृद्धि और निरंतरता में सक्रिय योगदान देते रहें। मुझे विश्वास है कि सामूहिक प्रयासों से 'पुराविज्ञान स्मारिका' संस्थान की गौरवमयी पहचान के रूप में उत्तरोत्तर प्रगति करती रहेगी और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा-स्रोत बनेगी।

प्रो. महेश जी. ठक्कर

निदेशक
एवं
अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति
बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है।

— मैथिलीशरण गुप्त

संपादक की कलम से .....

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ की वार्षिक राजभाषा गृह-पत्रिका 'पुराविज्ञान स्मारिका' का चतुर्थ अंक पाठकों को समर्पित करते हुए मुझे विशेष संतोष एवं प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान सदैव से न केवल वैज्ञानिक अनुसंधान में, बल्कि हिन्दी भाषा के प्रोत्साहन और प्रसार में भी अग्रणी रहा है। इस पत्रिका का उद्देश्य वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों को सहज एवं बोधगम्य भाषा में प्रस्तुत कर विज्ञान को समाज से जोड़ना है। साथ ही, यह पत्रिका संस्थान से जुड़े वैज्ञानिकों, शोधार्थियों और कर्मचारियों की सृजनात्मकता और साहित्यिक प्रतिभा को अभिव्यक्ति का मंच भी प्रदान करती है।

इस अंक में सामान्य व समसामयिक लेख, शोध-सार, तकनीकी लेख, कविताएँ तथा संस्थान की विविध गतिविधियों का संकलन किया गया है। विशेष रूप से यह संतोष का विषय है कि हमारे वैज्ञानिकों एवं शोधार्थियों ने अपने अनुसंधान एवं तकनीकी कार्यों को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर राजभाषा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दिखाई है। शोध-प्रबंधों के सारांश, स्वरचित कविताएँ और संस्थागत अभियानों के सचित्र विवरण ने पत्रिका को और अधिक समृद्ध बनाया है।

मैं इस अंक की सफलता में योगदान देने वाले सभी लेखकों, शोधार्थियों और कर्मचारियों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। विशेष रूप से संपादकीय मंडल के सह-संपादक डॉ. स्वाति त्रिपाठी एवं डॉ. नीलम दास के सहयोग को रेखांकित करना चाहूँगी, जिनकी प्रतिबद्धता और परिश्रम से यह अंक साकार हो सका है। मुझे विश्वास है कि *'पुराविज्ञान स्मारिका'* का यह अंक पाठकों के लिए न केवल ज्ञानवर्धक होगा, बल्कि हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहन देने में भी सहायक सिद्ध होगा।

पाठकों से विनम्र निवेदन है कि वे पत्रिका की सामग्री पर अपने मूल्यवान सुझाव अवश्य प्रेषित करें, ताकि आगामी अंकों को और भी प्रभावी, उपयोगी तथा रुचिकर बनाया जा सके।

डॉ. पूनम वर्मा

विज्ञानी 'ई'

एवं

संयोजिका, राजभाषा कार्यान्वयन समिति

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

हिंदुस्तान की भाषा हिंदी है और उसका दृश्यरूप या उसकी लिपि सर्वगुणकारी नागरी ही है।

—गोपाललाल खत्री

देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।

— रविशंकर शुक्ल

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

महेश जी. ठक्कर iii

संपादक की कलम से

पूनम वर्मा v

अतिथि की लेखनी

कार्यालयी हिंदी बनाम प्रयोजनमूलक हिंदी: स्वरूप एवं महत्व 1

प्रो. हेमांशु सेन

अश्वगंधा: आय सृजन हेतु एक चमत्कारी औषधीय पौधा 5

अमृतेश चंद्र शुक्ल और हर्षिता गौरव

पर्यावरण में आर्सेनिक: स्रोत, विषाक्तता, मानव तथा वनस्पति पर इसका प्रभाव 14

आदित्य आभा सिंह, नौशाद अहमद, अरविन्द कुमार सिंह

उत्तराखंड की जल परंपरा की अनूठी पहचान – 'नौला': जल संस्कृति और जल विज्ञान की लुप्त होती राष्ट्रीय धरोहर 22

मोहित जोशी

अच्छे स्वास्थ्य से अच्छे वाइब्स तक: स्वस्थ जीवनशैली के माध्यम से सकारात्मकता का विकास 25

देवेश श्रीवास्तव

सामान्य-समसामयिक लेख

राष्ट्र-अभिमान और मानवीय औदात्य में लिपटी वैज्ञानिक चेतना : बीरबल साहनी 28

रणधीर संजीवनी

सूक्ष्म से विकराल: प्लास्टिक प्रदूषण का बढ़ता खतरा और बचाव 33

डॉ. स्वाति त्रिपाठी

मैं वृक्ष नहीं इतिहास हूँ! 38

दीक्षा

रंगों का अद्भुत रहस्य: प्रकाश और वर्णक क्यों भिन्न सिद्धांतों का पालन करते हैं 41

शिवाली श्रीवास्तव

कार्बन के विविध रंग: प्रकृति और जलवायु के विशेष संदर्भ में 43

आनंद राजोरिया

रोग नहीं योग बड़ा है 46

अशोक कुमार

शोध सार

राजस्थान के जैसलमेर क्षेत्र में परागकणों और जीवाश्मों के माध्यम से भूवैज्ञानिक अतीत की परतों का अध्ययन 48

डॉ. राज कुमार और डॉ. नीलम दास

मध्य इओसीन जलवायु उत्कर्ष (MECO) के दौरान उष्णकटिबंधीय वर्षावनों की पारिस्थितिकीय प्रतिक्रिया: परागविज्ञान साक्ष्य द्वारा कच्छ बेसिन से ग्लोबल वॉर्मिंग का पुरातन अध्याय 50

डॉ. पूनम वर्मा और नाज़िम देवरी

पश्चिम भूमध्यरेखीय हिंद महासागर में गत ~412 हजार वर्षों के दौरान मिश्रित परत की जलगतिकी और उत्पादकता में परिवर्तन: प्लवक फोरामिनिफेरा के जीवाश्मों के समस्थानिक आंकड़ों के आधार पर अध्ययन 53

बृजेश कुमार एवं पवन गोविल

अंतिम हिमानी आधिकतम (लास्ट ग्लेसियल मैक्सिमम-LGM) के पश्चात मध्य भारतीय के कोर मानसून क्षेत्र में वनस्पति गतिकी तथा मानसूनी जलवायु परिवर्तन....... 55

मोहम्मद फ़िरोज़ क़मर

भूमध्य रेखा-उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में लघु हिमयुग का अनुगमन: तटीय दक्षिण-पश्चिम भारत से बहु-प्रतिपत्री अंतर्दृष्टि....... 60

विश्वजीत ठाकुर और पूजा तिवारी

लगभग पिछले 8 हज़ार वर्षों में भारत के मध्य हिमालय स्थित कुमाऊं क्षेत्र में पशु शाकचारण में वृद्धि 64

मोहम्मद फ़िरोज़ क़मर

हिमालयी क्षेत्र में भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून: रेणुका झील में परागकणों के आधार पर 7500 वर्षों का जलवायु इतिहास....... 69

अनुपम नाग एवं अंजलि त्रिवेदी

निचले गंगा मैदानों में लौह युगीन पुराआहार संस्कृति: उरेन, लखीसराय, बिहार से एक पुरातात्विक अध्ययन 72

रुचिता यादव

भारतीय उपमहाद्वीप में जलवायु परिवर्तन के अतीत और भविष्य परिदृश्यों के संदर्भ में टेकोमेला अंडुलाटा की संभावित पारिस्थितिक प्रतिक्रिया का मॉडलिंग अध्ययन....... 75

जेरीम तम्पान एवं ज्योति श्रीवास्तव

लद्दाख के ऊँचाई वाले गर्म जलस्रोतों से प्राप्त औषधीय जैव सक्रिय यौगिकों का संक्षिप्त अध्ययन....... 77

डॉ. आरिफ हुसैन अंसारी

तकनीकी लेख

बोरिंग बिलियन (1.8 से 0.8 अरब वर्ष पूर्व) और प्रारंभिक जटिल जीवन का विकास की खोज....... 79

डॉ. वीरू कान्त सिंह

महासागरीय एनॉक्सिक इवेंट्स (OAES): भारतीय अभिलेख और भविष्य की संभावनाएं....... 83

आभा सिंह एवं प्रेम राज उद्दंडम

होलोसीन युग: जलवायु, महत्व एवं आवश्यकता....... 86

डॉ . अमित कुमार मिश्र

कविताएँ

अतीत की गहराईयां....... 88

साक्षी सिंह

युग का आरंभ....... 88

साक्षी सिंह

ज्ञान और विज्ञान....... 89

उज्ज्वल त्रिपाठी

वृक्ष की कहानी पुराविज्ञान की ज़ुबानी !....... 89

दीक्षा

दादी 90

अमित कुमार मिश्र

हमारा संस्थान....... 91

आभा सिंह

ओ आसमां वाले 91

आभा सिंह

राजभाषा हिन्दी कार्यान्वयन की गतिविधियाँ....... 92

क्षेत्रीय अभियान की झलकियां....... 100

जनसंपर्क एवं अन्य गतिविधियाँ 107

शोध प्रबंध सारांश 115

हिन्दी के प्रयोग के लिए वर्ष 2025-26 का वार्षिक कार्यक्रम 122

अतिथि की लेखनी

कार्यालयी हिंदी बनाम प्रयोजनमूलक हिंदी: स्वरूप एवं महत्व

कार्यालयी हिंदी अथवा प्रयोजनमूलक हिंदी की अवधारणा का विकास हिंदी को राजभाषा रूप में प्रतिष्ठित करने के पश्चात हुआ। भारतीय संविधान द्वारा 14 सितंबर सन 1949 को हिंदी हमारे देश की राजभाषा के रूप में अधिकृत की गई। हिंदी को राजभाषा रूप में प्रतिष्ठित करने के पश्चात उसे कार्यालयी रूप से सक्षम बनने की आवश्यकता महसूस हुई। इस हेतु हिंदी भाषा का जो रूप विकसित किया गया उसे **प्रयोजनमूलक हिंदी** अथवा **कामकाजी हिंदी** अथवा **कार्यालयी हिंदी** आदि नामों से अभिहित किया गया। वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति के वर्तमान समय में भारत की राजभाषा हिंदी जिस भाषिक रूप में अपनी सार्थक उपस्थिति सिद्ध कर रही है, भाषा का वही रूप है – 'प्रयोजनमूलक हिंदी'। प्रयोजनमूलक एक पारिभाषिक शब्द है, जिसकी व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए दंगल झाल्टे जी लिखते हैं – "प्रयोजनमूलक हिंदी के संबंध में 'प्रयोजन' विशेषण में मूलक उपसर्ग लगने से प्रयोजनमूलक शब्द बना है। प्रयोजन से तात्पर्य है उद्देश्य अथवा प्रयुक्त (purpose of use)। प्रयोजन का संबंध भाषा में उसकी प्रयोजनीयता (applicability) से जुड़ा हुआ है तथा मूलक उपसर्ग से तात्पर्य है - आधारित (based on or depending on)। अतः प्रयोजनमूलक भाषा से तात्पर्य हुआ किसी विशिष्ट उद्देश्य के अनुसार प्रयुक्त भाषा।"[1]

प्रयोजनमूलक हिंदी एक पारिभाषिक शब्द है। अतः प्रयोजन शब्द के विभिन्न अर्थ होने के बावजूद प्रयोजनमूलक हिंदी, विशिष्ट क्षेत्र हेतु विशिष्ट उद्देश्य अर्थ को संवहित करेगी। उसके इस विशिष्ट उद्देश्य का उल्लेख करते हुए संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य एवं कर्मठ हिंदी सेवी श्री मोटुरि सत्यनारायण ने लिखा है – "अखिल भारतीय मुद्रा के समान प्रयोजनमूलक हिंदी का ध्येय देश में ऐसे समाज के निर्माण में योगदान करना है और यह समाज सांस्कृतिक तत्वों के विकास के उपकरण के रूप में होगा, जो राष्ट्रीय एकता की नींव को मजबूत बनाएगा। हिंदी को हेतु भाषाओं के साथ मिलकर यह प्रयोजनमूलक कार्य करना है। प्रादेशिक भाषाओं के इस साहचर्य से हिंदी की क्षमता और दक्षता बढ़ेगी, जिससे वह संविधान में निर्दिष्ट सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति में समर्थ हो सकेगी।"[2]

समाजिक संस्कृति की अभिव्यक्ति के साथ ही, उसके रोजगारपरक तथा प्रायोगिक स्वरूप को उद्घाटित करते हुए प्रयोजनमूलक हिंदी के मर्मज्ञ डॉ॰ दंगल झाल्टे लिखते है – "प्रयोजनमूलक हिंदी से तात्पर्य है, हिंदी का वह प्रयुक्तिपरक विशिष्ट रूप जो विषयगत, भूमिकागत तथा संदर्भगत प्रयोजन के लिए विशिष्ट भाषिक संरचना द्वारा प्रयुक्त किया जाता है और जो सरकारी प्रशासन तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के अनेकविधि क्षेत्रों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम सिद्ध होता है।"[3]

प्रयोजनमूलक हिंदी के समर्थकों एवं मर्मज्ञों ने इसे जीवन की आवश्यकता से जोड़ कर देखा है| मोटूरि सत्यनारायण के अनुसार "जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लायी जाने वाली हिंदी ही प्रयोजनमूलक हिंदी है।"[4]

वस्तुतः अपने पारिभाषिक रूप में प्रयोजनमूलक हिंदी, हिंदी को समृद्ध और सक्षम बनाने की एक सार्थक पहल है। जिसमें वह साहित्य के अतिरिक्त तकनीक, विधि, विज्ञान, कार्यालय और मीडिया के सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज कर, सफलता पूर्वक कार्य करते हुए, हिंदी भाषा पर लगने वाले आरोपों और उसकी सीमाओं का निराकरण करने का प्रयास कर रही है। वस्तुतः राजभाषा के रूप में हिंदी, कुछ प्रदेशों, सरकारी कार्यालयों और संविधान तक ही सीमित रह गयी है। देश, राज्य, क्षेत्र, विषय, विधा, और तकनीक के लिए हिंदी उपयुक्त बन सके, इस हेतु हमें प्रयोजनमूलक हिंदी की आवश्यकता है। हिंदी तकनीकी विषयों और अन्य विशिष्ट क्षेत्रों में अंग्रेजी तथा अन्य विकसित भाषाओं की तुलना में पीछे नजर आती है। विश्व की अन्य विकसित भाषाओं के समतुल्य बनने के लिए हिंदी को सक्षम और सामर्थ्यवान बनना होगा। हिंदी भाषा का यह सशक्तीकरण दो प्रकार से सम्भव है -

1. अन्य भाषाओं के विशिष्ट शब्दों हेतु पारिभाषिक शब्दों के निर्माण द्वारा
2. अंग्रेजी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं के चलन में आये शब्दों को आत्मसात कर

परन्तु इस प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मूलतः यह भाषिक प्रयोग है अतः शब्द निर्माण किया जाये अथवा आत्मसातीकरण, किसी भी स्थिति में, भाषा की मूल प्रवृत्तियों, सरलता, सुबोधता, प्रवाह, गतिशीलता आदि को नहीं छोड़ा जा सकता। इस पूरी प्रक्रिया से दो लाभ होंगे -

1. हिंदी भाषा अन्य विकसित भाषाओं के समतुल्य बनेगी।
2. हिंदी और अन्य प्रादेशिक भाषाओं के बीच पनप रही दूरियाँ समाप्त होंगी।

हिंदी भाषा की सजीवता बनाये रखने तथा उसको विकसित भाषा बनाने में प्रान्तीय भाषाओं का सहयोग लेने से, प्रादेशिक भाषाओं को भी अपने दायित्व की पूर्ति की संतुष्टि होगी, और हिंदी वास्तविक रूप से राष्ट्रीय स्वरूप धारण कर पाएगी। किसी भी देश के विकास में भाषा का बहुत योगदान होता है। एक समर्थ और सक्षम राजभाषा की उन्नति का द्वार खोलती है। जब हमारी भाषा, दुनिया की सबसे सामर्थ्यवान भाषाओं में से एक थी तब एक से बढ़कर एक वैज्ञानिक, गणितज्ञ, अन्वेषक, समाजशास्त्री, चिकित्सक, राजनीतिज्ञ और चितक इस धरती पर पैदा हुए। जिन्होंने ज्ञान और शोध की दिशा

में नवीन दृष्टि दी। भारत गुलाम हुआ और भाषा गुलाम हुई, तब से हमारी भाषा इतनी सक्षम और समर्थ नहीं बन पाई कि वह हर क्षेत्र में अपनी सार्थक अभिव्यक्ति कर सके।

सर्वमान्य सत्य है कि व्यक्ति सोचने और स्वप्न देखने का कार्य अपनी मातृभाषा में करता है |अतः हिंदी को इतना सहज ,सरल, समावेशी और सक्षम बनाना होगा कि हर क्षेत्र और विषय का विद्वान - हिंदी में ही सोचना पसंद करें, परिकल्पना करें, प्रयोग करें और निष्कर्ष प्राप्त करें, तभी हम ऐसे नवीन शब्द निर्मित कर पाएंगे जिसकी जरूरत दुनिया की अन्य भाषाओं को होगी। आधुनिक समय में जो भी अनुसंधान हमारे देश में होते हैं प्रायः उनकी भाषा अंग्रेजी ही होती है अर्थात् स्वयं द्वारा किए गए अन्वेषणों में भी हमारी भाषा कमजोर रह जाती है और हमें हिंदी में उनके प्रयोग के लिए भी पारिभाषिक शब्द बनाने पड़ते हैं। बहुत सी भारतीय कम्पनियाँ जैसे,'इन्फोसिस', 'एटरटेल', 'रिलायन्स' आदि अपने नाम के समान काम भी अंग्रेजी में ही कर रही हैं, कारण इन कम्पनियों का शौक नहीं वरन् वैश्विक स्तर पर पकड़ बनाने की आवश्यकता है।

हिंदी की यह स्थिति किसी भाषिक कमी के कारण नहीं वरन् परिस्थितियों के कारण है। देश के गुलाम होने के साथ राजकाज, तकनीक आदि विशिष्ट क्षेत्रों में कार्य करने की दक्षता, तत्कालीन राजभाषा को मिली। हिंदी का वर्तमान गद्य रूप तो आधुनिक काल की देन है। इतनी अल्प अवधि में हिंदी ने स्वयं को बहुत प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया है। यदि हम गुलाम न होते, तो जो भी हमारी राजभाषा होती वह बहुत सक्षम और व्यवस्थित होती, क्योंकि उसी में अब तक हमारा समस्त कार्य सम्पदित होता रहता।

हमारे देश के प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानी और प्रतिष्ठित पत्रकार श्री गणेशशंकर विद्यार्थी का कथन इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है "मुझे देश की आजादी और भाषा की आजादी में से किसी एक को चुनना पड़े तो मैं निःसंकोच भाषा की आजादी चुनूँगा क्योंकि मैं फायदे में रहूँगा। देश की आजादी के बावजूद भाषा की गुलामी रह सकती है लेकिन अगर भाषा आजाद हुई तो देश गुलाम नहीं रह सकता।''[5]

इसमें संदेह नहीं कि हमारे इन भविष्यदर्शी नायकों की चिंता कितनी सटीक थी। वस्तुतः प्रयोजनमूलक हिंदी इसी भाषागत आजादी की ओर ले जाने का प्रयास है। प्रयोजनमूलक हिंदी के मुख्य रूप से तीन तत्व हैं - **पारिभाषिक शब्दावली, अनुवाद प्रक्रिया** और **भाषिक संरचना**। इन तीनों तत्वों के संयोग से हिन्दी, प्रयोजनमूलक रूप धारण कर, हिंदी समस्त निराकरण का प्रयास कर रही है। प्रयोजनमूलक हिंदी की प्रमुख विशेषताएं है - **अनुप्रयुक्तता, वैज्ञानिकता, रोजगारपरकता, भाषिक वैशिष्ट्य, सुबोधता, समाजिकता**।

इस प्रकार प्रयोजनमूलक हिंदी स्वरूप से रोजगारपरक है। यह हिन्दी के साहित्यिक रूप से थोड़ी भिन्न अवश्य है, परन्तु उसकी विरोधी नहीं, अपितु उसकी अनुजा और सहोदरा है। प्रयोजनमूलक हिंदी, हिंदी के मौलिक उद्देश्य से कहीं मतभेद नहीं रखती, हाँ उसकी सीमाओं को दूर करने के प्रयास में उसके स्वरूप में तनिक भिन्नता है। वस्तुतः अनुप्रयुक्त, वैज्ञानिक, रोजगारपरक, कार्यालयी और भाषिक वैशिष्ट्य से युक्त हिंदी प्रयोजनमूलक है।

भाषा के इन सभी रूपों में एक ही प्रमुख विशेषता होती है - सुबोधता। कार्यालय तथा ऐसे सभी क्षेत्रों में भाषा के संस्कृतनिष्ठ, साहित्यिक और परिमार्जित रूप की तुलना में बिल्कुल सरल, सुबोध और सहज भाषा का प्रयोग अधिक उपयुक्त होता है। इन क्षेत्रों में वर्तनी और व्याकरणगत दोष तो चल सकता है, परन्तु क्लिष्ट और दुर्बोध भाषा नहीं। हिंदी सेवी और हिंदी प्रेमियों के लिए यही स्थिति कष्टकारी होती है। परंतु यह भी सत्य है कि शुद्ध लिखने की बाध्यता में न लिखने से तो, अशुद्ध लिखना श्रेयस्कर है, कम से कम हिंदी लेखन की प्रवृत्ति तो बढ़ेगी। एक लोकप्रिय उक्ति है- *'करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान'*। अतः हिंदी प्रेमी यदि सजग बने रहें तो प्रयोग करते-करते ऐसी अशुद्धियाँ भी दूर हो जाएँगी।

हिंदी भाषा को वैज्ञानिक, रोजगारपरक और अनुप्रयुक्त बनाने की जो परिकल्पना, संविधान निर्मात्री सभा के सदस्यों ने की थी, उस दिशा में केन्द्र सरकार और राजभाषा निदेशालय ने अनेक प्रयास किए।आजादी के बाद से हिंदी के पारिभाषिक शब्दों की समस्या निरंतर बनी हुई है। राजभाषा अधिनियम 1976 के साथ तथा बाद में भी इस दिशा में अनेक प्रयास हुए। इन प्रयासों का विवरण प्रस्तुत करते हुए 13 अक्टूबर, 2011 को प्रमुख दैनिक हिंदी पत्र 'हिन्दुस्तान' में खबर छपी कि "सरकारी कामकाज में इस्तेमाल होने वाली हिंदी को सरल बनाने के लिए विशेष मुहिम शुरू की गयी है। इसके तहत गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग की ओर से जारी निर्देश में कहा गया है कि सरकारी विभाग ऐसी हिंदी लिखें जो बोलचाल में इस्तेमाल होती हो और जिसे लोग आसानी से समझ सकें।"[6] यह लेख इसी दिशा में किया जाने वाला प्रयास है। पत्र लिखता है कि – "गृह मंत्रालय ने 17 मार्च 1976 को जारी कार्यालय ज्ञापन में कहा था कि हिंदी ऐसी होनी चाहिए, जिसे लिखने वाला ही नहीं बल्कि पढ़ने वाला समझ सके। इसके बाद 27 अप्रैल 1988 को नया आदेश जारी हुआ कि हिंदी को आम लोगों की समझ लायक बनाया जाये। 30 जून 1999 तथा 19 जुलाई 2010 में ऐसे आदेश जारी हुए लेकिन सुधार नहीं हुआ।"[7] नई नियमावली में हिंदी में प्रयुक्त होने वाले अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी, तुर्की आदि सभी भाषा के शब्दों को अपनाने की बात की गई है। परन्तु इन सभी प्रयासों के अतिरिक्त ध्यातव्य तथ्य यह है कि - हिंदी एक 'भाषिक समूह' है। अपने स्वरूप से ही वह शब्दों को आत्मसात करने की प्रबल शक्ति रखती है। उत्पत्ति के आधार पर हिंदी की सम्पूर्ण शब्द राशि को देखा जाए तो इसमें कुल पाँच प्रकार के शब्द हैं - 1 - **तत्सम** अर्थात संस्कृत के समान, 2 - **तद्भव** अर्थात् संस्कृत शब्दों से उत्पन्न शब्द, 3 - **देशज** - क्षेत्री भाषाओं के शब्द, 4 - **विदेशी** - अन्य विदेशी भाषाओं के शब्द तथा 5 - **संकर** - दो भिन्न भाषाओं से मिलकर बने शब्द। इस प्रकार हिंदी समिति, केन्द्र सरकार अथवा राजभाषा निदेशालय द्वारा जारी नियमावली, हिंदी के 'भाषिक समूह' के स्वरूप को प्रतिष्ठित करती है।

वस्तुतः कोई भी भाषा उतनी ही समर्थ और सक्षम समझी जाती है, जितनी अधिक उसमें दूसरी भाषा के शब्दों को रचा - पचा लेने की क्षमता हो। हिंदी के समर्थकों को हिंदी की इस शक्ति का लाभ लेना चाहिए न कि उससे आशंकित होना चाहिए। हिंदी इतनी सामर्थ्यवान भाषा है कि किसी भी

भाषा के शब्द को पहले आने दीजिए, हिदी की चाल में ढ़लने दीजिए, फिर देखिए उसका रूप, कि जैसे रिक्रूट-रंगरूट, लैनटर्न-लालटेन, अलेक्जेन्डर-सिकन्दर और प्लेटो-अफलातून हो जाता है।

हिदी को व्याकरण की दृष्टि से पुष्ट बनाने का गुरूतर कार्य करने वाले हिदी के निष्काम कर्मयोगी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी भी हिदी में शब्द ग्राहकता को अनिवार्य मानते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि "हिदी भाषा जीवित भाषा है। जो लोग उसे किसी परिसीमित सीमा के भीतर ही आबद्ध करना चाहते हैं वे मानो उसका उपचय - उसकी कलेवर वृद्धि नहीं चाहते। जीवित भाषाओं के विषय में इस प्रकार की चेष्टा, बहुत प्रयास करने पर भी सफल नहीं हो सकती। संसार में शायद ऐसी एक भी भाषा न होगी जिस पर, संपर्क के कारण, अन्य भाषाओं का प्रभाव न पड़ा हो और अन्य भाषाओं के शब्द उसमें सम्मिलित न हो गए हों। अंग्रेजी भाषा संसार की प्रसिद्ध और समृद्ध भाषाओं में है, उसी को देखिए। उसमें लैटिन, ग्रीक, फ्रेंच, जर्मन और सैक्सन आदि अनेक भाषाओं के शब्दों और भावों का सम्मिश्रण है। यहाँ तक कि उसमें एक नहीं अनेक शब्द संस्कृत भाषा तक के थोड़े ही परिवर्तित रूप में पाए जाते हैं - उदाहरणार्थ 'पाथ' के रूप में हमारा पथ और ग्रास के रूप में हमारा घास शब्द प्रायः ज्यों का त्यों विद्यमान है बात यह है कि जिस तरह शरीर के पोषण और उपचय के लिए बाहर के खाद्य पदार्थों की आवश्यकता होती है, वैसे ही सजीव भाषाओं की बाढ़ के लिए विदेशी शब्दों और भावों के संग्रह की आवश्यकता होती हैं। जो भाषा ऐसा नहीं करती या जिसमें ऐसा होना बन्द हो जाता है, वह उपवास सी करती हुई, किसी दिन मुर्दा नहीं तो निर्जीव सी जरूर हो जाती है। दूसरी भाषाओं के शब्दों और भावों को ग्रहण कर लेने की शक्ति रखना ही सजीवता का लक्षण है। और जीवित भाषाओं का यह स्वभाव, प्रयत्न करने पर भी, परित्यक्त नहीं हो सकता, क्योंकि सजीव भाषाएं नियंत्रण करने वालों की शक्ति की सत्ता के बाहर है।"[8]

इसमें संदेह नहीं कि हिदी भाषा के परिमार्जन और परिशोधन में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का स्थान सर्वोपरि है, परन्तु हिदी को प्राणवान बनाये रखने के लिए वह भी शब्दों का आदान - प्रदान आवश्यक समझते हैं। वस्तुतः हिदी में अन्य विदेशी भाषाओं के शब्दों का आत्मसातीकरण, उसे अन्य समर्थ भाषाओं का साहचर्य उसका राष्ट्रीय स्वरूप निखारेगा। हिदी का राष्ट्रीय स्वरूप, उसका राजभाषा रूप है। हिदी को राजभाषा रूप में प्रतिष्ठित करने का महानीय कार्य हमारे देश के उन गौरवशाली और कर्तव्यनिष्ठ नायकों का है, जिन्होंने देश के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों की बलि चढ़ा दी। प्रान्तीय भाषाओं के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि भारत के विविध प्रान्तों के विविध भाषियों ने अपने बीच हिदी को अपना मुखिया माना था और मुखिया के कर्तव्य के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास का कथन है -

"मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को एक।
पलहि पोसहि सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।"

निःसंदेह अब हिदी को अपने मुखिया रूप अर्थात् नायकत्व का दायित्व बखूबी निभाना होगा। प्रान्तीय भाषाओं के साहचर्य से ही उसका राजभाषा रूप स्थापित होगा। आगत विदेशी शब्दों से कुछ आशंकाएं होती हैं परन्तु हमें याद रखना चाहिए कि हिदी का स्वरूप 'भाषिक समूह' का है। यदि हिदी सेवी सजग बने रहें तो इस समस्या का भी निराकरण सम्भव हैं। अन्य विदेशी भाषाओं के आवश्यक रूप से आत्मसात किए गए शब्दों को 'कोश' में स्थान देकर, उन्हें स्वीकार कर हिदी की चाल में ढाल लिया जाए। वस्तुतः किसी भी भाषा का स्वरूप सार्वभौम, शाश्वत और स्थायी नहीं होता। भाषा स्वभाव से परिवर्तनशील, गतिशील, विकासोन्मुख और सामाजिक होती है। अतः जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन होता है, भाषा परिवर्तित हो जाती है। इसी कारण दुनिया के किसी प्राणवान भाषा का रूप दीर्घकाल तक स्थायी नहीं रहता। अतः हिदी का रूप भी भविष्य में वर्तमान जैसा नहीं होगा। यह परिवर्तन स्वाभाविक है। परिवर्तन न होना भाषा का निर्जीव हो जाना है। हिदी गद्य का प्रारम्भिक रूप वर्तमान से बहुत भिन्न था, फिर भविष्य, वर्तमान जैसा कैसे हो सकता है? यदि भाषा के स्वरूप को स्थायित्व देने के प्रयास में हमने उसको नियम और व्याकरण के कठोर अनुशासन में बाँधने का प्रयास किया, तब वह धीरे-धीरे मात्र उतना लेकर आगे बढ़ जाएगी, जितना नियमन उसके स्वरूप के लिए आवश्यक होगा, और शेष सारे नियम बन जाएंगें। कभी कभी इस प्रक्रिया में उसमें इतना अधिक रूप परिवर्तन हो जाता है कि वह अपने मूल से बिल्कुल भिन्न प्रतीत होती है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का उदाहरण संस्कृत-हिदी, लैटिन-अंग्रेजी है।

आज के इस सूचना-क्रांति के युग में पूरा विश्व एक गाँव के समान हो गया है। वैश्वीकरण अथवा 'वैश्विक गाँव' की यह विचारधारा दुनिया के लिए नई होगी, परन्तु हमारा देश तो परम्परागत रूप से इससे भी व्यापक सोच रखता है "वसुधैव कुटुम्बकम्"। वैश्वीकरण के दौर में हिदी भाषा और साहित्य पर बहस चल रही है। मूलतः 'साहित्य' किसी भी भाषा का हो अथवा किसी भी देश का, वह प्रवृत्ति से वैश्विक होता है। क्योंकि साहित्य मानव की संवेदनाओं, मूल प्रवृत्तियों और मनोभावों पर आधारित होता है, जो देशकाल की सीमा से परे, मानव मात्र के लिए एक होती है।

वैश्वीकरण और सूचना क्रांति के इस युग में भाषा को केवल सर्जनात्मक रूप में नहीं अपितु तकनीकी रूप से भी सक्षम होना आवश्यक है। इस दृष्टि से हिदी ने अपने आप को इतना विकसित कर लिया कि न केवल राष्ट्रीय अपितु वैश्विक धरातल पर भी अनेक सर्च इंजन- गूगल, माइक्रोसॉफ्ट आदि तथा सोशल मीडिया- आरकुड, फेसबुक, व्हाट्स एप आदि ने हिदी को व्यवहार में अपना लिया। सन 1965 में कंप्यूटर पर पहली बार हिदी को लेकर प्रयास प्रारंभ किया गया और सन 1971-72 में कानपुर आईआईटी और एईसीएफ, हैदराबाद नें हिदी के लिए की-बोर्ड और प्रणाली विकसित की। सन 1983 में प्रथम द्विभाषी कंप्यूटर- 'सिद्धार्थ', बिट्स पिलानी और डीसीएम द्वारा लाया गया। सन 1998 में माइक्रोसॉफ्ट ने हिदी के महत्व को देखते हुए विडोस में हिदी का प्रयोग प्रारंभ किया। सन 2000 में माइक्रोसॉफ्ट में इंटरफेस तक हिदी में दिखने शुरू कर दिए। हिदी का पहला ब्लॉग आलोक कुमार ने सन 2003 में 'नौ दो ग्यारह' के नाम से बनाया। सन 2007 में याहू इंडिया भी बहुभाषी हुआ। सन 2008 में फेसबुक हिदी सहित 13 भारतीय भाषाओं

को लेकर आया। गूगल के एंड्राइड वन में यूजर्स के मोबाइल ऐप में वॉइस कमांड और मैसेज भी हिंदी में आने लगे। सन 2014 में गूगल ट्रांसलेट ने हिंदी सहित 7 भारतीय भाषाओं को पहचानना प्रारंभ किया। हिंदी का पहला पोर्टल वेब दुनिया है। यूनिकोड रोमन में टाइप कर विभिन्न भाषाओं को आपस में जोड़ती है और हिंदी भी वैश्विक मानक के अनुरूप इस यूनिकोड की परंपरा में आ रही है। हिंदी में उपलब्ध सॉफ्टवेयर में मुख्य रूप से लीला, हिंदी प्रबोध,आकृति, टाटा आईबीएम हिंदी पीसी डॉस, बैंक्स, श्री लिपि, प्रकाशक, लीप ऑफिस आदि हैं। सिद्धार्थ, सुलेख द्विभाषी देवनागरी रोमन कंप्यूटर जैसे द्विभाषी और बहुभाषी कंप्यूटर बड़ी सहजता से देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा में कार्य कर रहे हैं।

किसी देश की भाषा उसकी परम्परा, संस्कृति और विरासत को पोषित करती है, उसका संवहन करती है ।यह उसका राष्ट्रीय रूप होता है। भाषा के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप के लिए भी कुछ मूलभूत विशेषताएं होनी चाहिए जो इस प्रकार हैं- उस भाषा में वैश्विक चेतना का संस्पर्श हो, विश्व के अनेक देशों में बोली-समझी जाती हो, समावेशी प्रवृत्ति हो, सम्पन्न एतिहासिक परंपरा हो, अंतर्राष्ट्रीय रूप से प्रतिष्ठित हो, मानवीय मूल्यों की पोषक हो, मनुष्यता मानव जीवन का चरम लक्ष्य हो, अनुदित साहित्य हो। इस दृष्टि से हिंदी बेमिसाल है। हिंदी भारत की एकता और सांस्कृतिक गौरव की वैश्विक आवाज़ है। उसमें वसुधैव कुटुंबकम का भाव है, सामूहिकता का बोध है, सर्वधर्म समभाव की प्रवृत्ति है। उसमें सर्व कल्याण का भाव है। हिंदी से आस्थावादी जीवनदृष्टि का बोध होता है। वह आध्यात्म और दर्शन की समृद्ध ऐतिहासिक विरासत रखती है। वह मानवीय मूल्यों की पोषक है, साथ ही संस्कार और नैतिक मूल्यों की सशक्त सामाजिक प्रतिष्ठा भी उसमें प्रतिबिंबित होती है।

व्यावहारिक धरातल पर हिंदी विश्व भाषा के रूप में इस कारण विकसित हो पा रही है क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था खुली अर्थव्यवस्था है। दूसरा भारत विश्व के लिए एक बहुत बड़ा बाजार है जहां विकसित देशों के उत्पादों को सरलता से खपाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गुलामी के दौर में भारत से बाहर गए गिरमिटिया मजदूरों ने विश्व के विभिन्न देशों में अब अपनी स्थिति मजबूत बना ली है जहां वह अपनी भाषा और संस्कृति के साथ अपनी पहचान बना रहे हैं। भारतीय फिल्म और संगीत का जादू भी पूरी दुनिया को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है जिसके कारण हिंदी वैश्विक धरातल पर अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित कर रही है। इसकी अतिरिक्त एक बहुत बड़ा सत्य यह भी है कि भारत की जनसंख्या इस समय विश्व में सर्वाधिक है जनसंख्या बल की दृष्टि से हमने चीन को भी पीछे छोड़ दिया है। जिस देश की जनसंख्या इतनी बड़ी है उसकी भाषा, संस्कृति और जनबल को तो विश्व को स्वीकार करना ही होगा। अमेरिका के लगभग 40 विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन की व्यवस्था है। विश्व के अधिकांश देशों के प्रमुख विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। नार्वे, मॉरीशस, सूरीनाम, अमेरिका जैसे देशों में शताधिक पत्र -पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है। कम्प्यूटर, अंतरिक्ष, अनुसंधान आदि क्षेत्रों में 'प्रयोजनमूलक हिंदी' के रूप में, हिंदी ने अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज की है।

हिंदी का यह रूप हिंदी को अधुनातन तकनीक से सफलतापूर्वक जोड़ रहा है। सूचना-क्रांति और कम्प्यूटर के इस युग में हिंदी अपने प्रयोजनमूलक रूप में सक्षम रूप से मीडिया और यान्त्रिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। निसंदेह हिंदी, यदि प्रयोजनमूलक हिंदी के प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ाये तो आने वाला समय हिंदी का होगा। हमारी राजभाषा हिंदी अपनी सहोदरा और उन्नतिशील अनुजा 'प्रयोजनमूलक हिंदी' के सहयोग से वैश्वीकरण के इस दौर में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज कर पाएगी।

प्रो. हेमांशु सेन

प्रोफ़ेसर (हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग)
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

संदर्भ

1. डॉ॰ दंगल झाल्टे, 'प्रयोजनमूलक हिंदी: सिद्धान्त और प्रयोग', पृष्ठ-40
2. मोटुरि सत्यनारायण, 'आगरा बुलेटिन' (केन्द्रीय हिंदी संस्थान), 16 जून 1975 ई॰
3. मोटुरि सत्यनाराण, प्रयोजनमूलक हिंदी, संपा॰ डॉ॰ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृष्ठ-21
4. डॉ॰ दंगल झाल्टे, 'प्रयोजनमूलक हिंदी: सिद्धान्त और प्रयोग', पृष्ठ-4
5. गणेश शंकर विद्यार्थी, उद्धत द्वारा- डॉ॰ शम्भूनाथ, 'समकालीन सृजन', पृष्ठ-157
6. 'हिदुस्तान' दैनिकपत्र 13 अक्तूबर 2011, पृष्ठ-16
7. 'हिदुस्तान' दैनिकपत्र 13 अक्तूबर 2011, पृष्ठ-16
8. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, उद्धत स्तम्भ दस्तावेज 'समकालीन सृजन', पृष्ठ 16-17

अश्वगंधा: आय सृजन हेतु एक चमत्कारी औषधीय पौधा

बल्यं ब्रह्मवर्चस्यं वृष्यं वातहरं परम्।
श्लेष्मपित्तहरं चापि रसायनं अश्वगन्धया॥

अर्थात अश्वगंधा बलवर्धक, मस्तिष्क को तीव्र करने वाली, वीर्यवर्धक, वात, पित्त और कफ का शमन करने वाली तथा उत्तम रसायन है।

प्रकृति ने मानवता को ऐसे अनगिनत उपहार दिए हैं, जिनका मूल्यांकन करना कठिन है। आयुर्वेद – भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति है, जिनमें इन्हीं प्राकृतिक उपहारों का गहन अध्ययन और सदुपयोग है। उन सभी महत्वपूर्ण चिकत्सीय औषधियों में से एक चमत्कारी औषधीय पौधा अश्वगंधा भी है। यह न केवल एक जड़ी-बूटी है, बल्कि संपूर्ण स्वास्थ्य का आधार स्तंभ भी मानी जाती है।

अश्वगंधा शब्द से ही आयुर्वेदिक स्वास्थ्य, शक्ति, ऊर्जा और मानसिक संतुलन का बोध होता है। यह भारतीय उपमहाद्वीप में सहस्राब्दियों से प्रयोग में लाया जाता रहा है, परंतु आज जब आधुनिक जीवनशैली मानसिक और शारीरिक रोगों से घिरी हुई है, अश्वगंधा फिर से वैश्विक चिकित्सा में आशा की किरण बनकर उभर रहा है ।

अश्वगंधा तु बलदा रसायन्यपि चोच्यते।
शोकमोहप्रमत्तानां बुद्धिशुद्धिकरी परा॥

अर्थात अश्वगंधा न केवल शरीर को बल देती है, बल्कि मानसिक दुख, भ्रम और प्रमाद को भी दूर कर मस्तिष्क को निर्मल बनाती है।

अश्वगंधा की उत्पत्ति और नाम का रहस्य

अश्वगंधा को वैज्ञानिक भाषा में विथानिया सोमनीफेरा (*Withania somnifera*) कहा जाता है (चित्र 1)। इसे आम भाषा में इंडियन जिनसेंग और विंटर चेरी के नाम से भी जाना जाता है। अश्वगंधा नाम दो भागों से मिलकर बना है – अश्व अर्थात घोड़ा और गंधा यानी गंध। कहा जाता है कि इसकी जड़ों से घोड़े जैसी गंध आती है और इसे सेवन करने से मनुष्य को शक्ति, ऊर्जा और सहनशीलता प्राप्त होती है ।

चित्र 1: क) अश्वगंधा का कृषि परिदृश्य; ख) अश्वगंधा का पौधा

वैश्विक बाजार में अश्वगंधा की मांग

आज अश्वगंधा की मांग न केवल भारत में, बल्कि अमेरिका, यूरोप, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, जापान जैसे देशों में भी अत्यधिक बढ़ चुकी है। अश्वगंधा का वैश्विक बाजार तेजी से विस्तार कर रहा है और 2025 तक इसका मूल्य लगभग 837.5 मिलियन अमेरिकी डॉलर था, जो 2034 तक बढ़कर 1,864.51 मिलियन डॉलर तक पहुंचने की संभावना है, जिसमें 9.3% की वार्षिक वृद्धि दर अनुमानित है। अश्वगंधा सप्लीमेंट्स का बाजार 2023 में 670.6 मिलियन डॉलर था, जो 2030 तक 1,168.3 मिलियन डॉलर तक पहुंच सकता है, वहीं अश्वगंधा एक्सट्रैक्ट का बाजार 2023 में 686.6 मिलियन डॉलर था, जो 2030 तक 1.3 बिलियन डॉलर तक पहुंचने की उम्मीद है। इस मांग में वृद्धि के प्रमुख कारणों में इसके तनाव कम करने, ऊर्जा बढ़ाने और मानसिक स्वास्थ्य सुधारने जैसे लाभ शामिल हैं। साथ ही, उपभोक्ताओं में प्राकृतिक और हर्बल उत्पादों की ओर बढ़ता रुझान, और इसका उपयोग सप्लीमेंट्स, खाद्य पदार्थों, पेय पदार्थों और कॉस्मेटिक उत्पादों में होने के कारण इसकी मांग बढ़ रही है। क्षेत्रीय रूप से, एशिया-प्रशांत क्षेत्र इस बाजार में सबसे आगे है, जबकि उत्तरी अमेरिका उच्च स्वास्थ्य जागरूकता और आय स्तर के चलते सबसे अधिक राजस्व उत्पन्न कर रहा है। यूरोप में भी

प्राकृतिक स्वास्थ्य उत्पादों के प्रति रुचि के चलते मांग में वृद्धि हो रही है। इन सभी कारणों से अश्वगंधा वैश्विक व्यापार और निवेश के लिए एक महत्वपूर्ण और लाभकारी क्षेत्र बनता जा रहा है।

भारत, विशेषकर मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में इसकी बड़े पैमाने पर खेती की जाती है। इसके निर्यात से किसानों और देश की अर्थव्यवस्था को भी महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त हो रहा है। भारत में अश्वगंधा का बाजार तेजी से विस्तार कर रहा है और इसका आर्थिक महत्व निरंतर बढ़ रहा है। वर्ष 2024 में भारत का अश्वगंधा बाजार लगभग 732.8 मिलियन अमेरिकी डॉलर का था, जो 2025 से 2034 के बीच 5.2% की वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) से बढ़ने की संभावना है। इसकी मांग घरेलू स्वास्थ्य सप्लीमेंट उद्योग के साथ-साथ निर्यात के क्षेत्र में भी तेजी से बढ़ रही है। भारत अश्वगंधा एक्सट्रैक्ट और पाउडर का प्रमुख निर्यातक है, जिसमें अमेरिका, जर्मनी और ऑस्ट्रेलिया जैसे देश प्रमुख आयातक हैं। अकेले अश्वगंधा एक्सट्रैक्ट के भारत से 1,200 से अधिक शिपमेंट्स निर्यात किए गए, जबकि पाउडर के 800 से ज्यादा। आयुष मिनिस्ट्री, 2025, के अनुसार इसके प्रमुख कारणों में तनाव निवारण, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और मानसिक स्वास्थ्य सुधार जैसे गुण शामिल हैं, जो आयुर्वेदिक उत्पादों की ओर उपभोक्ताओं के बढ़ते रुझान को दर्शाते हैं। इस प्रकार, अश्वगंधा न केवल औषधीय रूप से बल्कि आर्थिक रूप से भी भारत के लिए एक मूल्यवान फसल बन गई है (चित्र 2)।

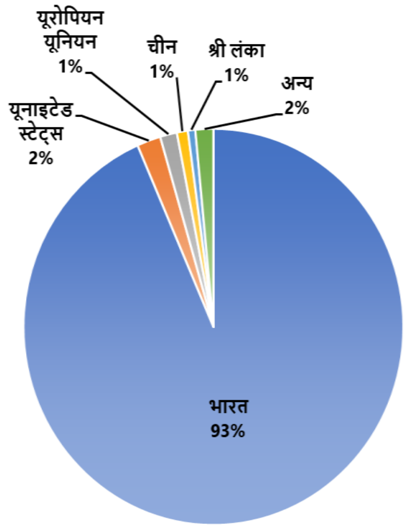

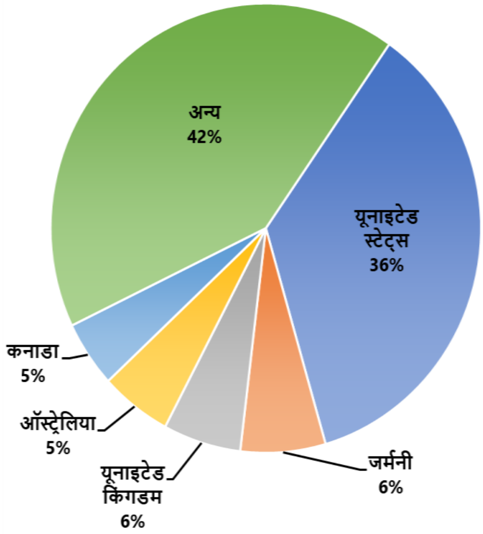

चित्र 2: विश्व में अश्वगंधा का आयात – निर्यात

अश्वगंधा की खेती: सरल, टिकाऊ और लाभकारी

भूमौ वृद्धि यथा प्राप्तं मूलं धृत्वा समुद्धरेत्।
शुद्धं सुखोष्णं पच्यं च, लाभं यच्छति सर्वदा॥

अर्थात जब भूमि में अश्वगंधा पर्याप्त रूप से परिपक्व हो जाए, तब इसकी जड़ों को सावधानी से निकालना चाहिए। ये जड़ें स्वास्थ्य में अमूल्य लाभ प्रदान करती हैं।

अश्वगंधा की खेती सूखे क्षेत्रों में बहुत अच्छी होती है। यह अत्यधिक जल की मांग नहीं करता और इसकी देखभाल भी अपेक्षाकृत आसान होती है। इसकी खेती हेतु निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देना आवश्यक है (तालिका 1 और चित्र 3):

- **भूमि और जलवायु:** बलुई या दोमट भूमि जिसमें जल निकासी अच्छी हो, सर्वोत्तम मानी जाती है। गर्म और शुष्क जलवायु इसकी वृद्धि के लिए अनुकूल होती है।
- **बुवाई का समय:** जून-जुलाई या मानसून की शुरुआत में बुवाई की जाती है।
- **बीज दर:** बीज की अनुशंसित मात्रा प्रति एकड़ लगभग 5 से 6 किलोग्राम मानी जाती है।
- **खाद एवं सिचाई:** जैविक खादों का प्रयोग उत्तम रहता है। वर्षा पर निर्भर रहने वाली फसल होने के कारण सिचाई की आवश्यकता न्यूनतम होती है।

जलवायु स्थितियाँ

- तापमान: 25-38°C, गर्म अर्ध-शुष्क जलवायु
- वर्षा : 500-750mm वार्षिक वर्षा
- प्रकाश : 10-12 hrs का प्रकाश काल

मृदा स्वास्थ्य

- प्रमुख पोषक तत्व : N, P and K
- सूक्ष्म पोषक तत्व : Zn, Fe, Cu etc.
- मृदा की पीएच सीमा : 6.5-8.0

खेत की तैयारी

- मिट्टी को 2-3 बार जोता जाता है
- बीज उपचार: फफूंदनाशकों या जैविक एजेंट्स से किया जाता है, जिससे बीमारियों से सुरक्षा मिलती है और अंकुरण बेहतर होता है।
- बीजों की बुवाई: सीधी बुवाई या रोपाई विधि

सिंचाई और उर्वरक

•फसल को 2 से 3 बार सिंचाई की आवश्यकता होती है।
•उर्वरक: नीम अस्त्र, मेलाथियान का प्रयोग किया जाता है।
- अंतरवर्ती क्रियाएँ : फसल चक्र अपनाना , हाथ से निराई करना , उचित जल निकास व्यवस्था सुनिश्चित करना आदि

कीट एवं रोग

- फफूंद, सूत्रकृमि, विषाणु, फाइटोप्लाज़्मा, कीट आदि

फसल की कटाई

- परिपक्वता अवधि: 180 दिन
- खुदाई: जड़ों को नमी वाली मिट्टी में सावधानीपूर्वक खोदकर निकाला जाता है।

प्रोसेसिंग

A ग्रेड जड़ें: लंबाई: 7 सेमी तक रूप: बेलनाकार (cylindrical), चमकदार, चिकनी अंदर से: पूरी तरह सफेद और शुद्ध
B ग्रेड जड़ें: लंबाई: 5 सेमी तक रूप: भुरभुरी (टूटने वाली), हल्की अंदर से: सफेद
C ग्रेड जड़ें: लंबाई: 3-4 सेमी तक रूप: मजबूत, किनारों पर शाखाएं (साइड ब्रांचेस) होती हैं
D ग्रेड या निम्न ग्रेड की जड़ें: रूप: पतली, मोटी-छोटी, खोखली, बहुत पतली
अंदर से: पीले रंग की

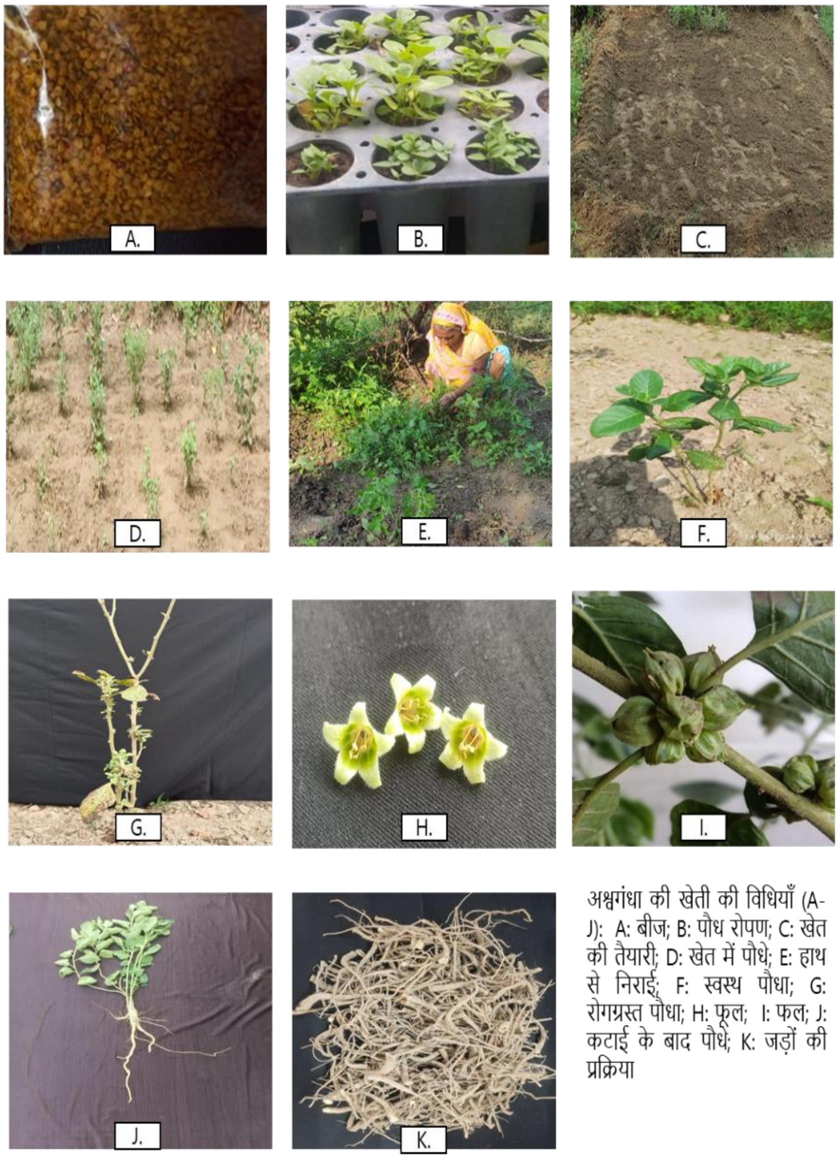

अश्वगंधा की खेती की विधियाँ (A-J): A: बीज; B: पौध रोपण; C: खेत की तैयारी; D: खेत में पौधे; E: हाथ से निराई; F: स्वस्थ पौधा; G: रोगग्रस्त पौधा; H: फूल; I: फल; J: कटाई के बाद पौधे; K: जड़ों की प्रक्रिया

चित्र 3: अश्वगंधा की खेती की विधियाँ

- **कटाई और उपज:** लगभग 5 से 6 माह में अश्वगंधा की फसल पूर्ण रूप से तैयार हो जाती है, जिसमें औषधीय दृष्टिकोण से इसकी जड़ें सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती हैं, जिन्हें ध्यानपूर्वक उखाड़ा जाता है। कटाई के बाद जड़ों को धूप में सुखाकर उनका ग्रेडिग, प्रोसेसिग एवं पैकिग किया जाता है।

एक एकड़ भूमि से लगभग 400–500 किलोग्राम सूखी अश्वगंधा जड़ें मिलती हैं, जिनकी बाजार में अच्छी मांग और लाभकारी कीमत होती है। ऑर्गेनिक उत्पाद की कीमत पारंपरिक की तुलना में दोगुनी तक हो सकती है।

तालिका 1: अश्वगंधा की खेती की समयरेखा

समय अवधि (दिन)	अनुमानित महीना	कार्य चरण	विवरण
दिन 1–7	जून - पहला सप्ताह	भूमि चयन व खेत की तैयारी	मिट्टी की जांच, जुताई, समतलीकरण, खाद मिलाना
दिन 8–15	जून - दूसरा सप्ताह	बीज चयन और बुवाई	अच्छे बीज का चयन, कतारों में 1-2 सेमी गहराई तक बुवाई

दिन 16–30	जून - तीसरा-चौथा सप्ताह	अंकुरण और पहली हल्की सिचाई	बीज अंकुरित होने लगते हैं; आवश्यकता अनुसार सिचाई
दिन 31–60	जुलाई	निराई-गुड़ाई (खरपतवार नियंत्रण)	पौधों के बीच की मिट्टी को ढीला करना, खरपतवार हटाना
दिन 61–90	अगस्त	कीट व रोग नियंत्रण	कीटों से सुरक्षा के लिए मुख्यत: जैविक या हल्के रसायन का उपयोग करना
दिन 91–120	सितंबर	पौध वृद्धि और पोषण	जड़ें मजबूत हो रही होती हैं; खाद की आवश्यकता अनुसार आपूर्ति
दिन 121–150	अक्टूबर	अंतिम सिचाई और पकने की तैयारी	फसल पकने लगती है, सिचाई कम कर दी जाती है
दिन 151–180	नवंबर	खुदाई, सफाई और सुखाना	जड़ों की खुदाई व सफाई कर के, छाया में सुखाना
दिन 181 के बाद	दिसंबर	भंडारण और विपणन	सूखी जड़ों को बोरी/ड्रम में संग्रहित कर बेचा जाता है

अश्वगंधा के कीट व रोग नियंत्रण:

अश्वगंधा की खेती में कई प्रकार के कीट एवं रोग पौधों की वृद्धि और उत्पादन को प्रभावित कर सकते हैं। प्रमुख रोगों में पत्तों की झुलसन जो अल्टेरनारिआ नामक फफूंद के कारण होता है, और जड़ सड़न, जो जल जमाव या रहिजोक्टोनिआ तथा फुसारियम जैसे फफूंदों से होता है। इसके अलावा पत्तियों पर धब्बे भी देखे जाते हैं। कीटों में सफेद मक्खी, एफिड (चीपा) और थ्रिप्स; पौधों के रस को चूसकर नुकसान पहुँचाते हैं जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं। जड़ों पर नीमेटोड का संक्रमण भी देखा गया है, जो फसल की गुणवत्ता व मात्रा दोनों को प्रभावित करता है (चित्र 4)।

इन रोगों और कीटों से बचाव के लिए फसल चक्र अपनाना, खेत में जल निकासी की उचित व्यवस्था करना, समय-समय पर निराई-गुड़ाई करना और स्वस्थ बीजों का प्रयोग करना आवश्यक है। जैविक नियंत्रण के लिए ट्राईकोडेर्मा जैसे जैव-फफूंदनाशकों का उपयोग जड़ सड़न रोग को नियंत्रित करने में सहायक होता है। कीट नियंत्रण के लिए नीम तेल का छिड़काव (5%) प्रभावी रहता है, और अधिक प्रकोप की स्थिति में कीटनाशी जैसे *इमिडाक्लोप्रिड* का सीमित मात्रा में उपयोग किया जा सकता है। समग्र रूप से सतर्क निगरानी, समुचित पोषण और जैविक उपायों का संयोजन अश्वगंधा की स्वस्थ और लाभदायक खेती सुनिश्चित करता है।

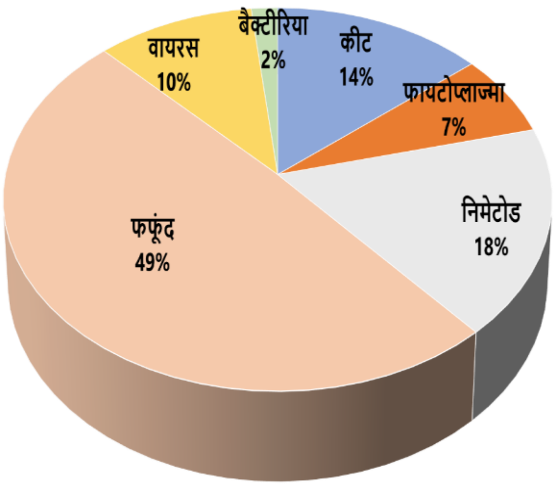

चित्र 4: अश्वगंधा के प्रमुख कीट एवम रोग

अश्वगंधा: औषधीय तत्वों का प्रतिशत विभाजन

अश्वगंधा में कई प्रकार के जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं। ये यौगिक मिलकर इसके औषधीय गुणों के लिए जिम्मेदार होते हैं। अश्वगंधा में सबसे अधिक मात्रा में ऐल्कलॉयड्स पाए जाते हैं, जो 31% तक होते हैं। स्टेरॉइडल लैक्टोन्स 23% तक होते हैं और ये इसके चिकित्सीय प्रभावों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्टेरॉइड्स की उपस्थिति 16% तक होती है, जो हार्मोन संतुलन में मदद करते हैं। फिनोलिक यौगिक 9% तक होते हैं, जो

शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट होते हैं। अश्वगंधा में ग्लाइकोसाइड्स, फ्लावोनोइड्स, और ट्रेस तत्वों की थोड़ी मात्रा होती है। ट्रेस एलिमेंट्स शरीर में सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति करते हैं। फ्लावोनोइड्स सूजन कम करने और प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने में सहायक होते हैं। नाइट्रोजन युक्त यौगिक अमीनो एसिड और प्रोटीन संश्लेषण में सहायक होते हैं। सभी तत्व मिलकर अश्वगंधा को एक शक्तिशाली रसायनात्मक संरचना प्रदान करते हैं। यह विविध तत्व अश्वगंधा को तनाव निवारण, ऊर्जा वृद्धि और मानसिक स्वास्थ्य सुधार में प्रभावशाली बनाते हैं (तालिका 2 और चित्र 5)।

तालिका 2: अश्वगंधा में पाए जाने वाले प्रमुख सक्रिय तत्वों का अनुपात

क्रमांक	तत्वों का नाम	अनुमानित प्रतिशत	मुख्य भूमिका / गुण
१	ऐल्कलॉयड्स	31%	तंत्रिका तंत्र को शांत करना, तनाव कम करना
२	स्टेरॉइडल लैक्टोन्स	23%	रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाना, सूजन कम करना
३	स्टेरॉइड्स	16%	हार्मोन संतुलन, ऊर्जा वृद्धि
४	फिनोलिक यौगिक	9%	एंटीऑक्सीडेंट, कोशिका सुरक्षा
५	ग्लाइकोसाइड्स आदि	7%	हृदय स्वास्थ्य, पाचन में सहायक
६	फ्लावोनोइड्स	5%	एंटीऑक्सीडेंट, सूजन कम करना
७	ट्रेस एलिमेंट्स	5%	सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति
८	नाइट्रोजन युक्त यौगिक	4%	अमीनो एसिड और प्रोटीन संश्लेषण में सहायक

चित्र 5: अश्वगंधा में पाए जाने वाले प्रमुख तत्व

अश्वगंधा का औषधीय महत्व

गन्धान्ता वाजिनामादिरश्वगन्धा हयाव्या । वराकर्णी वरदा बलदा कुष्ठगन्धिनी ॥
अश्वागन्धा अनिल श्लेष्मा श्वित्र शोथक्षयापहा बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णा अतिशुक्रला ॥१९०)

-श्लोक नं : १९०, भाव प्रकाश निघन्टु, गुडुच्यादि वर्ग

अर्थात अश्वगंधा एक दिव्य औषधि है जिसका नाम उसकी घोड़े जैसी गंध के कारण पड़ा है। यह बलवर्धक, सुंदर पत्तों वाली, उत्तम फल देने वाली, कुष्ठ रोग में लाभकारी, वात-कफ-शोथ-क्षय को दूर करने वाली, श्वित्र (सफेद दाग) में उपयोगी, कायाकल्पकारी, स्वाद में कड़वी-कसैली, गर्म प्रकृति की और शुक्र धातु को बढ़ाने वाली है।

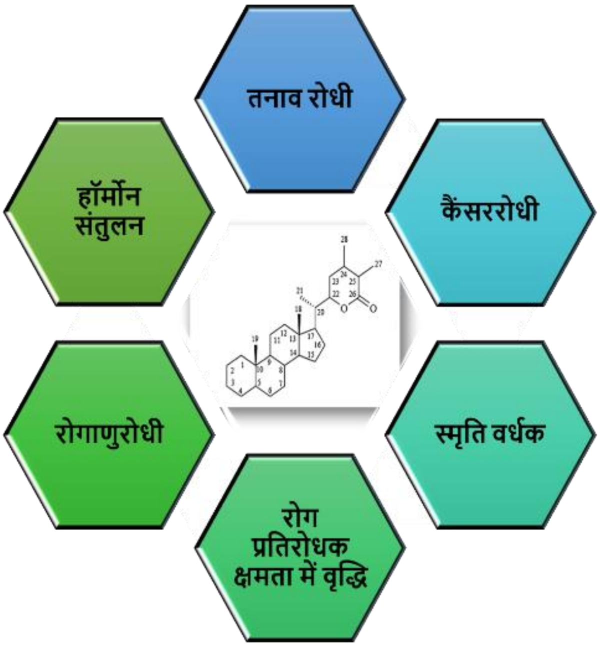

चित्र 6: अश्वगंधा का औषधीय महत्व

तनाव, अवसाद और चिंता में अत्यंत लाभकारी

वर्तमान युग को "तनाव का युग" कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। अश्वगंधा एक प्राकृतिक अडैप्टोजेन है, जो शरीर को मानसिक और शारीरिक तनाव से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। यह कॉर्टिसोल जैसे तनाव हार्मोन को नियंत्रित करता है और स्नायविक तंत्र को शांत करता है। अनेक अध्ययन बताते हैं कि अश्वगंधा का सेवन अनिद्रा, चिता और डिप्रेशन जैसी समस्याओं में अत्यंत सहायक है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि

अश्वगंधा न केवल मानसिक स्वास्थ्य के लिए, बल्कि शरीर की इम्यून सिस्टम को भी सुदृढ़ करता है। यह श्वेत रक्त कोशिकाओं की संख्या बढ़ाता है और शरीर को संक्रमणों से लड़ने में सक्षम बनाता है। यही कारण है कि कोविड-19 महामारी के दौरान आयुष मंत्रालय ने भी अश्वगंधा का नियमित सेवन करने की सलाह दी थी।

हार्मोनल असंतुलन और प्रजनन स्वास्थ्य में सहायक

अश्वगंधा का उपयोग पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए प्रजनन स्वास्थ्य सुधारने में उपयोगी पाया गया है। यह पुरुषों में टेस्टोस्टेरोन स्तर को संतुलित करता है, शुक्राणुओं की गुणवत्ता और संख्या बढ़ाता है। वहीं महिलाओं में यह मासिक धर्म की अनियमितताओं को नियंत्रित करता है और हार्मोन संतुलन स्थापित करता है।

स्मृति एवं मानसिक दक्षता में वृद्धि

प्राचीन काल से ही छात्रों और विद्वानों को स्मरणशक्ति बढ़ाने हेतु अश्वगंधा दिया जाता था। यह न्यूरोनल कम्युनिकेशन को सुधारता है और न्यूरोडीजेनेरेटिव बीमारियों जैसे अल्ज़ाइमर, डिमेंशिया और पार्किंसन के खतरे को कम करता है।

ऊर्जा, सहनशक्ति और मांसपेशियों के विकास में सहायक

व्यायाम करने वालों और एथलीट्स के बीच अश्वगंधा की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। यह फिजिकल स्टैमिना, मांसपेशियों की ताकत और रिकवरी स्पीड को बढ़ाता है। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध किया है कि अश्वगंधा शरीर की ऑक्सीजन उपयोग क्षमता को बढ़ाता है, जिससे थकान कम होती है।

मूलं तस्य विशेषेण योगक्षेमविवर्धनम्।
स्मृति मेधां च बुद्धिं च वर्धयेदिति कीर्तितम्॥

अर्थात अश्वगंधा की जड़ विशेष रूप से स्वास्थ्य की रक्षा और वृद्धि में सहायक होती है। यह स्मरण शक्ति, मेधा (बुद्धि) और सामान्य बुद्धिमत्ता को बढ़ाती है – ऐसा आयुर्वेद में कहा गया है (चित्र 6) ।"

अश्वगंधा और आधुनिक विज्ञान: शोध की दृष्टि से

विश्व के प्रतिष्ठित मेडिकल जर्नल्स में प्रकाशित कई शोध बताते हैं कि अश्वगंधा में पाए जाने वाले सक्रिय तत्व – विथानोलाइड्स – शरीर में एंटी-इंफ्लेमेटरी, एंटीऑक्सीडेंट, एंटी-कैंसर और एंटी-एजिंग गुण प्रदर्शित करते हैं। यह मधुमेह, उच्च रक्तचाप, कैंसर, थायरॉइड असंतुलन और गठिया जैसी गंभीर बीमारियों के इलाज में भी सहायक सिद्ध हो रहा है।

आज विश्वभर की फार्मास्युटिकल कंपनियाँ अश्वगंधा के अर्क से टैबलेट्स, चूर्ण, कैप्सूल, सिरप, टी और हेल्थ ड्रिंक्स तैयार कर रही हैं। यह भारतीय चिकित्सा पद्धति की ग्लोबल ब्रांडिंग का सशक्त उदाहरण बन चुका है।

मूल्य संवर्धन: लाभ को बढ़ाने की कुंजी

औषधीनां राजा चैव, बलवृद्धिः प्रदायिनी।
तस्मात् कृषकः सेवेत, लाभं च वर्धयेद्बहु॥

अर्थात अश्वगंधा औषधियों में राजा है, यह शरीर की शक्ति को बढ़ाती है। इसलिए हर किसान को इसकी खेती करनी चाहिए, जिससे वह बहुत अधिक लाभ प्राप्त कर सके।

अश्वगंधा की कच्ची जड़ों के साथ-साथ इसके प्रोसेस्ड उत्पादों की मांग बहुत अधिक है। जैसे:

- अश्वगंधा पाउडर (चूर्ण)
- कैप्सूल और टैबलेट्स
- अश्वगंधा चाय
- हेल्थ टॉनिक
- कॉस्मेटिक प्रोडक्ट्स में इसका उपयोग (क्रीम, फेस पैक, सीरम आदि)

यदि किसान या उद्यमी मूल्य संवर्धन की दिशा में कार्य करें, तो वे केवल कच्चे माल बेचने की बजाय बहुगुणित लाभ कमा सकते हैं। आयुष मंत्रालय तथा MSME मंत्रालय द्वारा कई योजनाओं में प्रशिक्षण, वित्त और मार्केटिंग सहायता भी प्रदान की जा रही है।

अश्वगंधा उद्योग में राजस्व वितरण: प्रमुख बाज़ार क्षेत्रों की स्थिति

अश्वगंधा भारतीय आयुर्वेदिक उद्योग का एक प्रमुख औषधीय पौधा है, जिसका उपयोग अनेक उत्पादों में किया जाता है। इसके विभिन्न बाज़ार क्षेत्रों में अलग-अलग अनुपात में राजस्व उत्पन्न होता है (चित्र 7)। नीचे प्रमुख सेक्टरों के अनुसार अश्वगंधा से होने वाली कमाई का मोटा विवरण दिया गया है (अनुमानित और औसत आँकड़ों पर आधारित):

फार्मास्युटिकल / आयुर्वेदिक औषधि क्षेत्र – 40–50%

अश्वगंधा का सबसे बड़ा उपयोग आयुर्वेदिक दवाओं में होता है जैसे: च्यवनप्राश , अश्वगंधा चूर्ण, कैप्सूल, सिरप आदि। कंपनियाँ जैसे पतंजलि, डाबर, बैद्यनाथ, हिमालया और आयुर्वेदिक स्टार्टअप इसका बड़े पैमाने पर उपयोग करते हैं।

हेल्थ सप्लिमेंट्स / न्यूट्रास्यूटिकल्स – 20–25%

प्रोटीन पाउडर, एनर्जी ड्रिंक, स्ट्रेस-बस्टर सप्लीमेंट्स में अश्वगंधा को शामिल किया जाता है। यह सेगमेंट तेजी से बढ़ रहा है, विशेषकर अमेरिका, यूरोप और UAE जैसे देशों में निर्यात में।

कॉस्मेटिक और स्किनकेयर उत्पाद – 10–15%

अश्वगंधा को त्वचा को पोषण देने और एंटी-एजिंग उत्पादों में इस्तेमाल किया जाता है। कई ब्यूटी ब्रांड्स जैसे फॉरेस्ट एसेंशियल्स, कामा आयुर्वेद, मामाअर्थ आदि इसे उपयोग करते हैं।

फूड और बेवरेज इंडस्ट्री – 5–10%

अब अश्वगंधा को चाय, हर्बल इन्फ्यूजन, फंक्शनल फूड्स, चॉकलेट और बिस्किट में डाला जा रहा है। यह क्षेत्र अभी उभर रहा है।

निर्यात – 15–20%

अमेरिका, जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया, जापान जैसे देशों में हर्बल सप्लिमेंट्स की डिमांड बढ़ी है। भारत अश्वगंधा के जड़ पाउडर और अर्क का बड़ा निर्यातक है। कुल मिलाकर, भारत में अश्वगंधा इंडस्ट्री का कुल बाज़ार आकार 2024 तक ₹7000-8000 करोड़ रुपये के आस-पास था और यह सालाना 15-20% की दर से बढ़ रहा है।

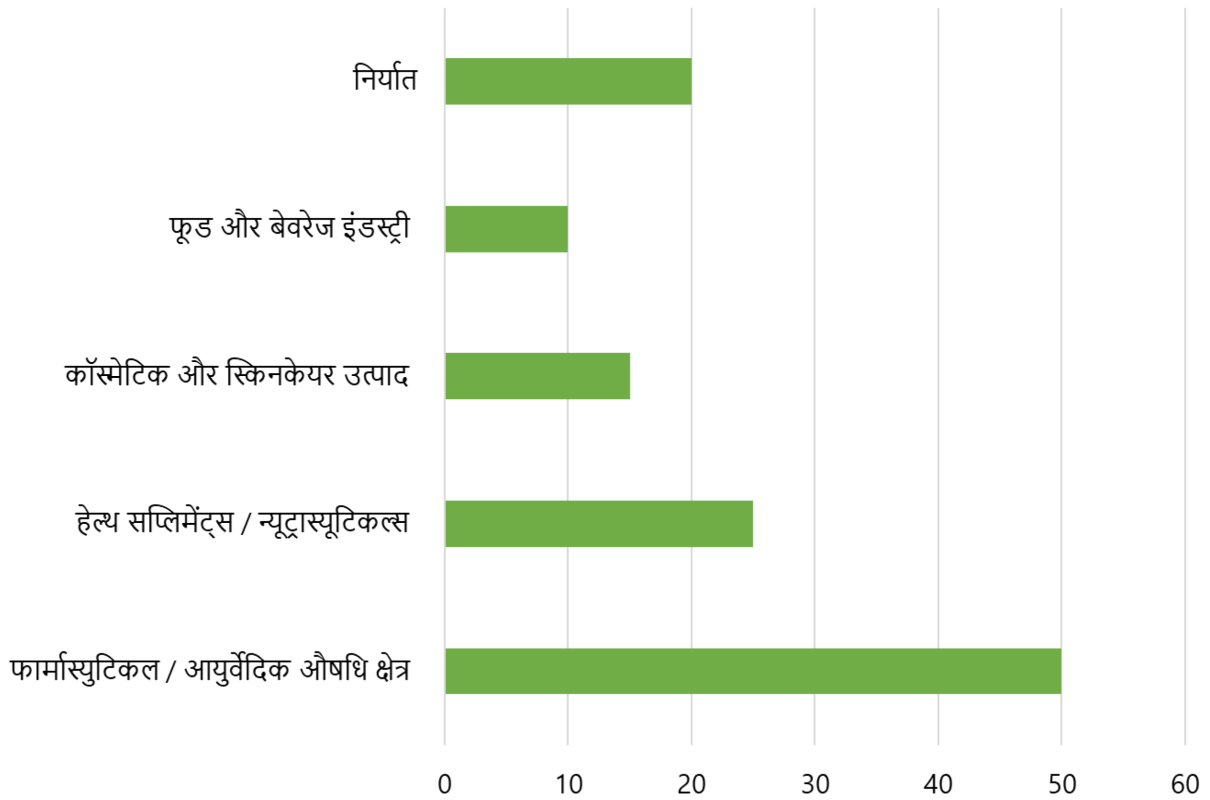

चित्र 7: प्रमुख बाज़ार क्षेत्रों में अश्वगंधा की स्थिति

सेवन की विधि और सावधानियाँ

अश्वगंधा का सेवन आमतौर पर चूर्ण, कैप्सूल या अर्क के रूप में किया जाता है। सामान्यतः 1-3 ग्राम चूर्ण को दूध या गुनगुने पानी के साथ दिन में एक या दो बार लिया जाता है। परंतु सेवन से पूर्व किसी योग्य आयुर्वेदाचार्य या चिकित्सक की सलाह अवश्य लेनी चाहिए।

अश्वगन्धां तिलं माषं गुडं कृष्णं च सर्पिषा।
अर्धमास प्रयोगेण कुंजरेण समं बलम् ॥

अर्थात अश्वगंधा, तिल, उड़द की दाल, गुड़ और घी का संयोजन यदि नियमित रूप से 15 दिन तक लिया जाए, तो यह शरीर को अद्वितीय बल प्रदान करता है।

निष्कर्ष: प्रकृति का अनुपम उपहार

अश्वगंधां नित्यसेव्या स्वास्थ्यं सौख्यं च वर्धते।
तस्माद् इयं जनैः सेव्याः, जीवनं च समृद्ध्यति ॥

अर्थात जो व्यक्ति नियमित रूप से अश्वगंधा का सेवन करता है, उसका स्वास्थ्य और सुख-संवेदना दोनों बढ़ते हैं। इसलिए सभी लोगों को इसका सेवन करना चाहिए, क्योंकि इससे जीवन समृद्ध और संतुलित होता है।

अश्वगंधा केवल एक औषधीय पौधा नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक विज्ञान के बीच एक सेतु है। यह शरीर, मन और आत्मा – तीनों के लिए पोषण, संरक्षण और संबल प्रदान करता है। जब जीवन की भागदौड़, तनाव और असंतुलन हमारी सेहत को क्षीण करने लगें, तब अश्वगंधा जैसे प्राकृतिक विकल्प हमें स्वस्थ जीवन की ओर लौटने का मार्ग दिखाते हैं। संक्षेप में, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अश्वगंधा के औषधीय महत्व के आधार पर; पौधे की वैज्ञानिक खेती शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले किसानों और पेशेवरों के लिए आय सृजन मॉडल का स्रोत हो सकती है।

विज्ञान और आयुर्वेद के संगम में अश्वगंधा एक ऐसा दीप है, जो आज के युग को भी स्वास्थ्य की नई रोशनी दे सकता है। आइए, इस अमूल्य धरोहर को अपनाकर स्वस्थ, संतुलित और सशक्त जीवन की ओर बढ़ें।

अमृतेश चंद्र शुक्ल और हर्षिता गौरव

वनस्पति विज्ञान विभाग,
विज्ञान संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

अमृतेश चंद्र शुक्ल

हर्षिता गौरव

पर्यावरण में आर्सेनिक: स्रोत, विषाक्तता, मानव तथा वनस्पति पर इसका प्रभाव

आर्सेनिक (As), जो एक मेटालॉयड तत्व है और जिसका परमाणु संख्या 33 है, पृथ्वी की सतह में व्यापक रूप से पाया जाता है। मिट्टी और चट्टानों में इसकी औसत लगभग 1.5 से 5 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम होती है। आर्सेनिक सामान्यतः अपने स्वतंत्र तत्व के रूप में बहुत कम पाया जाता है, बल्कि यह सामान्यतः सल्फर, ऑक्सीजन, और लोहा के साथ यौगिक बनाकर पाया जाता है। आर्सेनिक के कई ऑक्सीकरण अवस्था होती हैं (-3, 0, +3, और +5), जिनमें त्रिवैलेंट [As (III)] और पंचवैलेंट [As (V)] रूप जलीय वातावरण में सबसे अधिक पाए जाते हैं। ऑक्सीजन से भरपूर परिस्थितियों में, आर्सेनिक मुख्यतः आर्सेनेट [As (V)] ऑक्सीआयन के रूप में होता है, जबकि कम ऑक्सीजन वाली (reducing) परिस्थितियों में आर्सेनाइट [As (III)] प्रमुख होता है। ये दोनों रूप विषाक्तता और गतिशीलता में काफी भिन्न होते हैं; आर्सेनाइट, आर्सेनेट की तुलना में लगभग 60 गुना अधिक विषैले होते हैं और मिट्टी द्वारा कम अवशोषित होते हैं, जिससे वे भूजल में अधिक गतिशील और जैव उपलब्ध हो जाते हैं।

तालाब, झील और समुद्र जैसे जलीय प्रणालियों में आर्सेनिक जैविक मिथाइलेशन के माध्यम से जैविक रूपों जैसे मोनो-मेथाइलआर्सेनेट और डाइ-मेथाइलआर्सेनेट में परिवर्तित हो जाता है, जो अकार्बनिक आर्सेनिक की तुलना में काफी कम विषैले होते हैं। आर्सेनिक के विषाक्तता क्रम इस प्रकार है: आर्सेनाइट > आर्सेनेट > मोनो-मेथाइलआर्सेनेट > डाइ-मेथाइलआर्सेनेट > ट्राइमिथाइल आर्सीन ऑक्साइड। जल, भोजन, मिट्टी और वायु के माध्यम से अकार्बनिक आर्सेनिक के दीर्घकालिक संपर्क से कैंसर, त्वचा रोग (मेलानोसिस, हाइपरकेराटोसिस), फेफड़े और संवहनी रोग, तथा अन्य प्रणालीगत विकार जैसे गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं।

आर्सेनिक का पर्यावरण में होना प्राकृतिक भूगर्भीय स्रोतों और मानव गतिविधियों दोनों से होता है। प्राकृतिक रूप से, आर्सेनिक मिट्टी और जल में आर्सेनिक युक्त खनिजों के अपक्षय, ज्वालामुखीय गतिविधि, भू-तापीय उत्सर्जन, और कटाव के माध्यम से मुक्त होता है। तलछटी चट्टानों में, विशेष रूप से आर्ज़िलेसिअस (argillaceous) और पेलिटिक (pelletic) अवसाद, कभी-कभी उच्च आर्सेनिक सांद्रता (13 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम या अधिक) होती हैं। बंगाल डेल्टा बेसिन, जिसमें बांग्लादेश और भारत का पश्चिम बंगाल क्षेत्र शामिल है, आर्सेनिक संदूषण के लिए विशेष रूप से गंभीर क्षेत्र माना जाता है, क्योंकि गंगा-ब्रह्मपुत्र नदी प्रणाली द्वारा हिमालय से लाए गए आर्सेनिक-युक्त तलछट जमा होते हैं। ये तलछट जैविक पदार्थ और लोहे के ऑक्साइड से भरपूर होते हैं, जो कम ऑक्सीजन वाली परिस्थितियों में आर्सेनिक को भूजल में प्रवाहित करते हैं।

मानवजनित स्रोतों में- खनन, धातुकर्म, आर्सेनिक युक्त कीटनाशकों, जड़ी-बूटियों, लकड़ी संरक्षक (जैसे क्रोमेटेड कॉपर आर्सेनेट), और जीवाश्म ईंधन जलाना शामिल हैं। खनन कचरा, विशेष रूप से स्वर्ण-खनिज वाले क्षेत्रों जैसे कि ईरान के तकब भू-तापीय क्षेत्र में, स्थानीय स्तर पर मिट्टी, जल और फसलों को प्रभावित करता है। औद्योगिक उत्सर्जन वायुमंडल में आर्सेनिक कण और गैसों के रूप में प्रवेश करता है, जो मिट्टी और जल निकायों पर जम जाते हैं।

वैश्विक स्तर पर, भूजल में आर्सेनिक संदूषण से लाखों लोग प्रभावित हैं, जिसमें एशिया सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र है। बांग्लादेश, भारत, ताइवान, चीन, और थाईलैंड जैसे देशों में पीने के जल स्रोतों में आर्सेनिक की उच्च मात्रा दर्ज की गई है। केवल बांग्लादेश में लगभग पैतीस मिलियन लोग विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) मानकों से अधिक आर्सेनिक के संपर्क में हैं, जो जल जनित रोगों से लड़ने के लिए लगाए गए ट्यूब वेलों के व्यापक उपयोग के कारण हुआ। बंगाल डेल्टा बेसिन दुनिया का सबसे गंभीर आर्सेनिक विषाक्तता हॉटस्पॉट बना हुआ है, जहां लाखों निवासी प्रभावित हैं और हजारों में आर्सेनिक संबंधी स्वास्थ्य लक्षण देखे जाते हैं।

इतिहास में, आर्सेनिक विषाक्तता सबसे पहले जर्मनी (1885) और अर्जेंटीना (1917) में दर्ज की गई थी, और बाद में 1960 के दशक में ताइवान और मेक्सिको में भी पहचानी गई। अब 70 से अधिक देशों ने पीने के जल में WHO के 10 माइक्रोग्राम प्रति लीटर मानक से ऊपर आर्सेनिक संदूषण को रिपोर्ट किया है, जबकि कई विकासशील देश अभी भी 50 माइक्रोग्राम प्रति लीटर मानक का पालन करते हैं। अमेरिका व ऑस्ट्रेलिया ने क्रमशः 5 और 7 माइक्रोग्राम प्रति लीटर के कड़े मानक अपनाए हैं।

मानव संपर्क के क्षेत्रों में- संदूषित जल का सेवन, आर्सेनिक युक्त जल से सिंचित फसलों का सेवन, खनन या औद्योगिक क्षेत्रों में आर्सेनिक युक्त हवा का श्वसन, और आर्सेनिक युक्त मिट्टी के सीधे संपर्क शामिल हैं। विशेष रूप से चावल जैसी फसलें सिंचाई जल से आर्सेनिक अवशोषित कर लेती हैं, जिससे खाद्य श्रृंखला में आर्सेनिक की मात्रा बढ़ती है, जो बच्चों के लिए विशेष रूप से चिंता का विषय है। इस खाद्य श्रृंखला के माध्यम से आर्सेनिक का संचरण शोध का एक नया क्षेत्र बन गया है।

आर्सेनिक की भू-रसायन विज्ञान जटिल है और ऑक्सीकरण-अपक्षय परिस्थितियों, पीएच, जैविक पदार्थ, खनिजीय संरचना, और प्रतिस्पर्धी आयनों की उपस्थिति से प्रभावित होती है। ऑक्सीकरण परिस्थितियों में आर्सेनिक मुख्य रूप से पंचवैलेंट आर्सेनेट स्वरूपों (जैसे $H_2AsO_4^-$ और $HAsO4^{2-}$) में होता है, जो लोहे के ऑक्सीहाइड्रॉक्साइड और तलछट से मजबूत रूप से चिपक जाते हैं, जिससे उनकी गतिशीलता कम हो जाती है। कम ऑक्सीकरण और हल्के अम्लीय परिस्थितियों में, जो कई भूजल जलभृतों में सामान्य हैं, त्रिवैलेंट आर्सेनाइट स्वरूप प्रबल होते हैं, जो अधिक घुलनशील और कम चिपकने वाले होते हैं, इसलिए उनकी गतिशीलता और विषाक्तता बढ़ जाती है। सूक्ष्मजीव गतिविधि आर्सेनिक चक्रण में महत्वपूर्ण

भूमिका निभाती है, जो आर्सेनिक के ऑक्सीकरण-अपक्षय और मिथाइलेशन प्रक्रियाओं को मध्यस्थता प्रदान करती है, जिससे आर्सेनिक के रूप, गतिशीलता और जैव उपलब्धता बदलती है।

दीर्घकालिक आर्सेनिक विषाक्तता (आर्सेनिकोसिस) विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं का कारण बनती है, जिसमें त्वचा रोग (मेलानोसिस, हाइपरकेराटोसिस), विभिन्न प्रकार के कैंसर (त्वचा, मूत्राशय, फेफड़े), हृदय रोग, मधुमेह, श्वसन रोग, तंत्रिका संबंधी विकार, और विकासात्मक बाधाएं शामिल हैं। विषाक्तता की गंभीरता और प्रभाव आर्सेनिक के रूप, सांद्रता, संपर्क अवधि, और व्यक्तिगत संवेदनशीलता पर निर्भर करते हैं। आर्सेनिक जल और खाद्य पदार्थों में रंगहीन, स्वादहीन, और गंधहीन होने के कारण अक्सर इसका दीर्घकालिक विषाक्तता का पता नहीं चलता।

आर्सेनिक मिट्टी में प्राकृतिक रूप से आर्सेनिक-युक्त चट्टानों और तलछटों के अपक्षय से और संदूषित सिचाई जल के उपयोग से जमा होता है। मिट्टी की पीएच, ऑक्सीकरण-अपक्षय क्षमता, जैविक पदार्थ, और खनिज संरचना आर्सेनिक की गतिशीलता और पौधों के लिए उपलब्धता को नियंत्रित करते हैं। मिट्टी में कुल आर्सेनिक सामग्री अकेले पौधों की जैव उपलब्धता का सही संकेतक नहीं होती, इसलिए ऐसे विशिष्ट निष्कर्षण तरीके आवश्यक होते हैं जो पौधों द्वारा आर्सेनिक के अवशोषण की बेहतर नकल कर सकें। आर्सेनिक-संक्रमित मिट्टी में उगाई गई फसलें उच्च स्तर पर आर्सेनिक संचय कर सकती हैं, जिससे खाद्य सेवन के माध्यम से सीधे जोखिम होता है। पश्चिम बंगाल जैसे क्षेत्रों में आर्सेनिक संदूषित जल से सिंचित सब्जियों और अनाजों में आर्सेनिक की सांद्रता अधिक पाई गई है।

निवारण रणनीतियों में पीने के पानी की जांच और उपचार, वैकल्पिक जल स्रोतों को प्रोत्साहित करना, सिचाई प्रथाओं का प्रबंधन जिससे फसलों में आर्सेनिक का अवशोषण कम हो, और आर्सेनिक को हटाने वाली तकनीकों जैसे अवशोषण, सम्मिश्रण, और छानने के विकास शामिल हैं। इसके बावजूद, आर्सेनिक के विभिन्न मार्गों से संपर्क को रोकने और पर्यावरण के विविध संदर्भों में इसे नियंत्रित करने में अभी भी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

पर्यावरण में आर्सेनिक के स्रोत

आर्सेनिक (As) एक प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला विषैले मेटालॉयड तत्व है जो पृथ्वी के क्रस्ट में व्यापक रूप से वितरित है। इसके पर्यावरण में होने का कारण प्राकृतिक भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं और मानव गतिविधियों का जटिल संयोजन है। आर्सेनिक के स्रोतों को समझना इसके पर्यावरणीय प्रभाव और स्वास्थ्य जोखिमों का आकलन करने के लिए आवश्यक है। पर्यावरण में आर्सेनिक के स्रोत को चित्र 1 में दर्शाया गया है।

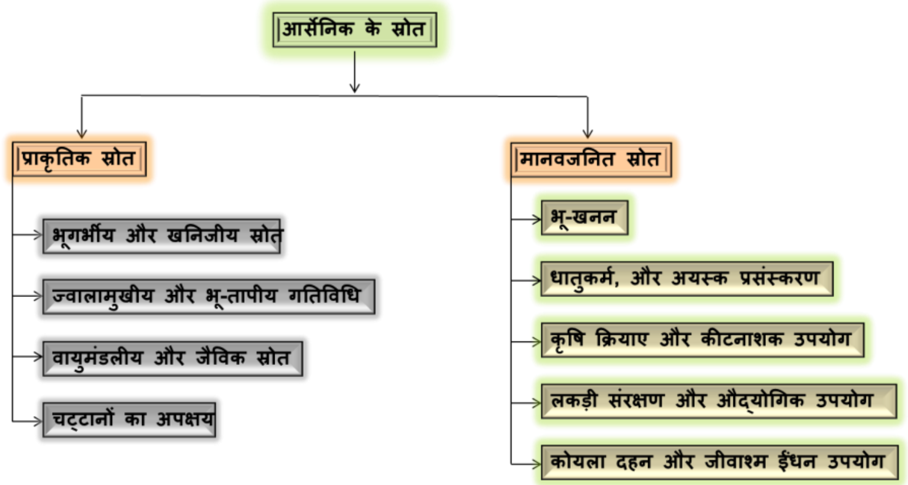

चित्र 1-पर्यावरण में आर्सेनिक के स्रोत

आर्सेनिक के प्राकृतिक स्रोत

भूगर्भीय और खनिजीय स्रोत

आर्सेनिक प्राकृतिक रूप से 200 से अधिक खनिज रूपों में पाया जाता है, मुख्य रूप से आर्सेनाइड्स, सल्फाइड्स, ऑक्साइड्स, और आर्सेनेट्स के रूप में। सबसे सामान्य आर्सेनिक युक्त खनिजों में आर्सेनोपाइराइट (FeAsS), रियल्गर (As_4S_4), और ऑरपिमेंट (As_2S_3) शामिल हैं। आर्सेनोपाइराइट प्रमुख खनिज अयस्क है और अयस्क क्षेत्रों में आर्सेनिक का मुख्य प्राकृतिक स्रोत है। तलछटी चट्टानें, विशेष रूप से शेल और चिकनी

मिट्टी, में आर्सेनिक की सांद्रता (~5–13 mg/kg) आग्नेय चट्टानों (~1.5 mg/kg) की तुलना में अधिक होती है। रूपांतरित पेलिटिक चट्टानें जैसे स्लेट्स और फाइलाइट्स में आर्सेनिक की सांद्रता औसतन लगभग 18 mg/kg होती है।

आर्सेनिक अक्सर लोहा युक्त खनिजों जैसे पाइराइट (Pyrite) और आर्सेनियन पाइराइट [$Fe(S, As)_2$] से जुड़ा होता है, जहाँ यह रासायनिक समानताओं के कारण सल्फर की जगह लेता है। यह संबंध विभिन्न भू-रासायनिक परिस्थितियों में आर्सेनिक की गतिशीलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैविक समृद्ध तलछटी चट्टानें और पीटीय स्तर अक्सर लोहे के ऑक्सीहाइड्रॉक्साइड्स पर अवशोषण और जैविक पदार्थ के साथ जटिल अंतःक्रियाओं के कारण उच्च आर्सेनिक रखते हैं।

ज्वालामुखीय और भू-तापीय गतिविधि

सक्रिय ज्वालामुखीय और भू-तापीय क्षेत्र आर्सेनिक उत्सर्जन के महत्वपूर्ण प्राकृतिक स्रोत हैं। लैटिन अमेरिका में, जैसे निकारागुआ का मोमोटोंबो, मेक्सिको का पोपोकेटेपेटल, और पेरू का युकामाने ज्वालामुखीय क्षेत्र, जल निकायों और भू-तापीय उत्सर्जनों में उच्च आर्सेनिक सांद्रता दिखाते हैं, जो कई मिलीग्राम प्रति लीटर तक पहुँच सकती है। ज्वालामुखीय राख मुख्यतः घुलनशील रियोलिटिक ज्वालामुखीय कांच के रूप में आर्सेनिक रखती है, जो सतही और भूजल में घुलकर नीचे की ओर आर्सेनिक स्तर बढ़ाती है। ज्वालामुखीय गतिविधि स्थानीय और दूर-दराज के क्षेत्रों में हवा में राख और गैसों के माध्यम से आर्सेनिक और अन्य विषैले तत्वों जैसे बोरॉन, मोलिब्डेनम, और एंटिमनी को फैला देती है। एंडियन ज्वालामुखीय बेल्ट अर्जेंटीना के चाको-पाम्पियन मैदान में भूजल में आर्सेनिक संदूषण का मुख्य स्रोत है, जहाँ सांद्रता सुरक्षित सीमा से ऊपर है और लाखों लोगों के लिए स्वास्थ्य जोखिम उत्पन्न करती है।

भू-तापीय तरल पदार्थ मेजबान चट्टानों से आर्सेनिक को घोलते हैं, विशेषकर फेल्सिक ज्वालामुखीय क्षेत्रों में, जिससे गर्म झरनों और थर्मल जल में अत्यंत उच्च सांद्रता होती है। उदाहरण के लिए, चिली के एल टाटियो भू-तापीय क्षेत्र में आर्सेनिक सांद्रता 50,000 माइक्रोग्राम/लीटर तक पाई जाती है, जबकि मेक्सिको के भू-तापीय जल में यह 250 से 73,000 माइक्रोग्राम/लीटर के बीच होती है। ये भू-तापीय आर्सेनिक स्रोत स्थानीय भूजल और सतही जल के संदूषण में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

वायुमंडलीय और जैविक स्रोत

प्राकृतिक वायुमंडलीय आर्सेनिक उत्सर्जन में हवा से उड़ने वाली धूल, ज्वालामुखीय विस्फोट, जंगल की आग, समुद्र का स्प्रे, और भू-तापीय उत्सर्जन शामिल हैं। वैश्विक प्राकृतिक आर्सेनिक उत्सर्जन का 20–40% ज्वालामुखीय विस्फोटों से होता है, जबकि एरोसोल और समुद्री नमक स्प्रे अतिरिक्त योगदान देते हैं। मिट्टी और तलछटों में जैविक गतिविधि अकार्बनिक आर्सेनिक का मिथाइलेशन करती है, जिससे वाष्पशील ऑर्गेनो-आर्सेनिक यौगिक बनते हैं, जो फिर से वायुमंडल में प्रवेश करते हैं और आर्सेनिक के जैव-भू-रासायनिक चक्र को पूरा करते हैं। यह प्राकृतिक चक्र आर्सेनिक के वितरण को नियंत्रित करता है, लेकिन इसके पर्यावरणीय भाग और गतिशीलता को भी जटिल बनाता है।

आर्सेनिक के मानवजनित स्रोत

खनन, धातुकर्म, और अयस्क प्रसंस्करण

खनन और धातु अयस्क प्रसंस्करण आर्सेनिक संदूषण के प्रमुख मानवजनित स्रोत हैं। तांबा, सोना, जस्ता, और टिन के अयस्कों के स्मेल्टिंग संचालन में आर्सेनिक युक्त धूल और अपशिष्ट वातावरण में छोड़ दिए जाते हैं, जिससे स्थानीय मिट्टी और जल प्रदूषण होता है। विशेष रूप से आर्सेनोपाइराइट युक्त खदान के टेलिंग से निकलने वाला एसिड माइन ड्रेनेज (AMD) आर्सेनिक को आसपास के जल में छोड़ देता है। खनन अपशिष्टों में आर्सेनोपाइराइट के ऑक्सीकरण से अम्लीय परिस्थितियों में आर्सेनिक एसिड बनता है, जो स्कोरोडाइट जैसे खनिजों के रूप में अवक्षिप्त हो सकता है या लोहा हाइड्रॉक्साइड्स पर अवशोषित हो सकता है। फिर भी, रेडॉक्स या पीएच में बदलाव से आर्सेनिक पुनः सक्रिय हो सकता है, जो संदूषण को बढ़ाता है। AMD के उपचार में आमतौर पर चूना मिलाकर पीएच समायोजन किया जाता है ताकि आर्सेनिक और धातु अवक्षिप्त स्थिर रहें। दुनियाभर के पुराने खनन स्थल, जैसे अमेरिका, यूरोप और एशिया के क्षेत्र, खराब कचरा प्रबंधन और पर्यावरणीय सुधार की कमी के कारण आर्सेनिक प्रदूषण से ग्रस्त हैं।

कृषि प्रथाएँ और कीटनाशक उपयोग

एक शताब्दी से अधिक समय तक, आर्सेनिक-आधारित कीटनाशक और हर्बीसाइड (जैसे सीसा आर्सेनेट, सोडियम आर्सेनाइट, मोनोमेथाइलआर्सेनिक एसिड) कृषि में व्यापक रूप से उपयोग किए गए। हालाँकि आज कई देशों में इन पर प्रतिबंध लगाए गए हैं, परंतु इनकी अवशिष्ट

मात्रा मिट्टी में बनी रहती है, विशेषकर बागानों और खेतों में, जिससे दीर्घकालिक संदूषण होता है। इन स्रोतों से आर्सेनिक मिट्टी में जमा हो सकता है, फसलों द्वारा अवशोषित हो सकता है, और सूक्ष्मजीव मिथाइलेशन के माध्यम से गतिशील हो सकता है। अध्ययन बताते हैं कि संदूषित मिट्टी में उगाई गई सब्जियों में आर्सेनिक का स्तर बढ़ा होता है, जिससे खाद्य सेवन के माध्यम से मानव स्वास्थ्य जोखिम होते हैं। कुछ जैविक आर्सेनिकल यौगिक को अभी भी कुछ उपयोगों में अनुमति प्राप्त हैं, जो मिथाइलेड आर्सीन के रूप में वायुमंडल में उत्सर्जित हो सकते हैं, जिससे वायुमंडलीय आर्सेनिक में वृद्धि होती है। कृषि मिट्टी में आर्सेनिक यौगिकों की स्थिरता एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय चिंता बनी हुई है।

लकड़ी संरक्षण और औद्योगिक उपयोग

क्रोमेटेड कॉपर आर्सेनेट (CCA) और अन्य आर्सेनिक-आधारित संरक्षक जो लकड़ी के उपचार में उपयोग होते हैं, ने लकड़ी संरक्षण संयंत्रों के आसपास की मिट्टी और जल में आर्सेनिक संदूषण फैलाया है। CCA-प्रसंस्कृत लकड़ी में उच्च स्तर का आर्सेनिक होता है, जो मौसम और पीएच परिवर्तनों के तहत पर्यावरण में लीक हो सकता है। लकड़ी उपचार स्थलों के आसपास मिट्टी में आर्सेनिक स्तर हजारों मिलीग्राम प्रति किलोग्राम तक पहुंच सकता है, जो आसपास के नदियों और भूजल को दूषित करता है। CCA उपयोग में स्वैच्छिक कटौती के बावजूद, उपचारित लकड़ी में अवशिष्ट आर्सेनिक पर्यावरणीय स्रोत बना हुआ है। आर्सेनिक का अन्य औद्योगिक उपयोग ग्लास निर्माण, वर्णक उत्पादन, और मिश्र धातुओं में होता है। आर्सेनिक युक्त औद्योगिक अपशिष्टों और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का अनुचित निपटान भी पर्यावरणीय प्रदूषण में योगदान देता है।

कोयला दहन और जीवाश्म ईंधन उपयोग

कोयला और पीट में आर्सेनिक की विभिन्न सांद्रता होती है, जो दहन के दौरान वाष्पित होकर गैसों और महीन कणों के रूप में वायुमंडल में उत्सर्जित होती है। चीन के गुइझोउ प्रांत में उच्च आर्सेनिक वाले कोयले ने स्थानीय आबादी में व्यापक आर्सेनिक विषाक्तता पैदा की है, जो हीटिंग और खाद्य सुखाने के लिए कोयले पर निर्भर हैं।

घरेलू वायु प्रदूषण, संदूषित धूल, और कोयला दहन से दूषित खाद्य पदार्थों के कारण क्रॉनिक आर्सेनिसिज्म हुआ है। औद्योगिक कोयला उपयोग कई क्षेत्रों में महत्वपूर्ण मानवजनित आर्सेनिक स्रोत बना हुआ है।

आर्सेनिक की गतिशीलता को नियंत्रित करने वाले भू-रासायनिक प्रक्रियाएँ

आर्सेनिक की पर्यावरणीय गतिशीलता मुख्यतः रेडॉक्स परिस्थितियों, पीएच, खनिज संरचना, और मिट्टी तथा तलछटों में जैविक पदार्थ की मात्रा पर निर्भर करती है। ऑक्सीकरणीय परिस्थितियों में आर्सेनेट As(V) प्रमुख होता है और यह लोहा एवं एल्यूमीनियम ऑक्साइड्स पर मजबूत अवशोषित होता है, जिससे इसकी गतिशीलता सीमित हो जाती है। कम ऑक्सीकरणीय परिस्थितियों में आर्सेनाइट As(III) अधिक स्थिर और गतिशील होता है क्योंकि इसका अवशोषण कमजोर होता है। खनिज सतहों से आर्सेनिक का डिसोर्शन पीएच, रेडॉक्स पोटेंशियल, और फॉस्फेट तथा बाइकार्बोनेट जैसे प्रतिस्पर्धी आयनों की उपस्थिति से प्रेरित हो सकता है। सूक्ष्मजीव गतिविधि, विशेषकर लोहा-अपघटित बैक्टीरिया, आर्सेनिक को तलछटों से भूजल में रिलीज़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्राकृतिक प्रक्रियाएं जैसे कटाव, घुलन, और अपक्षय लगातार आर्सेनिक को बेसाल्ट और खनिज जमा से मिट्टी और जल में छोड़ती हैं। आर्सेनिक युक्त ज्वालामुखीय राख और तलछटों का स्थानांतरण मैदानी इलाकों में भूजल के व्यापक संदूषण का कारण बनता है, जैसा कि बंगाल डेल्टा और चाको-पाम्पियन मैदान में देखा गया है।

क्षेत्रीय आर्सेनिक स्रोतों की विशेषताएं

- **लैटिन अमेरिका:** ज्वालामुखीय और भू-तापीय गतिविधियाँ मुख्य प्राकृतिक स्रोत हैं, जहां वाल्कैनिक राख, भूतापीय स्प्रिंग्स, और सक्रिय ज्वालामुखियों के आसपास जलवाही स्तर (aquifers) में महत्वपूर्ण आर्सेनिक सांद्रता देखी गई है। खनन गतिविधियाँ अयस्क जमा से आर्सेनिक को भूजल में गतिशील करती हैं।
- **दक्षिण एशिया:** बंगाल डेल्टा क्षेत्र हिमालयी आर्सेनिक-युक्त तलछटों के कटाव और उनके जैविक समृद्ध आवली जलभृतों में जमाव का प्रमुख उदाहरण है, जिससे भूजल में आर्सेनिक स्तर सुरक्षित सीमा से ऊपर हो जाता है।
- **उत्तरी अमेरिका और यूरोप:** ऐतिहासिक खनन, धातुकर्म, और औद्योगिक गतिविधियों ने मिट्टी और भूजल में आर्सेनिक संदूषण की विरासत छोड़ी है। इसके अतिरिक्त, येलोस्टोन जैसे क्षेत्रों में भू-तापीय तरल पदार्थ और यूरोप के ज्वालामुखीय क्षेत्र स्थानीय आर्सेनिक समृद्धि में योगदान देते हैं।

आर्सेनिक का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

आर्सेनिक (As) का स्वास्थ्य पर प्रभाव केवल इसके पर्यावरण में मौजूद होने से नहीं बल्कि उसके संपर्क (एक्सपोजर) से होता है। आर्सेनिक के हानिकारक प्रभाव उसकी मात्रा, संपर्क की अवधि, संपर्क का मार्ग (सेवन, श्वसन, त्वचा संपर्क), रासायनिक रूप (स्पीशीज) और अन्य विषैले पदार्थों के साथ सह-संपर्क पर निर्भर करते हैं। मानव संपर्क मुख्यतः दूषित पीने के पानी, भोजन और वायु के माध्यम से होता है। जिसको हम चित्र 2 की सहायता से समझते है।

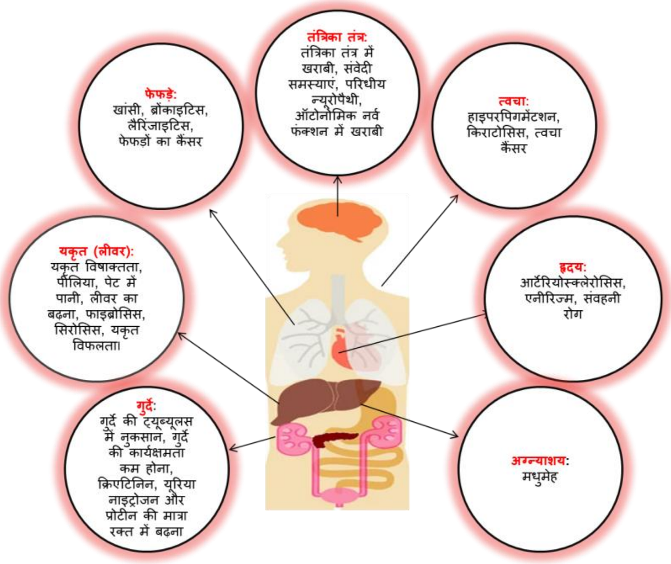

चित्र 2-आर्सेनिक का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

मुख्य प्रभावित अंग और प्रभाव:

- **त्वचा:** लंबे समय तक आर्सेनिक युक्त पानी के सेवन से त्वचा पर दाग-धब्बे, रंग परिवर्तन (हाइपरपिग्मेंटेशन), केराटोसिस और त्वचा कैंसर जैसे रोग हो सकते हैं।
- **हृदय:** आर्सेनिक की उच्च मात्रा हृदय संबंधी रोगों जैसे आर्टेरियोस्क्लेरोसिस, एनीरिज्म, और संवहनी रोगों से मृत्यु के मामलों को बढ़ाती है।
- **पैनक्रियास (अग्न्याशय):** विशेष रूप से आर्सेनिक से दूषित चावल के सेवन से अग्न्याशय को नुकसान होता है और मधुमेह का खतरा बढ़ता है। आर्सेनिक अग्न्याशय की बीटा-कोशिकाओं के कार्य को बाधित करता है।
- **तंत्रिका तंत्र:** केंद्रीय तंत्रिका तंत्र आर्सेनिक के लिए संवेदनशील होता है। दीर्घकालिक संपर्क से नर्वस सिस्टम में डैमेज होता है, जिससे संवेदी समस्याएं, परिधीय न्यूरोपैथी, और ऑटोनोमिक नर्व फंक्शन में खराबी होती है।
- **फेफड़े:** आर्सेनिक युक्त हवा में सांस लेने से लगातार खांसी, ब्रोंकाइटिस, लैरिजाइटिस, और फेफड़ों के कैंसर का खतरा बढ़ता है। जन्म पूर्व और बचपन में भी दूषित पानी से फेफड़ों का विकास प्रभावित होता है।
- **यकृत (लीवर):** बार-बार संपर्क से यकृत में आर्सेनिक जमा हो जाता है, जिससे यकृत विषाक्तता, पीलिया, पेट में पानी (Ascites), लीवर का बढ़ना, फाइब्रोसिस, सिरोसिस और यकृत विफलता हो सकती है।
- **गुर्दे:** आर्सेनिक गुर्दे की ट्यूब्यूलस को नुकसान पहुंचाता है, जिससे गुर्दे की कार्यक्षमता प्रभावित होती है, क्रिएटिनिन, यूरिया नाइट्रोजन और प्रोटीन की मात्रा रक्त में बढ़ जाती है।

आर्सेनिक विषाक्तता के कारण:

- सेलुलर श्वसन में बाधा, ATP उत्पादन रुकना।
- आवश्यक एंजाइम के साथ जटिल यौगिक बनाना।
- प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजाति (ROS) उत्पन्न कर ऑक्सीडेटिव तनाव पैदा करना।

- डीएनए क्षति (जैसे क्रोमोसोमल परिवर्तन, माइक्रोन्यूक्लिय, DNA-प्रोटीन क्रॉस-लिंकिंग) और एपिजेनेटिक बदलाव (जैसे हिस्टोन संशोधन और DNA मिथाइलेशन में असामान्यताएं)।

ये प्रक्रियाएं कैंसर और अंगों के कामकाज में गड़बड़ी का कारण बनती हैं।

आर्सेनिक का वनस्पतियों पर प्रभाव

संवेदनशीलता और प्रभाव

पौधे मिट्टी में पाए जाने वाले आर्सेनिक के प्रति अत्यंत संवेदनशील होते हैं। आर्सेनिक मुख्यतः दो रूपों में होता है: आर्सेनाइट [As(III)] और आर्सेनेट [As(V)], जिसमें आर्सेनाइट अधिक गतिशील और विषैला होता है, खासकर ऑक्सीजन रहित (एनारोबिक) मिट्टी में।

आकारिक और विकासात्मक प्रभाव

- जड़ों का विकास बाधित होता है: जड़ की लंबाई, वृद्धि और बायोमास कम हो जाती है।
- आर्सेनिक जड़ों से तनों और पत्तियों तक पहुंचता है, जिससे वृद्धि रुक जाती है, पत्ते पीले पड़ते हैं (क्लोरोसिस), सूख जाते हैं, झड़ने लगते हैं, और पौधे की कुल उपज घट जाती है।
- बीज अंकुरण दर में कमी।
- विभिन्न पौधों की आर्सेनिक सहनशीलता अलग-अलग होती है।

फिजियोलॉजिकल और जैव रासायनिक प्रभाव

- **ऑक्सीडेटिव तनाव:** आर्सेनिक माइटोकॉन्ड्रिया में ROS उत्पन्न करता है, जो कोशिका झिल्ली को नुकसान पहुंचाकर सेल मृत्यु का कारण बनता है।
- **प्रकाश संश्लेषण में बाधा:** क्लोरोफिल और क्लोरोप्लास्ट संरचना नष्ट होती है, जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्षमता कम हो जाती है।
- **श्वसन और ऊर्जा चयापचय:** आर्सेनिक माइटोकॉन्ड्रिया की इलेक्ट्रॉन ट्रांसपोर्ट चेन को बाधित करता है, ATP संश्लेषण कम करता है, जिससे ऊर्जा उत्पादन घटता है।
- **DNA क्षति और एपिजेनेटिक प्रभाव:** पौधों में भी आर्सेनिक DNA को नुकसान पहुंचाता है और एपिजेनेटिक परिवर्तन करता है।

मिट्टी और माइक्रोबियल समुदायों पर प्रभाव

- आर्सेनिक मिट्टी की गुणवत्ता को प्रभावित करता है, माइक्रोबियल विविधता और एंजाइम गतिविधियों में कमी करता है।
- पोषक तत्व चक्रण और जैविक अपघटन कम हो जाता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता घटती है और पौधों की वृद्धि बाधित होती है।

पर्यावरणीय और कृषि संबंधी परिणाम

- आर्सेनिक का खाद्य फसलों में संचय भोजन श्रृंखला के माध्यम से मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा है। विशेष रूप से चावल और सब्जियों में इसका संचय चिंताजनक है।
- आर्सेनिक तनाव और चयापचय की बाधा से फसल उपज कम होती है, जिससे कृषि उत्पादन प्रभावित होता है।
- मिट्टी में आर्सेनिक का लम्बा समय तक बने रहना और इसके जैव संचय की वजह से कड़ी निगरानी और प्रभावी नियंत्रण रणनीतियों की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

आर्सेनिक संदूषण एक गंभीर पर्यावरणीय और सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती का प्रतिनिधित्व करता है। यह विशेष रूप से दक्षिण एशिया जैसे क्षेत्रों में, जहाँ प्राकृतिक भूवैज्ञानिक परिस्थितियाँ और मानवीय गतिविधियाँ मिट्टी, पानी और खाद्य श्रृंखलाओं में आर्सेनिक के स्तर को बढ़ाने के लिए

अभिसरण करती हैं। पृथ्वी की पपड़ी में आर्सेनिक की व्यापक उपस्थिति, मुख्य रूप से आर्सेनोपाइराइट, रियलगर और ऑर्पिमेंट जैसे खनिज रूपों में, भूजल प्रणालियों में इसके जमाव की ओर ले जाती है, विशेष रूप से कम करने वाली परिस्थितियों में जो अधिक विषैले और मोबाइल आर्सेनाइट प्रजातियों के लिए अनुकूल हैं। यह भू-रासायनिक व्यवहार बताता है कि आर्सेनिक संदूषण विशेष रूप से बंगाल डेल्टा बेसिन जैसे जलोढ़ मैदानों में गंभीर क्यों है, जिसमें भारत और बांग्लादेश के कुछ हिस्से शामिल हैं, साथ ही समान तलछटी और जल विज्ञान संबंधी विशेषताओं वाले अन्य क्षेत्र भी हैं।

आर्सेनिक के लिए मानव जोखिम मुख्य रूप से पीने के पानी, खाद्य उपभोग-विशेष रूप से दूषित पानी से सिंचित फसलों के माध्यम से-और औद्योगिक या खनन स्थलों के पास साँस लेने के माध्यम से होता है। आर्सेनिक के रंगहीन, स्वादहीन और गंधहीन स्वभाव के कारण समस्या और बढ़ जाती है, जो प्रतिकूल स्वास्थ्य प्रभाव दिखाई देने तक दीर्घकालिक संपर्क को अनदेखा रहने देती है। आर्सेनिक की विषाक्तता बहुआयामी है, जो त्वचा, यकृत, फेफड़े, गुर्दे, तंत्रिका तंत्र, हृदय प्रणाली और अग्न्याशय सहित कई अंग प्रणालियों को प्रभावित करती है। लंबे समय तक संपर्क त्वचा के घावों, विभिन्न कैंसर, हृदय और श्वसन रोगों, मधुमेह और तंत्रिका संबंधी दुर्बलताओं से दृढ़ता से जुड़ा हुआ है। आर्सेनिक विषाक्तता के पीछे आणविक तंत्रों में सेलुलर श्वसन में हस्तक्षेप, प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों द्वारा प्रेरित ऑक्सीडेटिव तनाव, डीएनए क्षति और एपिजेनेटिक संशोधन शामिल हैं, जो सामूहिक रूप से अंग शिथिलता और कार्सिनोजेनेसिस में योगदान करते हैं। कृषि संदर्भों में, आर्सेनिक पौधों की वृद्धि को बाधित करके और खाद्य आपूर्ति को दूषित करके दोहरा खतरा पैदा करता है फसलों, विशेष रूप से चावल और सब्जियों जैसे मुख्य खाद्य पदार्थों द्वारा ग्रहण किया गया आर्सेनिक मानव खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करता है, जिससे आहार जोखिम और संबंधित स्वास्थ्य जोखिम बढ़ जाते हैं। यह आर्सेनिक-स्थानिक क्षेत्रों में एक दुष्चक्र बनाता है, जहां सिंचाई के लिए दूषित भूजल पर निर्भरता पर्यावरण और स्वास्थ्य संबंधी खतरों को बढ़ाती है। इसके अतिरिक्त, आर्सेनिक पोषक चक्रण और मिट्टी की उर्वरता के लिए आवश्यक मिट्टी के सूक्ष्मजीव समुदायों और एंजाइमेटिक गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, जिससे कृषि उत्पादकता और पारिस्थितिकी तंत्र का लचीलापन और कम हो जाता है। आर्सेनिक संदूषण को कम करना इसके बहुक्रियात्मक स्रोतों-प्राकृतिक और मानवजनित दोनों-और रेडॉक्स स्थितियों, पीएच, कार्बनिक पदार्थ और सूक्ष्मजीव गतिविधि से प्रभावित इसके जटिल भू-रासायनिक व्यवहार के कारण जटिल है। प्रभावी रणनीतियों के लिए कमजोर क्षेत्रों की पहचान करने के लिए उन्नत भू-स्थानिक और भाविक जानकारी के लिए मॉडलिंग तकनीकों का उपयोग कर व्यापक निगरानी और जोखिम मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। हस्तक्षेप के उपायों में पीने के पानी का परीक्षण और उपचार, वैकल्पिक जल स्रोतों को बढ़ावा देना, फसलों में आर्सेनिक के अवशोषण को कम करने के लिए सिंचाई प्रथाओं का प्रबंधन और अवशोषण और निस्पंदन जैसी कुशल आर्सेनिक हटाने की तकनीक विकसित करना शामिल होना चाहिए। सार्वजनिक स्वास्थ्य शिक्षा, बेहतर कृषि पद्धतियाँ और नीतिगत हस्तक्षेप आर्सेनिक से जुड़ी बीमारियों को रोकने और जोखिम को कम करने के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। आर्सेनिक की पर्यावरणीय गतिशीलता और स्वास्थ्य प्रभावों को समझने में प्रगति के बावजूद, चुनौतियाँ बनी हुई हैं। मिट्टी और भूजल में आर्सेनिक की मौजूदगी, इसके जैव संचय और पारिस्थितिकी तंत्रों के साथ जटिल अंतःक्रियाओं के कारण निगरानी, अनुसंधान और उपचार के लिए दीर्घकालिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, आर्सेनिक संदूषण को संबोधित करना संदर्भ-विशिष्ट होना चाहिए, जिसमें क्षेत्रीय भूविज्ञान, जल विज्ञान, कृषि पद्धतियाँ और सामाजिक-आर्थिक कारकों पर विचार किया जाना चाहिए, विशेष रूप से भारत, बांग्लादेश और दक्षिण एशिया के अन्य प्रभावित देशों में। पर्यावरण विज्ञान, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि एवं सामुदायिक सहभागिता को मिलाकर एकीकृत, बहु-विषयक दृष्टिकोणों के माध्यम से ही आर्सेनिक संदूषण के प्रतिकूल परिणामों को प्रभावी ढंग से कम किया जा सकता है, जिससे मानव स्वास्थ्य की सुरक्षा होगी और दुनिया भर में प्रभावित क्षेत्रों में सतत विकास सुनिश्चित होगा।

आदित्य आभा सिंह[1], नौशाद अहमद[1], अरविन्द कुमार सिंह[2]

[1]वनस्पति विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ-226007

[2]बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ-226007

आदित्य आभा सिंह

नौशाद अहमद

अरविन्द कुमार सिंह

प्रमुख संदर्भ

अलार्कोन-हेरेरा, एम. टी., और गुटिरेज़, एम. (2022)। पर्यावरण निगरानी और मूल्यांकन 2022: भूजल संसाधनों का प्रबंधन और प्रदूषण की रोकथाम [समीक्षा]। पर्यावरण विज्ञान और स्वास्थ्य में वर्तमान राय, 27, लेख 100349।

डी., दत्ता, एस., मिश्रा, आर., अग्रवाल, पी., कुमारी, टी., अडेमी, एस. बी., कुमार मौर्य, ए., गांगुली, एस., अतीक, यू., सील, एस., एट अल. (2023)। पौधों पर आर्सेनिक के नकारात्मक प्रभाव और शमन रणनीतियाँ। पौधे, 12(1815)।

फ़िनेगन, पी. एम., और चेन, डब्ल्यू. (2012)। आर्सेनिक विषाक्तता: पौधे के चयापचय पर प्रभाव। फ्रंटियर्स इन फिजियोलॉजी, 3, 182.

बंडशूह, जे., श्नाइडर, जे., आलम, एम.ए., नियाज़ी, एन.के., हेराथ, आई., परवेज़, एफ., टोमास्ज़ेवस्का, बी., गुइलहर्मे, एल.आर.जी., मैती, जे.पी., लोपेज़, डी.एल., फर्नांडीज सिरेली, ए., पेरेज़-कैरेरा, ए., मोरालेस-सिम्फ़र्स, एन., अलारकोन-हेरेरा, एम. टी., बैश, पी., मोहन, डी., और मुखर्जी, ए. (2021)। लैटिन अमेरिका में आर्सेनिक प्रदूषण के सात संभावित स्रोत और उनके पर्यावरण और स्वास्थ्य पर प्रभाव। संपूर्ण पर्यावरण का विज्ञान, 780, लेख 146274.

राजू, एन. जे. (2022)। भू-पर्यावरण में आर्सेनिक: स्रोतों, भू-रासायनिक प्रक्रियाओं, विषाक्तता और निष्कासन प्रौद्योगिकियों की समीक्षा। पर्यावरण अनुसंधान, 203, लेख 111782.

रेजा शरीफी, फरीद मूर और बेहनम केशवरजी (2014) ताकाब भूतापीय क्षेत्र, उत्तर-पश्चिमी ईरान में आर्सेनिक, एंटीमनी और पारे के संभावित स्वास्थ्य जोखिम, अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण अध्ययन जर्नल, 71:3, 372-390

सिंह, एन., कुमार, डी., और साहू, ए. पी. (2007)। पर्यावरण में आर्सेनिक: मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव और संभावित रोकथाम। जर्नल ऑफ़ एनवायर्नमेंटल बायोलॉजी, 28(2), 359–365।

सिंह, जे., और कलमधद, ए. एस. (2011)। मिट्टी, पौधों, मानव स्वास्थ्य और जलीय जीवन पर भारी धातुओं के प्रभाव। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन केमिस्ट्री एंड एनवायरनमेंट, 1(2), 15–21। आईएसएसएन 2248-9649।

राष्ट्र की एकता को यदि बनाकर रखा जा सकता है तो उसका माध्यम हिन्दी ही हो सकता है।

—सुब्रह्मण्यम भारती

उत्तराखंड की जल परंपरा की अनूठी पहचान – 'नौला': जल संस्कृति और जल विज्ञान की लुप्त होती राष्ट्रीय धरोहर

जलं जीवस्य जीवनम्। - मनुस्मृति 3.74
अर्थात जल ही जीवन का आधार है।

यह तो सर्वविदित है कि जल की मनुष्य की उत्पत्ति के समय से ही अपरिहार्य आवश्यकता रही है, क्योंकि जल का महत्व मानव जीवन के लिए वायु के समान ही है, भोजन से भी अधिक अनिवार्य आवश्यकता जल की होती है। मनुष्य ने अपने रहने के ठिकाने भी उन्हीं स्थानों पर बसाये , जहां आस-पास आसानी से पानी उपलब्ध हो, खेत भी पानी वाली जगह के आस-पास बनाये गये। प्राचीन काल में मानव अपनी जल की आवश्यकता को या तो नदियों से पूरा किया करते थे या फिर किसी स्रोत वाले धारा के रूप में बहने वाला जल अपने उपयोग में लाया करते थे। इसके अतिरिक्त वर्षा का जल भी कहीं-कहीं एकत्र करके उपयोग में लाया जाता था।

नौले केवल पानी के स्रोत नहीं, पीढ़ियों का पोषण करने वाली धरती की नाभि हैं। — स्थानीय कहावत, कुमाऊं क्षेत्र

'नौला', यह मध्य पहाड़ी भाषा का शब्द है, जिसका सीधा सम्बन्ध नाभि से हैं अर्थात जैसे नाभि नल से नवजात बच्चे को गर्भाशय में पोषण मिलता है, उसी तरह से नौला के पानी के जरिये माँ धरती हमको पोषित करती हैं। नौला का निर्माण एक विशिष्ट वास्तु-विधान के अन्तर्गत किया जाता था। नौलों की आवश्यकता मनुष्य को तब महसूस हुई, जब पहाड़ी और ऊंचाई वाले क्षेत्रों में नदियां तो निचली धारा में बहती थीं और हर जगह धारा रूप प्रवाह मिलना मुश्किल होता था। किसी-किसी स्थान पर पानी बहुत कम मात्रा में निकलता था। ऐसे में उस पानी को नौले के रूप में इकट्ठा करने की आवश्यकता हुई।

आरम्भकाल में जल एकत्रीकरण के लिए जमीन को खोदकर गड्ढेनुमा आकार बनाया गया, बाद में उसी पानी को पीने, नहाने, कपड़े धोने व जानवरों को पिलाने के लिए उपयोग किया गया। निरन्तर विकास होने के कारण खुले गड्ढों का पानी उतना साफ नहीं रहने लगा। पानी भरते समय जल में कम्पन के कारण मिट्टी भी पानी के साथ मिल जाती व खुले होने के कारण आस-पास का कूड़ा-करकट भी उसमें चला जाता। जंगली पशु-पक्षी भी पानी को गंदा कर सकते थे। इन्हीं गड्ढों के चारों तरफ पत्थर लगाये गये और फर्श पर भी पत्थर लगाये गये । दीवारें खड़ी करके छत भी पत्थरों द्वारा बना दी गयी, यहीं जल मंदिर "नौला" कहलाई।

ग्राम्य जीवन के लिए नौला कितना महत्वपूर्ण माना जाता था, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विवाह के उपरान्त जब नव वधु अपने ससुराल में आती है तो सर्वप्रथम उसे नौला पूजन के लिए भेजा जाता है। नौला पूजन उत्तराखंड की सांस्कृतिक परम्परा का एक अनुष्ठान है। इसमें विवाह संस्कार सम्पन्न हो जाने के बाद जब नवविवाहिता वधू अपने ससुराल पहुंचती है तो वह उस दिन या दूसरे दिन प्रातः अपने ससुराल के गांव की कन्याओं और कुछ सौभाग्यवती महिलाओं साथ अपने गांव के जलाशय -नौला व धारा के पास जाकर रोली, अक्षत, पुष्प से उसका पूजन करती है और इसके उपरान्त घर लौटते समय एक जलपात्र में वहां से पानी भरकर उसे अपने सिर पर रखकर घर लाती है और उसे सभी बड़ों को व इष्ट मित्रों को पिलाती है और उनसे चिर सौभाग्य का आशीर्वाद प्राप्त करती है। इस नौला पूजन अनुष्ठान का उत्तराखंड के सभी अंचलों में अनुपालन किया जाता है । इन नौलों के माध्यम से उत्तराखंड में प्रचलित अत्यन्त उत्कृष्ट स्तर की स्थापत्य कला और वास्तुकला का निदर्शन हुआ है। भारतीय परम्परा के अनुसार जलाशय के निकट ही देवमन्दिर तथा देव प्रतिमाओं का भी निर्माण किया जाता है ताकि इन जल निकायों की शुद्धता और पवित्रता बनी रहे और भारतीय पर म्परा में जल को जो ईश्वर तुल्य आस्थाभाव प्राप्त है, उसे ही नौलों और धारों के माध्यम से मूर्त रूप दिया जा सके।

कुमाऊं,गढ़वाल के अलावा हिमाचल प्रदेश और नेपाल में भी जल आपूर्ति के परंपरागत प्रमुख साधन नौले ही रहे हैं। ये नौले हिमालय वासियों की समृद्ध-प्रबंध परंपरा और लोक संस्कृति के प्रतीक हैं। नौले बनाने की प्रथम शुरूआत कब और किसने की इसका निश्चित समय तो ज्ञात नहीं है। किन्तु कई हजार वर्ष पूर्व नौलों का निर्माण आरम्भ हो चुका था। स्थानीय मान्यतानुसार अधिकतर प्राचीन नौले पाण्डवों के काल में ही बने हुए देखने को मिलते हैं। पुरे कुमाऊँ क्षेत्र में बाद में कत्यूरी वंश के शासको द्वारा लगभग हर गांव व देवालय में पेयजल की सुविधा के लिए नौले का निर्माण कराया। नौलों को वहीं महत्व दिया जाता था, जो देवालयों को दिया जाता था। देवालयों के वास्तु के अनुरूप ही इनका निर्माण भी विशिष्ट वास्तु विधान के अन्त र्गत किया जाता था। तदान्तर में इन नौलों के माध्यम से उत्तराखंड में प्रचलित अत्यन्त उत्कृष्ट स्तर की स्थापत्य कला और वास्तुकला का निदर्शन हुआ है।

नौलों का निर्माण भूमिगत पानी के रास्ते पर गड्ढा बनाकर उसके चारों ओर से सीढ़ीदार चिनाई करके किया जाता था। इन नौलों का आकार वर्गाकार होता है और इनमें छत होती है तथा कई नौलों में दरवाजे भी बने होते हैं। जिन्हें बेहद कलात्मक ढंग से बनाया जाता था। इन नौ लों की बाहरी दीवारों में देवी-देवताओं के सुंदर चित्र भी बने रहते हैं। स्तम्भों पर शस्त्र लिए द्वारपाल, अश्वरोही, नृत्यांगनाएं, मंगलघट, कलशधारिणी गंगा-यमुना तथा सर्प, पक्षी की आकृतियों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। प्रवेश द्वारा स्तम्भों को द्वाराशाखाओं से भी सुसज्जित करने की परम्परा भी प्रच लित थी। स्यूनराकोट (अल्मोड़ा) के नौले में वीणावादिनी सरस्वती, दशावतार एवं महाभार के दृश्य उल्लेखनीय है।

नौलों के आस-पास सिलिंग, पीपल, बड़ जैसे दीर्घजीव धार्मिक दृष्टि से पवित्र माने जाने वाले वृक्ष लगाये जाते थे। ये नौले आज भी स्थापत्य एवं वास्तुशिल्प का बेजोड़ नमूना हैं। उत्तराखंड में ज्यादातर नौलों का निर्माण कत्यूर व चंद राजाओं के समय में किया गया था। नौलों के इतिहास की दृष्टि से बागेश्वर स्थित बद्रीनाथ का नौला उत्तराखण्ड का सर्वाधिक प्राचीन नौला माना जाता है जिसकी स्थापना सातवीं शताब्दी ई. में हुई थी। चंपावत के बालेश्वर मंदिर का नौला उत्तराखंड का सर्वोत्कृष्ट सांस्कृतिक वैभव सम्पन्न नौला है। इस नौले की स्थापना 1272 ई. में चंदवंश के राजा थोरचंद ने की थी। इस पर उत्कीर्ण शिलालेख बताते हैं कि राजा कूर्मचंद ने 1442 ई.में इसका जीर्णोद्धार किया।चम्पावत की सांस्कृतिक पहचान बना यह नौला उत्तराखंड की वास्तुकला और स्थापत्य कला का भी एक अद्भुत नमूना प्रस्तुत करता है। बड़ी बड़ी प्रस्तर शिलाओं पर सुंदर नक्काशियां उकेरी गई हैं। यहां अनेक देवमूर्तियाँ के ध्वंशावशेष हैं जिसमें एक मूर्ति भगवान बुद्ध से बहुत मिलती जुलती है। चम्पावत-मायावती पैदल मार्ग पर ढकन्ना गांव में स्थित 'एकहथिया नौला' भी एक सांस्कृतिक महत्त्व का नौला है। "एकहथिया नौला' कुमाऊं की प्राचीन स्थापत्य कला का एक अनुपम उदाहरण है। लोगों का विश्वास है कि इस नौले का निर्माण एक हाथ वाले शिल्पी ने किया था।

"शेषशायी विष्णु जिस जल में विश्राम करते हैं, वही जल मंदिर (नौला) हमारी जीवनधारा है।"— *स्थानीय मान्यता, द्वाराहाट (अल्मोड़ा)*

भारतीय संस्कृति में तथा हमारे वेद पुराणों में जल को विष्णु स्वरूप समझा जाता है। गंगा , यमुना, सरस्वती, नर्मदा, कावेरी आदि नदियों की तरह ही भगवान श्री विष्णु को समर्पित नौला बहुत पवित्र स्थल समझा जाता था। लोग इन जल मंदिर नौलों की पूजा किया करते हैं। द्वाराहाट(अल्मोड़ा) क्षेत्र में नौलों के पास बने मंदिर व उनके अन्दर पत्थरों पर विष्णु की आकृति इस बात को प्रमाणित करती है। इनकी पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए जलदेवता के रूप में शेषशायी विष्णुनारायण की प्रतिमाओं को तो प्रमुखता से स्थान दिया गया है, कुछ में इन्हें खड़ी मुद्राओं में भी दिखाया गया है। कहीं-कहीं सूर्य की रथिकाओं में स्थापित किए गये हैं। कुछ नौले तो आकर्षक सूर्य प्रतिमाओं से सुसज्जित हैं।

चित्र 1- ऐतिहासिक व कुमाऊं की बेजोड़ शिल्पकला का प्रतीक पंत्यौरा नौला या पंत नौला (dudhwalive.com के सौजन्य से)

कौन नहीं जानता है कि अल्मोड़ा नगर, जिसे चंद राजाओं ने 1563 में राजधानी के रूप में बसाया था, वहां परंपरागत जल प्रबंधन के मुख्य स्रोत वहां के 360 नौले ही थे। अपनी स्थापना के लगभग पांच शताब्दियों के बाद अल्मोड़ा के अधिकांश नौले लुप्त हो कर इतिहास की धरोहर बन चुके

हैं और इनमें से कुछ नौले भूमिगत जलस्रोत के क्षीण होने के कारण आज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। तदान्तर में कई पुराने नौलों का जीर्णोद्वार भी कराया गया। वर्ष 1990 के बाद वर्षा में भी निरन्तर कमी होती गयी व अधिकतर नौले सूखते गये। नौलों के सूखने का एक अन्य कारण भी रहा, भूकम्प के झटकों के कारण पानी रिसाव का मार्ग जो कि स्रोत के रूप में नौलों तक पहुंचता था वो अवरूद्व हो गया या फिर उसने कोई और दिशा पकड़ ली और नौलों तक पानी नहीं पहुंचा और इससे नौलों का अस्तित्व लुप्त प्रायः होने लगा। जलसंकट की यह समस्या दिन प्रतिदिन भीषण रूप धारण करती जा रही है। गर्मी के महीने शुरू होते ही उत्तराखंड के गांव गांव में पेयजल की आपूर्ति एक भीषण समस्या के रूप में उभरने लगती है। इसके साथ ही, नौले घरों से दूर हुआ करते थे, वहां से पानी का बरतन सिर पर रखकर लाना पड़ता था। जो समय के साथ लोगों को असुविधाजनक लगने लगा। और धीरे -धीरे नालों पर पानी के लिए लोगों की निर्भरता कम होने लगी। हालांकि कई गांवों में अब भी नौलों से पानी लाने का प्रचलन चालू है।

उत्तराखण्ड हिमालय में अन्धाधुन्ध विकास एवं कंकरीट की सड़कें बनने के कारण भी अधिकांश नौले जलविहीन होने से सूख गए हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार नौलों के लिए प्रसिद्ध कुमाऊ के द्वाराहाट स्थित अधिकांश नौले इसी प्राकृतिक प्रकोप के कारण सूख गए। वराहमिहिर के जल विज्ञान से प्रेरणा लेकर उत्तराखण्ड में नौले के चारों ओर विभिन्न प्रकार के वृक्षों को लगाया जाता था जिनमें आंवला, बड़, खड़िक, शिलिंग, पीपल, बरगद, तिमिल, दुधिला, पदम, आमला, शहतूत आदि के वृक्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन वृक्षों की सहायता से नौलों में भूमिगत जल नाड़ियां सक्रिय होकर द्रुतगति से जल को रिचार्ज करती रहती हैं।

अचरज का विषय है कि उत्तराखंड में 13-14 सौ वर्ष प्राचीन नौला आज भी सुरक्षित है और वह नौला है बागेश्वर जिले के गडसर गांव में स्थित बद्रीनाथ का नौला,जो उत्तराखंड में अब तक का सबसे प्राचीन नौला माना जाता है। कत्यूरी वंश के राजाओं ने 7वीं शताब्दी ई.में इस नौले का निर्माण किया था। जल विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर बना होने के कारण यह नौला आज भी जल से भरपूर रहता है। किन्तु विडम्बना यह है कि उत्तराखंड के परंपरागत सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर स्वरूप अधिकांश ये नौले समुचित रख-रखाव न होने के कारण जलविहीन हो गए हैं और इन नौलों के माध्यम से आविर्भूत पुरातात्त्विक और सांस्कृतिक वैभव भी हमारी लापरवाही के कारण नष्ट होने के कगार पर है। पुरातत्व विभाग की उदासीनता के कारण भी नौलों की पुरातन जल संस्कृति आज बदहाली की स्थिति में है।ऐतिहासिक धरोहर स्वरूप इन नौलों की रक्षा करना और इन्हें संरक्षण देना क्षेत्रीय जनता और उत्तराखंड सरकार दोनों का साझा दायित्व है। दरअसल, नौलों और गधेरों के जलस्रोतों के साथ हमारे उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति और लोक साहित्य के गहरे सांस्कृतिक स्रोत भी जुड़े हुए हैं।

"नौला सूखता है तो केवल पानी नहीं जाता, एक परंपरा, एक विश्वास और एक इतिहास भी खो जाता है।"— *डॉ. रेखा पंत, जल संस्कृति शोधकर्ता*

वर्तमान हालात में नौलों और जलधारों के सूखने का मतलब है एक जीवंत पर्वतीय जल संस्कृति का लुप्त हो जाना। इसलिए जल की समस्या महज एक उपभोक्तावादी समस्या नहीं बल्कि जल, जमीन और जंगलों के संरक्षण से जुड़ी एक पर्यावरणवादी समस्या भी है। उत्तराखंड के तराई क्षेत्र में पानी की उपलब्धता अधिक है तो साल भर में 3 से 4 फ़सल उगाई जा रही है। धान की फ़सल का साल में दो बार उत्पादन का मतलब हैं लाखों लीटर पानी की बर्बादी, भूजल स्तर लगातार कम होता जा रहा है और उस पर भी जल संचय के लिए बने तालाबों को लगभग हर गॉव, शहर, क़स्बे में पाट दिया गया है। अब गाँवों में तालाब बहुत कम देखने को मिलते हैं जिनकी वजह से भूजल का स्तर कभी ऊँचा रहता था। हम यदि अपनी देवभूमि को हरित क्रांति से जोड़ना चाहते हैं तो हमें अपने पुराने नौलों, धारों, खालों, तालों आदि जलसंचयन के संसाधनों को पुनर्जीवित करना होगा। पारंपरिक जल-स्रोत यथा नोले, धारे, चाल, खाल बचाने की मुहिम जल संचेतना की दिशा में अच्छी पहल है।आज आवश्यकता है, चीड़ के स्थान पर चौड़ी पत्तियों वाले बाँज, बुरांश,उतीस, आदि वृक्षों को लगाए जाने की ताकि भूमिगत जल रिचार्ज हो सके।

जल संकट की वर्त्तमान परिस्थितियों में आज भूमिगत जलविज्ञान की इस महत्त्वपूर्ण धरोहर को न केवल सुरक्षित रखा जाना चाहिए , बल्कि इनके निर्माण तकनीक के संरक्षण व पुनरुद्धार की भी महती आवश्यकता है। दरअसल, नौले उत्तराखंड की ग्राम संस्कृति तथा लोकसंस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। लेकिन हममें से बहुत से लोग ऐसे हैं जो नौलों के बारे में ज्यादा कुछ नहीं जानते खासकर नई पीढ़ी के युवावर्ग को इनके बारे में कम ही जानकारी है। जल वितरण की नई व्यवस्था के कारण इन नौलों का प्रचलन अब भले ही बंद हो गया है किन्तु जल संकट के समाधान की दृष्टि से इन पुराने नौलों की उपादेयता आज भी बनी हुई है। समय आ गया है कि हम जल संचय को लेकर गंभीर हो जाए, पानी के दुरुपयोग से बचें और कम से कम पानी में अधिक से अधिक काम चलाएं। दुनिया में पीने योग्य मीठा पानी सिर्फ 3% है और इसी पानी पर दुनिया की पूरी आबादी निर्भर है। मंगल पर पानी की खोज जारी है किन्तु ऐसा न हो कि मंगल के पानी की आस में पृथ्वी का पानी भी समाप्त हो जाए।

मोहित जोशी

इंजीनियर - ई
आर्यभट्ट प्रेक्षण विज्ञान शोध संस्थान (एरीज),
मनोरा पीक,
नैनीताल, उत्तराखंड-263001

अच्छे स्वास्थ्य से अच्छे वाइब्स तक: स्वस्थ जीवनशैली के माध्यम से सकारात्मकता का विकास

आप कितनी बार उत्साहित, ऊर्जा से भरपूर और मुस्कुराते हुए महसूस करते हैं? मानो या न मानो, जीवन के प्रति इस उत्साह को बनाए रखने का रहस्य अक्सर एक स्वस्थ जीवन शैली जीने में निहित है। यह केवल बीमारी से बचने के बारे में नहीं है; यह एक ऐसी ख़ुशहाली की स्थिति को पोषित करने के बारे में है जो सकारात्मकता बिखेरती है। इस लेख में, हम यह पता लगाएंगे कि कैसे सरल, स्वास्थ्यप्रद आदतों को अपनी दिनचर्या में शामिल करने से आपका मूड अच्छा हो सकता है और आपकी मानसिक तन्यकता मजबूत हो सकती है। न केवल अपने स्वास्थ्य, बल्कि अपनी मानसिकता को भी बदलने के लिए तैयार हो जाइए, जिससे अधिक आनंदमय, जीवंत जीवन का मार्ग प्रशस्त होगा।

मानसिकता पर स्वस्थ जीवनशैली के लाभ

- स्वास्थ्य के प्रति जागरूक जीवनशैली अपनाने से शारीरिक स्वास्थ्य से परे बहुत से लाभ मिलते हैं, जो आपकी मानसिक और भावनात्मक स्थिति को गहराई से प्रभावित करते हैं। यहाँ कुछ उल्लेखनीय प्रभाव दिए गए हैं:
- तनाव में कमी: तनाव के स्तर को कम करने में नियमित शारीरिक गतिविधि महत्वपूर्ण है। तैराकी, नृत्य या यहाँ तक कि तेज चलना जैसी गतिविधियाँ तनाव को दूर करने में प्रभावी हो सकती हैं।
- नींद की गुणवत्ता में सुधार: नियमित व्यायाम करने से आपकी नींद के पैटर्न को नियंत्रित करने में मदद मिल सकती है, जिससे गहरी और अधिक आरामदायक नींद आती है।
- मानसिक स्पष्टता में वृद्धि: विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर आहार मानसिक कोहरे को दूर कर सकता है, जिससे एकाग्रता और उत्पादकता बढ़ती है।
- भावनात्मक संतुलन: नियमित व्यायाम और संतुलित आहार हार्मोन को नियंत्रित करने में मदद कर सकता है, जो भावनात्मक स्थिरता का समर्थन करता है और चिड़चिड़ापन और चिंता की भावनाओं को कम करता है।

आपके स्वास्थ्य और मानसिकता में यह समग्र सुधार आपके जीवन में निरंतर सकारात्मकता के लिए स्प्रिंगबोर्ड हो सकता है।

सकारात्मकता को बढ़ावा देने में आत्म-देखभाल का महत्व

स्व-देखभाल सिर्फ़ एक प्रचलित शब्द नहीं है; यह जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने और बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। जब हम खुद की देखभाल करने के लिए समय निकालते हैं, तो हम अपने मस्तिष्क को एक शक्तिशाली संदेश भेजते हैं, जो हमारे कार्यों के माध्यम से हमारी योग्यता की पुष्टि करता है और हमारे मूल्य को मजबूत करता है। आत्म-सम्मान का यह अनुष्ठान हमारे आत्म-सम्मान को बढ़ाने में मदद करता है और तनाव और बर्नआउट के नकारात्मक प्रभावों से बचाता है।

इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि स्व-देखभाल आपको वर्तमान, केंद्रित और अपनी ज़रूरतों के प्रति सजग रहने के लिए प्रोत्साहित करती है, जिससे आप अपनी भावनात्मक स्थितियों को बेहतर ढंग से प्रबंधित कर पाते हैं। चाहे वह लंबे समय तक नहाना हो, किताब पढ़ना हो या बस हर दिन कुछ मिनटों के लिए चुपचाप बैठना हो, ये अभ्यास आपके दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण रूप से बदल सकते हैं, नकारात्मक मानसिकता को अधिक सकारात्मक बना सकते हैं।

अच्छे वाइब्स को पोषित करने के लिए स्व-देखभाल अभ्यास

अपनी दिनचर्या में स्व-देखभाल को शामिल करना विस्तृत या महंगा नहीं है। स्व-देखभाल के माध्यम से सकारात्मकता को बढ़ावा देने के कुछ सरल लेकिन प्रभावी तरीके यहां दिए गए हैं:

- नियमित व्यायाम दिनचर्या बनाए रखें: ऐसी गतिविधियाँ चुनें जो आपको पसंद हों, जैसे कि चलना, साइकिल चलाना या योग, और उन्हें अपनी दिनचर्या का हिस्सा बनाएँ।
- अच्छा खाएं: अपने शरीर को ऐसे खाद्य पदार्थों से पोषण दें जो आपकी ऊर्जा और मनोदशा को बढ़ाते हैं। सब्ज़ियाँ, फल, साबुत अनाज और लीन प्रोटीन को प्राथमिकता दें।
- हाइड्रेटेड रहें: पर्याप्त पानी पीना आपके शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्पष्टता के लिए महत्वपूर्ण है।
- पर्याप्त नींद लें: सुनिश्चित करें कि आपको हर रात कम से कम 7-8 घंटे की आरामदायक नींद मिले।
- सामाजिक संबंध: दोस्तों और परिवार के साथ गुणवत्तापूर्ण समय बिताएँ जो आपको उत्साहित करते हैं और आपका समर्थन करते हैं।
- खुद को लाड़-प्यार दें: ऐसी गतिविधियों में शामिल होने के लिए समय निकालें जो आपको अच्छा महसूस कराए, चाहे वह घर पर स्पा डे हो या अपने पसंदीदा भोजन का आनंद लेना हो।

दैनिक दिनचर्या में माइंडफुलनेस को शामिल करना

माइंडफुलनेस - वर्तमान में रहने और वर्तमान में पूरी तरह से व्यस्त रहने का अभ्यास - तनाव को कम करके और सकारात्मक मानसिकता को बढ़ावा देकर आपके जीवन की गुणवत्ता को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा सकता है। माइंडफुलनेस को अपने दैनिक जीवन में शामिल करने के लिए, निम्नलिखित सुलभ तकनीकों पर विचार करें:

- ध्यान से शुरू करें: हर दिन कुछ मिनट ध्यान में बिताएं, अपनी सांस पर ध्यान केंद्रित करें और बिना किसी निर्णय के अपने विचारों का अवलोकन करें।
- केंद्रित श्वास: जब भी आप अभिभूत महसूस करते हैं, तो अपनी सांस पर ध्यान केंद्रित करने के लिए एक पल लें, जो आपकी भावनात्मक स्थिति के लिए एक त्वरित रीसेट के रूप में काम कर सकता है।
- माइंडफुल ईटिंग: अपने भोजन के स्वाद, बनावट और सुगंध पर ध्यान दें। यह न केवल खाने के अनुभव को बढ़ाता है बल्कि अधिक खाने को नियंत्रित करने में भी मदद कर सकता है।
- कृतज्ञता जर्नलिंग: प्रत्येक दिन तीन चीजों को लिखकर समाप्त करें जिनके लिए आप आभारी थे। यह अभ्यास आपके ध्यान को जीवन मकी कमी की बजाय उसकी उपलब्धियों और खुशियों पर केंद्रित करने में मदद करेगा।
- माइंडफुल वॉकिंग: अपनी हरकतों और अपने आस-पास के वातावरण की संवेदनाओं पर पूरा ध्यान देकर अपनी दैनिक सैर को एक ध्यानपूर्ण अभ्यास में बदल दें।

इन अभ्यासों को अपनी रोज़मर्रा की गतिविधियों में शामिल करके, आप न केवल एक स्वस्थ जीवनशैली विकसित करते हैं, बल्कि आप स्थायी सकारात्मकता के लिए भी मंच तैयार करते हैं। अच्छे स्वास्थ्य से लेकर अच्छे वाइब्स तक की यात्रा, यद्यपि निरंतरता और प्रतिबद्धता की मांग करती है, गहन पुरस्कार प्रदान करती है जो आपके जीवन के हर पहलू में व्याप्त होती है, अंदर से बाहर तक चमकबिखेरती है।

मानसिक स्वास्थ्य के लिए स्वस्थ आदतें चुनना

दैनिक आदतों और मानसिक स्वास्थ्य के बीच संबंध को कम करके नहीं आंका जा सकता। स्व-देखभाल दिनचर्या में शामिल होना और सचेत जीवनशैली विकल्प बनाना मानसिक स्थिरता और खुशी में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यहाँ बताया गया है कि आप कैसे शुरुआत कर सकते हैं:

- एक नियमित नींद का शेड्यूल सेट करें: अपने दिमाग और शरीर को ठीक होने में मदद करने के लिए प्रति रात 7-8 घंटे की अच्छी नींद लेने को प्राथमिकता दें।
- माइंडफुलनेस का अभ्यास करें: स्पष्टता और शांति बढ़ाने के लिए हर दिन कुछ मिनट ध्यान या श्वास अभ्यास का अभ्यास करें।
- जुड़े रहें: संबंध बनाना और बनाए रखना भावनात्मक समर्थन प्रदान कर सकता है और अकेलेपन और चिंता की भावनाओं को कम कर सकता है।

इनमें से प्रत्येक चरण के लिए आपकी दैनिक दिनचर्या में बड़े बदलाव की आवश्यकता नहीं है, लेकिन मानसिक स्वास्थ्य पर संचयी प्रभाव काफी बड़ा है। इन प्रथाओं को अपनी जीवनशैली में शामिल करके, आप धीरे-धीरे एक लचीली और सकारात्मक मानसिकता का निर्माण करते हैं।

सकारात्मक ऊर्जा के लिए व्यायाम की शक्ति का उपयोग

व्यायाम एक सिद्ध मूड बूस्टर है। शारीरिक गतिविधि के दौरान एंडोर्फिन का स्राव, जिसे अक्सर फील-गुड हार्मोन के रूप में जाना जाता है, तनाव और चिंता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। चाहे वह तेज चलना हो, योग सत्र हो या उच्च ऊर्जा वाला डांस क्लास हो, अपने दैनिक दिनचर्या में व्यायाम को शामिल करने से आपका मन प्रसन्न हो सकता है और आपका दिन सकारात्मक ऊर्जा से भर सकता है। यहाँ नियमित शारीरिक गतिविधि के कुछ सकारात्मक प्रभाव दिए गए हैं:

- आत्म-सम्मान बढ़ाता है: नियमित व्यायाम से शरीर में सकारात्मकता आती है और आत्म-सम्मान बढ़ता है, जिससे आप अपने बारे में अच्छा महसूस करते हैं।
- नींद में सुधार करता है: शारीरिक गतिविधि आपकी नींद के पैटर्न को विनियमित करने में मदद कर सकती है, जिससे गहरी, अधिक आरामदायक नींद आती है।
- चिंता और अवसाद को कम करता है: नियमित व्यायाम कुछ लोगों के लिए मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं को कम करने में दवा जितना ही प्रभावी हो सकता है।
- अपनी दैनिक दिनचर्या में केवल 30 मिनट का मध्यम व्यायाम जोड़ने से ये लाभकारी परिवर्तन शुरू हो सकते हैं, जिससे आप अधिक खुश और ऊर्जावान बन सकते हैं।

जीवन की यात्रा में, एक स्वस्थ जीवन शैली और एक सकारात्मक मानसिकता के बीच का संबंध खूबसूरती से सहजीवी है। अपनी शारीरिक भलाई को बढ़ाने वाली आदतों को अपनाने से स्वाभाविक रूप से मानसिक स्पष्टता और भावनात्मक लचीलापन बढ़ता है। पौष्टिक खाद्य पदार्थों का चयन करके, सक्रिय रहकर और खुद को आराम के पल देकर, हम सिर्फ़ जीते ही नहीं हैं; बल्कि फलते-फूलते भी हैं। अपने स्वास्थ्य और सकारात्मकता दोनों को बढ़ाकर, हम हर बातचीत में ज़्यादा प्रभावी ढंग से खुशी और जीवंतता फैला सकते हैं। हमेशा याद रखें, अपनी भलाई में निवेश करना एक ऐसा उपहार है जो देता रहता है, सकारात्मकता की लहरें उत्पन्न करता है जो आपके दायरे से भी आगे तक फैलती हैं। वह चिंगारी बनें जो न केवल आपके स्वास्थ्य को बल्कि आपके आस-पास के लोगों के लिए जीवन के प्रति एक उज्ज्वल दृष्टिकोण को भी प्रज्वलित करती है।

देवेश श्रीवास्तव

संस्थापक,
“लिवस्टाइलर्स”-
स्वास्थ्य और पोषण कोच,
बेंगलुरु

सामान्य व समसामयिक लेख

राष्ट्र-अभिमान और मानवीय औदात्य में लिपटी वैज्ञानिक चेतना : बीरबल साहनी

गिप्पी का आप सबको जय हिन्द! मैं आया तो हूँ आप लोगों को एक कहानी सुनाने ही.। पर, 'एक बार की बात है!', कहते हुए कहानी शुरू नहीं करूँगा। ऐसा इसलिए क्योंकि यह कोई नैतिक शिक्षा या मनोरंजन के लिए गढ़ी कपोल कल्पित गल्प नहीं है। ऐसी कहानियाँ सभ्यता के लिए बहुत ज़रूरी होती हैं, पर मैं कल्पना के पंख लगाकर उड़ने वाली कहानी कहने नहीं आया हूँ। मेरी कहानी तो सातों समन्दर, ऊँचे आकाश और उस ऊँचे आकाश के पार के आकाशों तक परिश्रम के पंख लगाकर पहुँचने वाले एक नाम की सच्ची दास्ताँ है । यह कहानी तो उतनी ही गहरी हक़ीक़त है जितने चट्टानों में दबे हुए करोड़ों-लाखों साल पुराने जानवर और पौधे—जीवाश्म। करोड़ों-लाखों साल पुराने पौधे तो इस कहानी की इबारत हैं। यह कहानी है एक अथाह जिज्ञासा की, एक सर्वस्व समर्पण की, एक नैसर्गिक अन्वेषक प्रवृत्ति की, एक अथक परिश्रम की, एक अथाह शोध-अनुसन्धान की, उदात्त मानवीय सरोकारों की।

अब जो हक़ीक़त बयाँ होती है तो वह एक पुख्ता साल और तय जगह के साथ शुरू होती है। तो साल- 1905, जगह- मुरी, अविभाजित भारत के पंजाब प्रांत के सबसे उत्तरी भाग का एक शहर। पीर पंजाल पर्वतमाला के गलियात इलाके का एक पर्वतीय आरामगाह जैसा शहर। आज यह शहर पाकिस्तान के पंजाब में है। मुरी का देश तो बदल गया पर नहीं बदली उसकी वह ख़ुशक़िस्मती जिसके चलते उसने एक पिता और पुत्र में नैसर्गिक जिज्ञासा पूरी करने का चरम देखा था। तो ख़वातीन-ओ-हज़रात दास्तान कुछ यूँ शुरू होती है कि प्रख्यात विज्ञानी, देशभक्त, प्रबल समाज-सुधारक और कटिबद्ध विज्ञान संचारक प्रो. रुचि राम साहनी का पूरा परिवार गर्मियों के लिए मुरी शहर छुट्टियों में आया था। रूचि राम साहनी जी को उनका परिवार और निकट सम्बन्धी-मित्र 'लाला जी' कहकर सम्बोधित करते थे। एक ख़ुशनुमा सुबह लाला रुचि राम साहनी के 14 साल के बेटे बीरबल ने कुछ रुमाल और एक-दो छोटे टिन के डिब्बे इकट्ठे किए। फिर अपनी 8 साल की बहन लीलावती और अपने 6 साल के भाई मुल्क राज को अपने साथ एक खोजी मिशन पर चलने को कहा। तीनों ने घर के सदस्यों को तो क्या मकान की चहारदीवारी को भी भनक नहीं लगने दी और घर से कूच कर गए। शहर की उत्तरी सीमा के बीहड़ (बहुत गहरी नालानुमा भूसंरचना जो पानी के कटाव के कारण बनती है) में पूरे जोश-ओ-ख़रोश से तीनों वीरों की सेना उतरती चली गई और नदी किनारे तक पहुँच गई।

बीहड़-नाले में नीचे को उतरते हुए बच्चों को यात्रा कठिन नहीं लगी। भूख की धमक जब सहनशीलता से परे हो गई तो घर वापसी की शुरुआत की गई। समय भी फिसलता जा रहा था और अंधेरा होने लगा था। चढ़ाई बहुत मुश्किल लगने लगी। बीरबल को बड़े-बड़े गोल पत्थरों को बारी-बारी से लीला और मुल्क को भी चढ़ाकर पार करवाना पड़ता था। रात घिर आई थी और पूरे घर में कोहराम मच गया था। घर के कामदारों को बच्चों को ढूँढने के लिए कबका भेज जा चुका था। बच्चों के पिता रुचि राम साहनी और माँ ईश्वरी देवी कोई अनहोनी न घट गयी हो इस डर से काँप उठे थे । थके, भूखे और चोटिल हाथ-पैरों के साथ तीनों खोजकर्ता देर रात घर पहुँचे। बीरबल काफी संतुलित खड़े थे पर बहन-भाई आँसू बहाते हुए रो रहे थे। जब पिता रुचि राम साहनी ने डाँटते हुए पूछा, "बिना इजाज़त और वह भी छोटों को साथ लेकर जाने का क्या मतलब है ?" बीरबल ने जवाब में केवल कहा, "मैं केकड़े इकट्ठा करना चाहता था।" "केकड़े??!! सच में ??!" लाला जी ने आश्चर्य से गरजते हुए कहा।

बच्चों की पीठ बेंत की मार के डर से सिहर उठी। पर रुचि राम साहनी का, नई चीजों को जानने के लिए ज़रूरी होने वाले साहसिक अभियानों और खोज के लिए, जो प्रगाढ़ नैसर्गिक लगाव था, उसको अपने बच्चों में देखकर वह रुक गए। सजा देना तो दूर वो आगे कुछ नहीं बोले। अंदर ही अंदर आत्मसुख में डूब गए।

रुचि राम साहनी और उनकी पत्नी ईश्वरी (आनंद) के पाँच बेटे और चार बेटियाँ थीं। सबसे बड़ा बेटा बिक्रमजित, जो प्रतिष्ठित भौतिकविद हुए; इनके पीछे रामरुखी, तीसरी संतान बीरबल, इस कहानी का नायक; बेटी लाजवंती; इनसे छोटे बोध राज, जो बाद में लंदन के ख्याति प्राप्त अधिवक्ता

बने; इनके बाद लीलावती, जो अविभाजित भारत में पंजाब विश्वविद्यालय से पहली महिला स्नातक रहीं; मुल्क राज, जो आगे चलकर विश्व प्रसि द्ध भूविज्ञानी बने; बेटियों में कनिष्ठतम लखवंती और परिवार के अनुज मनोहर लाल, जो प्रसिद्ध रबड़ तकनीकीविद् बने।

रुचि राम साहनी खुद शिक्षा और शोध को समर्पित व्यक्ति थे। विषम परिस्थितियों के बावजूद गुणन सारणी यानी पहाड़ा सीखने के लिए एक आना देते थे, जबकि एक आना उस वक्त 6 पैसे के बराबर होता था। सब कठिनाइयों का सामना करते हुए उन्होंने सन् 1884 ई० में पंजाब विश्वविद्यालय से बी.ए. की परीक्षा मेरिट सूची में सबसे अव्वल दर्जे के साथ उत्तीर्ण की। बाद में, कलकत्ता विश्वविद्यालय से रसायन विज्ञान में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की। शिमला में मौसम विज्ञानी के तौर पर शुरुआत करके बाद में उन्होंने लाहौर के सरकारी कॉलेज में रसायन विज्ञान के प्रोफ़ेसर का पदभार ग्रहण किया था। इसके अलावा रसायन निर्माण फ़ैक्ट्री और वैज्ञानिक-उपकरण वर्कशॉप भी उन्होंने एक भरे-पूरे परिवार को आरामदायक जीवन देने के लिए चलाए। उन्होंने उस वक्त भारतीय समाज में चल रहे कई समाज सुधारों को अपने निजी और सार्वजनिक जीवन के भीतर विचारों और कार्यों में पूरा स्थान दिया। रुचि राम साहनी समाज सुधारक थे। विशेषकर, वे महिला सशक्तिकरण के पक्षधर रहे। अथक मेहनत और कई कारोबार का प्रचण्ड ताप भी उनके अन्दर के अनुसन्धान-शोध के लगाव की पयस्विनी को सुखा नहीं सका। अपनी उम्र के पचासवें पड़ाव में वो शोधवृत्ति लेकर हाइडेलबर्ग, जर्मनी गए और वहाँ से इंग्लैंड पहुँचे। लॉर्ड रदरफोर्ड के साथ रेडियोएक्टिविटी में कार्य करके दो शोध-पत्र भी प्रकाशित किए।

ये सब बताना समीचीन है क्योंकि ये गुण विरासत में बीरबल जी को भरपूर मिले थे। पिता रुचि राम साहनी के इसी आत्मबल, प्रेरणा, प्रोत्साहन, दृढ़ता, मेहनत तथा सत्यनिष्ठा ने ही बीरबल साहब के अंदर वैज्ञानिक चेतना को जगाया एवं शिक्षा और शोध के प्रति समर्पण और उनके चरित्र को बनाया।

बीरबल जी का जन्म 14 नवम्बर, 1891 में भेड़ा/भेरा, शाहपुर जिला, पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान) में हुआ था। बचपन में परिवार छुट्टियों के दौरान अक्सर भेरा जाता था। यहाँ अपने पिता और भाइयों के साथ कई पदयात्रों (ट्रेक) में बीरबल जाते रहते थे, जिनमें प्रसिद्ध 'साल्ट रेंज' की पदयात्राएं भी शामिल हैं। ख़ासकर की ख़्वेड़ा के इलाके, जिसे भूविज्ञान का प्राकृतिक संग्रहालय माना जाता है, में उन्होंने खूब ट्रैक किए। यहीं से बीरबल जी के अंदर भूविज्ञान-पुरावनस्पति विज्ञान अध्ययन के बीज आए होंगे। उनकी जीवन भर 'अथातो घुमक्कड़' प्रवृत्ति बनी रही। वे कला में गहरी रुचि रखते थे। सितार और वायलिन बजा सकते थे। शतरंज, हॉकी और टेनिस खेला करते थे। कैंब्रिज में तक उन्होंने टेनिस टीम में स्थान प्राप्त किया था।

युवा बीरबल के वैचारिक जगत का निर्माण बहुत ही उथल-पुथल और परिवर्तनों से भरे युग के बीच हुआ। स्वाधीनता आंदोलन का दौर, ब्रह्म समाज और आर्य समाज द्वारा चलाए गए समाज सुधार की प्रबल लहर के बीच उन्होंने राष्ट्रप्रेम, वैज्ञानिक चेतना और मानवीय संस्कारों का पाठ सीखा। एक ऐसे घर में उनका व्यक्तित्व निर्माण हुआ जहाँ कड़ा अनुशासन, बड़ों की आज्ञा-पालन और साथ ही साथ अपनी सोच तथा निर्णयों में चलने का पूरा अधिकार हर सदस्य को था। परदेशी सत्ता के लिए लगातार विद्रोह घर की नींव में था।

प्रसिद्ध ब्रायोलॉजिस्ट शिवराम कश्यप ने गवर्नमेंट कॉलेज, लाहौर में बीरबल जी की वनस्पति विज्ञान की पहली कक्षा ली थी। पंजाब विश्वविद्यालय से वर्ष 1911 में विज्ञान से स्नातक उत्तीर्ण किया। पिता की इच्छा थी कि बीरबल विदेश जाकर प्रशासनिक सेवा के लिए पढ़ाई करें पर बेटे ने कैम्ब्रिज जाकर वनस्पति विज्ञान में अध्ययन-शोध करने का अपना निर्णय बताया। जोजिला दर्रे के मकोई हिमनद में किए अपने बहुत ही रोमांचक अभियान के दौरान इकठ्ठा किए हुए रेड स्नो कहलाने वाले एक बहुत दुर्लभ हिम शैवाल के नमूने को अपने साथ लेकर बीरबल साल 1911 में कैम्ब्रिज पहुँचे थे। इस समय जो महान यात्रा वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में बीरबल जी ने शुरू की वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हुई।

इसी दौरान, वह वर्ष 1913 के ग्रीष्मकालीन सत्र में प्रो. गोअब्ल के वनस्पति विज्ञान के व्याख्यान में शामिल होने म्यूनिख, जर्मनी गए थे। यहीं एक पेशेवर कठपुतली वाले के तमाशे में बन्दर की आकृति वाला दस्ताना पहनकर उससे बुलवाने का तमाशा देखा। इससे बीरबल जी के दिमाग में किसी बात को रोचक ढंग से कहने के नए तरीके का विचार आया। सभी खिलौने की दुकानों को ढूँढते हुए आख़िरकार उनको एक फुटपाथ विक्रेता के वहाँ मिल पाया था, बन्दर की आकृति वाला दस्ताना यानी—मैं। उन्होंने मुझे प्यार से गिप्पी नाम दिया। इस महान वैज्ञानिक चेतना के हाथ में आते ही मानिए मुझमें भी चेतना आ गयी थी। जैसे उनकी प्रबल संचार शक्ति मुझमें प्राण बनकर बस गयी हो। मैं बोलने लगा था (बीरबल साहनी जी हाथ में यह दस्ताना पहनते और अपना बोलते हुए इसका मुँह चलाते थे, मानो यह बोल रहा हो), मैं विज्ञान बाचने लगा था। वह मुझे हाथ में पहने पार्क में बच्चों से बात करते थे और बाद में भारत आकर तो कई जगह मेरे मुँह से ही उनकी बात श्रोताओं तक पहुँचती। मैं विज्ञान के लोकप्रिय व्याख्यान देने लगा था। मेरा सौभाग्य रहा कि उनकी गोद में आने के बाद मेरा उनसे बिछोह नहीं हुआ। वो हर विदेश यात्रा, सुदूर जल-थल-नभ यात्रा या सर्वेक्षण अभियान में मुझे अपने साथ लेकर जाने लगे थे। बच्चों के बीच बीरबल साहनी 'तमाशे वाले अंकल' के नाम से जाने जाते थे।

वर्ष 1914 में कैम्ब्रिज से ग्रेजुएट होकर तुरन्त बीरबल जी प्रो. ए० सी० सीवार्ड के पर्यवेक्षण में गम्भीर शोध में संलग्न हो गए। साल 1918 में लंदन विश्वविद्यालय से जीवाश्म पादपों के शोध पर डॉक्टर ऑफ साइंस की डिग्री अर्जित की। उनके वनस्पति विज्ञान के प्रति लगाव और भारतीय वनस्पतियों की अथाह जानकारी देखकर उनसे 'लॉसनस टेक्स्ट बुक ऑफ़ बॉटनी' किताब का परिशोधन करने को कहा गया। यह किताब अभी तक भारत के कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में व्यापक तौर पर पढ़ी जाती है। इस वृहत काम के लिए बीरबल को मात्र 20 पाउंड की तुच्छ धनराशि दी गई और रॉयल्टी में भी उनके लिए कोई हिस्सेदारी नहीं रखी गई। इससे भी गलत बात यह हुई कि एक करारनामा हस्ताक्षरित करवा दिया गया कि वह आजीवन वनस्पति विज्ञान की कोई पाठ्य पुस्तक नहीं लिखेंगे ताकि इससे इस किताब की बिक्री में असर नहीं पड़े।

साल 1915 में डॉ. बीरबल साहनी जी ने 'न्यू फाइटोलॉजिस्ट' जर्नल में "ऑन द प्रजेंस ऑफ़ फ़ॉरेन पॉलेन इन दि ओव्यूल्स ऑफ़ जिन्कोगो बाइलोबा" शीर्षक से महत्वपूर्ण शोध-पत्र प्रकाशित किया।

वर्ष 1918 में विदेश से पढ़ाई करके लौटते ही बीरबल साहनी जी ने हाथ के काते कपड़े पहनना शुरू कर दिया था। हमेशा चूड़ीदार पैजामा पर अचकन पहना करते थे, जो उनके राष्ट्राभिमान का द्योतक था। साथ ही वह यह संदेश भी देना चाहते थे कि हमें अपनी राष्ट्रीयता के तत्वों को साथ लेकर आगे बढ़ना चाहिए। बीरबल जी को देशप्रेम पिता से विरासत में मिला था, जिन्होंने 1922 में असहयोग आंदोलन के दौरान ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई पदवी को जलियांवाला बाग के नरसंहार के विरोध में लौटा दिया था। सरकार द्वारा पेंशन खत्म कर दिए जाने की धमकी देने के बावजूद भी लाला जी ने अपना निर्णय वापस नहीं लिया था।

बीरबल साहनी जी उदारमना रहे। वो बच्चों को ऐतिहासिक घटनाओं की कहानियाँ सुनाते थे। शिवाजी का अपने बेटे सांभा जी के साथ आगरा के किले से मिठाई के टोकरी में छिपकर औरंगजेब की कैद से निकल भागने का किस्सा, उनका बड़ा पसंदीदा था। अपने बगीचे के पेड़ों के फल खिलाते-खिलाते ही वो उनकी उत्पत्ति, विकास और दूसरी खासियतों के बारे में खाने वाले को विस्तार से बता देते थे। उनकी विनोदधर्मिता भी जानकारी से भरपूर रहती थी। वो मेहमानों को इलायची पेश करते जब मेहमान हाथ में लेते तो उनको एहसास होता कि इलायची तो पत्थर की हैं। फिर बीरबल जी उनको बताते कि ये जीवाश्म बन चुकी इलायची हैं और ये आज पाए जाने वाली इलायची से कितनी फर्क हैं।

वर्ष 1919 में बीरबल जी ने लंदन विश्वविद्यालय से डी. एस-सी. करके परिणामों को 'फिलॉसोफिकल ट्रान्सजेक्शन्स ऑफ़ द रॉयल सोसाइटी' में प्रकाशित करवाया। इसके लिए उन्होंने प्रोफ़ेसर आर. एच. कम्पटन द्वारा इकट्ठा किए हुए एक दुर्लभ और अल्प ज्ञात शंकुधर वृक्ष के नमूने की शारीरिकी और आकारिकी पर गहरा शोध किया था। एक खंडित और अल्प संरक्षित नमूना होने के बावजूद भी उन्होंने इस पर अप्रतिम शोध करके सुस्पष्ट निष्कर्ष दिए।

इसी साल बीरबल साहनी जी को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर नियुक्त किया गया। महामना की इस "सर्व विद्या की राजधानी" में उन्होंने वनस्पति विज्ञान विभाग के कमल का बीज रोपा । एक साल के बाद पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर के वनस्पति विज्ञान विभाग में वर्ष 1920 से 1921 तक उन्होंने अध्यापन कार्य किया।

सर ए. सी. सीवर्ड से प्रेरित होकर उन्होंने पादप जीवाश्मों का अध्ययन शुरू किया था। उन्होंने पेलियोजोइक फ़र्न की शारीरिकी और आकारिकी पर समृद्ध कार्य किया। गोंडवाना लैंड के जीवाश्म पादपों में विशेष अनुरक्ति के साथ उन्होंने भारतीय जीवाश्म पादपों पर वृहद और मानक काम किए। प्रो. सीवर्ड के साथ वर्ष 1920 में उनका आकारिकी, शारीरिकी और क्यूटिक्यूलर संरचना पर आधारित सर्वमान्य शोध पत्र "इंडियन गोंडवाना प्लांट्स: ए रिव्यू" प्रकाशित हुआ।

बीरबल जी का विवाह उनके पिता के दोस्त की सुपुत्री सावित्री सूरी से वर्ष 1922 में हुआ था। विवाह के बाद अपने बीच की चुप्पी तोड़ने के लिए भी बीरबल सर ने मुझे असली का बन्दर बताते हुए सावित्री जी को दिया। थोड़ा डरते हुए सावित्री जी ने मुझ पर हाथ लगाया तो अपने को ठगा जानकर वो खिलखिला कर हँस पड़ी और बीरबल जी भी। इसके बाद दोनों के बीच बातचीत चल पड़ी। बीरबल जी हर दिन बिना किसी भूल के सावित्री जी को दो फूल भेंट करते थे। इस निर्मल प्रेम का साक्षी बनने का सौभाग्य भी मुझे मिला। सुरुचिपूर्ण, सुशील और सुन्दर सावित्री जी ने बीरबल साहनी जी की हर विशिष्टता को दोगुना कर दिया। दम्पति के बीच एक अनकही पारस्परिक समझदारी थी।

साहनी जी को लखनऊ विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान के प्रोफ़ेसर पद के लिए आमन्त्रण मिला जहाँ, उन्होंने वर्ष 1921 के जुलाई माह में वनस्पति विज्ञान विभाग की स्थापना की। फिर विभागाध्यक्ष के तौर पर यहाँ उन्होंने कई महान काम किए। प्रोफेसर साहनी ने भारतीय वनस्पति विज्ञान सोसायटी का अपना अध्यक्षीय भाषण "दि ऑन्टोजेनी ऑफ़ वैस्कुलर प्लांट्स एंड द थ्योरी ऑफ़ रिकैपिट्युलेशन" शीर्षक से दिया था। इसमें उन्होंने हैकले के इस सिद्धांत को अपुष्पी पादपों, अनावृतबीजी बीजों और आवृत्तबीजी पुष्पों के कई उदाहरण देकर वनस्पति विज्ञान के दृष्टिकोण से सिद्ध किया।

साल 1929 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने बीरबल साहनी जी के शोध को मान्यता देते हुए उन्हें एस-सी. डी. की उपाधि से अलंकृत किया था। शायद, वह पहले भारतीय थे जिन्हें, यह उपाधि मिली थी। इस काम में उन्होंने जीवित और जीवाश्म पादपों के तुलनात्मक अध्ययन करते हुए आकारिकी निर्वचन में पौधों के जातीय इतिहास का इस्तेमाल किया था । इसको बाद में द न्यू मॉर्फ़ोलॉजी (एच हम्शाव थॉमस, 1931) का नाम दिया गया। इस शोध-पत्र से गोंडवाना समय के उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध के वनस्पति में सम्बन्ध स्थापित हो पाया। साथ ही, शंकुबीजी वनस्पतियाँ जुरासिक समय में गोण्डवाना लैंड में विस्तार ले चुका था, यह बात भी उभरकर सामने आई।

इसी क्रम में उनका दूसरा महत्वपूर्ण शोध पत्र "रिविज़न ऑफ़ इंडियन फ़ॉसिल प्लांट्स" दो भाग में साल 1928 और 1931 में प्रकाशित हुआ। इस शोध ने यूरोप तथा भारत के शंकुबीजी पादपों एवं दक्षिण और उत्तर भारत के जीवाश्म पादपों के अंतर सामने रखे। गोंडवाना लैंड के घटक रहे हुए सभी भूभागों के जीवाश्म पादपों के तुलनात्मक अध्ययन और खोजे गए विभिन्न जीवाश्म पादपों के माध्यम से महाद्वीपीय विस्थापन (continental drift) के सिद्धांत के लिए पुरावनस्पति विज्ञान के प्रमाण भी इस शोध पत्र में दिए गए।

वर्ष 1932 में, बीरबल जी ने एक और खोज की जो मील का पत्थर साबित हुई—*विलियमसोनिया सीवार्डियाना।* इस जीवाश्म पादप की पूरी कायिक प्रणाली के पुनर्निर्माण से उनको अपार प्रसिद्धि मिली। इस जीवाश्म पादप का नाम उन्होंने अपने शोध पर्यवेक्षक प्रो. ए० सी० सीवर्ड के सम्मान में

रखा था। इसी तरह उनका अगला वरेण्य काम जुरासिक काल (आज से लगभग 20 से 14 करोड़ साल पहले) की राजमहल की पहाड़ियों से एक नए प्रकार के जीवाश्म अनावृतबीजी की खोज था।

पुरावनस्पति विज्ञान में उनके दिए गए अमूल्य अवदानों में ग्लोसोप्टेरिस का वर्णन भी सम्मिलित है। परमो-ट्राइऐसिक समय यानि आज से लगभग 25 करोड़ साल पहले के समय के दौरान टेथिस के आर-पार भारत और सुदूर पूर्व के बीच कुछ वानस्पतिक विनिमय हुआ। ऐसा ही महत्वपूर्ण पुरावानस्पतिक अवदान दक्कन अंतर्वेशीय ट्रेप्स (दक्कन इंटरट्रेप्पेएन) के सिलिसीफाइड पादपों की खोज रही।

सर्वसम्मति के साथ साहनी वर्ष 1933 में विज्ञान संकाय के संकायाध्यक्ष चुने गए। वर्ष 1933 तक बीरबल साहनी जी का कोई निजी कमरा विभाग में नहीं था। विभाग के म्यूजियम में एक तरफ़ मेज-कुर्सी लगाकर बैठते थे। सर फ़िलिप हारटाग ने विभागीय दौरे के दौरान जब यह देखा तो हतप्रभ होकर कहा था कि "हाँ, महान विज्ञानियों ने केवल अटरियों (छत पर बने कमरों) में ही काम किया है।"

प्रो. बीरबल पढ़ाते वक्त लगातार बोलते हुए दोनों हाथों से चित्र बना लेते थे। साहनी जी अपने विद्यार्थियों को प्रेरित करते हुए कहते थे, "हार्ड वर्क किल्ड् नोबॉडी"। वह विद्यार्थियों के अकादमिक ही नहीं नैतिक उत्थान पर भी पूरा बल देते थे। साल 1932 तक साहनी जी ने, "शोध के लिए शोध होना चाहिए डिग्री पाने के लिए नहीं", इस सोच में चलते हुए औपचारिक तौर पर कोई शोधार्थी अपने पर्यवेक्षण में नहीं लिए। पर बार-बार आने वाले निवेदनों के चलते उन्होंने अपने मार्ग निर्देशन में डॉक्ट्रेट उपाधि के लिए शोधार्थी लेने शुरू किए। 16 विद्यार्थियों ने वर्ष 1935 से 1949 के बीच उनके निर्देशन में काम किया, पाँच डी-एस. सी.और आठ पी-एच. डी.। इनमें से दो ने जीवित पादपों और शेष सभी ने पुरावनस्पति विज्ञान में शोध किया।

वर्ष 1936-1939 में, लुधियाना के पास सुनेहत और रोहतक के पास खोखरा कोट के पार बीहड़ों में कुछ टीलों पर कई प्राचीन वस्तुएँ भी बीरबल जी ने खोजी थीं। यहाँ से हुई सबसे महत्वपूर्ण और मानक खोज—यौधेय गणराज्य से जुड़े टकसाल और उस काल के सिक्कों के ढलाई में प्रयुक्त हुए साँचों— ने भारतीय इतिहास को समृद्धतर किया है। चीन, रोमन साम्राज्य कालीन यूरोप और उत्तरी अमेरिका में सिक्के ढालने की तकनीकों के तुलनात्मक अध्ययन से प्रो. बीरबल ने यह बताया कि रोमन काल से 100 वर्ष पूर्व भारत में सिक्के ढालने के बहुत विशिष्ट और विभिन्न प्रकार के जटिलता लिए हुए साँचे विकसित हो चुके थे।

कश्मीर की क्षेत्रीय भाषा में करेवा कहे जाने वाले विशाल पुरासरोवरी जमावों में हिमालय के उत्थान की कहानी को जीवाश्म पादपों की पारिस्थितिकी के आधार पर साहनी जी ने वर्ष 1936 में स्पष्ट किया। यह बहुत ही नव्य और नवोन्मेषी प्रयास था। उन्होंने पंजाब साल्ट रेंज की सलाइन सीरीज और ढक्कन ट्रैप की आयु-निर्धारण समस्या को सुलझाने के लिए कई महत्वपूर्ण योगदान दिए, जो आगे चलकर हुए शोधों के लिए महत्वपूर्ण नींव का काम किए।

पुरावनस्पति विज्ञान में कार्य करते हुए उनको यह पूरी तरह साफ़ हो गया था कि इस विषय में विद्यार्थियों में दक्षता और दूरगामी समझ लाने के लिए भूविज्ञान की जानकारी होना परम आवश्यक है। अपने प्रयासों से साल 1943 में लखनऊ विश्वविद्यालय में बीरबल जी ने भूविज्ञान विभाग की भी स्थापना करवाई और इसके विभागाध्यक्ष बनकर विभाग को उन्नति के पथ पर अग्रसर करते रहे।

वर्ष 1936 में आप रॉयल सोसाइटी ऑफ़ लंदन के फ़ैलो बनाए गए। वर्ष 1930 और 1935 में पाँचवीं और छठी इंटरनेशनल बॉटैनिकल कांग्रेस में पेलियोबॉटनी सेक्शन के वाइस प्रेसिडेंट नियुक्त हुए। प्रो. बीरबल साल 1940 में इंडियन साइंस कांग्रेस के जनरल प्रेसिडेंट बने। वर्ष 1937 से 1939 और वर्ष 1943 से 1944 में राष्ट्रीय विज्ञान एकेडमी, भारत के अध्यक्ष बनाए गए। साल 1948 में उनको फ़ॉरेन ऑनरी मेंबर ऑफ़ द अमेरिकन एकेडमी ऑफ़ आर्ट्स एंड साइन्स नियुक्त किया गया था।

भारत की स्वतंत्रता के बाद मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, तत्कालीन शिक्षा मंत्री, भारत सरकार ने प्रो. साहनी को सचिव, शिक्षा मंत्रालय के पद ग्रहण करने का निमन्त्रण दिया। सम्पूर्ण शिक्षा नीति को सुधारने और विकसित करने का मौका रहेगा, ऐसा सोचकर उन्होंने अपनी सहर्ष हामी दे दी थी। पुनर्विचार करने पर उनको लगा कि मैं शोध एवं विद्यार्थियों को पढ़ाने से वंचित हो जाऊँगा। इस प्रबल लगाव के चलते उन्होंने इस पद को विनम्रतापूर्वक अस्वीकृत कर दिया।

अब, प्रो. बीरबल साहनी अपने सबसे बड़े सपने—पुरावानस्पतिक अध्ययनों को समर्पित एक शोध संस्थान की स्थापना—को हकीक़त बनाने में लग गए। इस दिशा में उन्होंने 19 मई, 1946 को भारतीय पुरावनस्पति विज्ञानियों की "द पेलियोबॉटैनिकल सोसाइटी" नाम से सभा बनाई। सभा के शासी मण्डल ने 10 सितम्बर, 1946 को पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान के निर्माण का प्रस्ताव पारित किया, जो लखनऊ विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग से संचालित होने लगा। इसके अवैतनिक निदेशक प्रो. बीरबल साहनी बनाए गए। सितम्बर, 1948 को संयुक्त प्रांत की सरकार ने अपनी तरफ से संस्थान के लिए भूमि प्रदान की। बीरबल जी के सपने को हकीक़त की ज़मीन मिल गयी। 3 अप्रैल, 1949 को भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पं. जवाहर लाल नेहरु ने कई गणमान्य व्यक्तियों, विज्ञानियों की उपस्थिति में संस्थान की आधारशिला रखी। इस तरह बीरबल जी के स्वप्न की संस्थापना हो गई।

इस विज्ञानरथी के रथ को निगलने के लिए आते हुए काल को कोई नहीं देख सका। केवल एक हफ्ते के बाद 10 अप्रैल, 1949 की मध्य रात्रि को कोरोनरी थ्राम्बोसिस (हृदय धमनी में खून का थक्का बन जाना) के आघात के कारण यह अद्वितीय विज्ञानी और उदार मानव इस संसार से अनन्त की यात्रा में निकल गया।

मृत्यु शैय्या में अपने पास बैठी अपनी सावित्री को बीरबल ने आखिरी शब्द कहे "संस्थान को पालना"! पौराणिक सावित्री यमराज के पीछे जाकर अपने शील, संयम, पतिव्रत्य और विचारशीलता से उनको प्रसन्न करके अपने पति का जीवन वापस ले आई थी। यह आधुनिक सावित्री भी अपने पति की ज़िन्दगी—नव स्थापित पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान—को जीवंत कर गई। बीरबल जी की अकाल मृत्यु के कारण अधर में लटक जाने से निष्प्राण हो गए इस संस्थान को सावित्री जी अपने शील-स्वभाव, समर्पण, नेतृत्व-कुशलता और विचारशीलता से प्राणवान करके इसको विश्व पटल में एक अनूठे और अंतर्राष्ट्रीय स्तर में ख्यातिलब्ध, बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान के नाम से (वर्तमान नाम बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ) सुप्रतिष्ठित कर गयीं।

बीरबल साहनी जी का जीवन अथाह परिश्रम, समर्पण, वैज्ञानिक चेतना और मानवीय सरोकारों की प्रेरणा का एक अजस्र स्रोत है। शोध-अनुसन्धान एक सेवा है, स्वयं की अनुभूति की यात्रा है, एक निष्ठा और समपर्ण से जीवन जीना है। यही अमर राग बीरबल साहनी जी का जीवन गायन बना रहा। आज के लिए मैं गिप्पी आप लोगों से विदा लेता हूँ। जय हिन्द!

(प्रस्तुत लेख लेखक द्वारा बीरबल साहनी जी पर लिखी जा रही किताब से संकलित एक संक्षिप्त अंश है।)

धन्यवाद ज्ञापन: लेखक का प्रो. अशोक साहनी जी और सुश्री नीरा बुर्रा जी के प्रति हार्दिक धन्यवाद है।

प्रयुक्त सन्दर्भ :

1. अशोक साहनी, अंकल बीरबल; करेंट साइंस वॉल्यूम 61 (8 और 10), वर्ष 1991, पृ. 570-571।
2. अशोक साहनी, बीरबल साहनी एंड हिज़ फ़ादर रुचि राम साहनी-साइंस इन पंजाब इमर्जिंग फ्रॉम द शैडोज़ ऑफ़ द राज; इंडियन जनरल ऑफ़ हिस्ट्री ऑफ़ साइंस वॉल्यूम 53 (4), वर्ष 2018, पृ. 160-166।
3. अशोक साहनी, द बॉयहुड ऑफ़ बीरबल साहनी; रेज़ोनेंस, वर्ष 2004, पृ. 42-49।
4. आर. एन. लखनपाल, परफेक्शनिस्ट; करेंट साइंस वॉल्यूम 61 (8 और 10), वर्ष 1991, पृ. 577 -578।
5. ए. आर. राव, द आइडियल टीचर; करेंट साइंस वॉल्यूम 61 (8 और 10), वर्ष 1991, पृ. 574 -576।
6. बीरबल साहनी, ए क्ले सील एंड सेलिग ऑफ़ द सुंग पीरियड फ्रॉम द खोकरा कोट माउंड (रोहतक) ; करेंट साइंस, वॉल्यूम 5.2, वर्ष 1936, पृ. 80-81।
7. बीरबल साहनी, एंटीक्विटिज़ फ्रॉम द खोकरा कोट माउंड एट रोहतक इन द जमुना वैली; करेंट साइंस, वॉल्यूम 4, वॉल्यूम 7, वर्ष 1936, पृ. 65-67
8. बीरबल साहनी, यौधेय कॉइन् मोल्ड्स फ्रॉम सुनेतनियर लुधियाना इन द सतलुज वैली; करेंट साइंस , वर्ष 1941, पृ. 65 -67।
9. डॉ. चन्द्र मोहन नौटियाल, बीरबल साहनी-ए मैन हु डिड् वाट् हि लव्ड एंड लव्ड् वाट् हि डिड्; विज्ञान भारती (2023)।
10. डॉ.मुकुंद शर्मा, प्रोफेसर बीरबल साहनी और पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान, लखनऊ; हमारा लखनऊ पुस्तकमाला, हिन्दी वाङ्मय निधि।
11. मुल्क राज साहनी, बीरबल साहनी ए बायोग्राफिकल स्केच ऑफ़ हिज़ पर्सनल लाइफ; पेलियोबॉटनिस्ट, वॉल्यूम 1, वर्ष 1952, पृ. 1-8।
12. शक्ति एम. गुप्ता, बीरबल साहनी; नेशनल बुक ट्रस्ट : मूल अंग्रेजी संस्करण (1978)- हिंदी संस्करण (2004)।

रणधीर संजीवनी

140, बड़ा बाज़ार, मल्लीताल, नैनीताल।

हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है ।

—मैथिली शरण गुप्त

सूक्ष्म से विकराल: प्लास्टिक प्रदूषण का बढ़ता खतरा और बचाव

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) के नेतृत्व में, विश्व पर्यावरण दिवस हर साल 5 जून को मनाया जाता है। 1973 में शुरू हुआ यह आयोजन, पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ाने वाला दुनिया का सबसे बड़ा मंच बन गया है, जिसमें दुनिया भर से लाखों लोग हिस्सा लेते हैं। इस वर्ष, विश्व पर्यावरण दिवस 2025, की मेज़बानी दक्षिण कोरिया ने की, जिसका मुख्य लक्ष्य वैश्विक प्लास्टिक प्रदूषण को खत्म करना है। हाल ही के शोध बताते हैं कि माइक्रोप्लास्टिक और नेनोप्लास्टिक (MNPs) अब हर जगह मौजूद हैं, यहाँ तक कि हमारे मस्तिष्क में भी। पर्यावरण में इनकी बढ़ती मात्रा इंसानों के स्वास्थ्य पर गंभीर असर डाल सकती है। प्लास्टिक प्रदूषण एक विकट समस्या है जो हमारे पर्यावरण को बुरी तरह प्रभावित कर रही है। प्लास्टिक का अत्यधिक उपयोग प्लास्टिक अपशिष्ट का कारण बना है जो न केवल वन्यजीवों और समुद्री पारिस्थितिकी तंत्रों के लिए हानिकारक है , बल्कि मानव स्वास्थ्य के लिए भी खतरा उत्पन्न कर रहा है (चित्र 1 व 2)। अतः आवश्यक है कि इस समस्या के अधिक विकराल रूप लेने से पहले ही प्रभावी ढंग से समाधान किया जाए।

चित्र 1. माइक्रो और नैनो प्लास्टिक (एमएनपी) का मानव मस्तिष्क पर प्रभाव

चित्र 2. उत्तर प्रदेश के गोंडा में प्लास्टिक अपशिष्ट के पहाड़

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) के अनुसार, प्लास्टिक हमारे जीवन का सर्वव्यापी हिस्सा बन चुका है, जबकि यह स्थिति हमेशा से नहीं थी। 20वीं सदी के मध्य तक, प्लास्टिक का उत्पादन व अपशिष्ट अपेक्षाकृत कम था। किन्तु, 1970 से 1990 के दशक के दौरान, प्लास्टिक अपशिष्ट के उत्पादन में अचानक वृद्धि हुई, जो इस अवधि में उत्पादन में उछाल को दर्शाता है। विषेश रूप से 2000 के दशक की शुरुआत में, प्लास्टिक अपशिष्ट का उत्पादन आसमान छू गया, जो पिछले 40 वर्षों के संयुक्त उत्पादन को पार कर गया। यह रुझान अत्यंत चिताजनक हैं और प्लास्टिक अपशिष्ट के प्रभावी प्रबंधन हेतु स्थायी एवं दीर्घकालिक समाधानों की तत्काल आवश्यकता को उजागर करते हैं। अगर यही स्थितियाँ चलती रहीं तो 2050 तक, समुद्र में मछलियों कि तुलना में प्लास्टिक कि मात्रा अधिक हो जाएगी। यह समस्या अत्यंत विशाल है, और इससे होने वाला नुकसान विनाशकारी हो सकता है। इसलिए, यह अत्यावश्यक है कि हर व्यक्ति प्लास्टिक प्रदूषण से निपटने हेतु जिम्मेदारी ले और सक्रिय कदम उठाए। इस लेख में, हम प्लास्टिक प्रदूषण के कारणों और प्रभावों के साथ-साथ इस समस्या को कम करने के लिए अपनाए जा सकने वाले समाधानों का पता लगाएंगे। हम प्लास्टिक प्रदूषण के संदर्भ में सरकार और कॉर्पोरेट क्षेत्र द्वारा की जा रही कार्रवाइयों पर भी चर्चा करेंगे और यह सुझाव देंगे कि कैसे व्यक्तिगत स्तर पर लोग प्लास्टिक अपशिष्ट को कम करने में योगदान दे सकते हैं।

प्लास्टिक प्रदूषण के कारण

प्लास्टिक प्रदूषण आज एक बढ़ती हुई वैश्विक पर्यावरणीय चिता है। प्लास्टिक उत्पादों का अत्यधिक उपयोग और अनुचित निस्तारण प्लास्टिक प्रदूषण के मुख्य कारण हैं। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) का अनुमान है कि प्रत्येक वर्ष लगभग 400 मिलियन टन प्लास्टिक कचरा उत्पन्न होता है। पिछले कुछ दशकों में, प्लास्टिक का उत्पादन बढ़ा है, और यह किसी भी अन्य सामग्री की तुलना में कहीं अधिक तेज़ी से बढ़ रहा है। अनुमान है कि वर्ष 2050 तक प्राथमिक प्लास्टिक उत्पादन 1,100 मिलियन टन तक पहुँच जाएगा। प्लास्टिक प्रदूषण के कुछ मुख्य कारण निम्नलिखित है:

सिंगल-यूज प्लास्टिक

सिगल-यूज प्लास्टिक ऐसे उत्पाद हैं जिन्हें केवल एक बार उपयोग के लिए डिज़ाइन किया गया है। और उपयोग के बाद तुरंत फेंक दिया जाता है। इनमें प्लास्टिक बैग, स्ट्रॉ , पानी की बोतलें और खाद्य पैकेजिंग शामिल हैं। ये उत्पाद सस्ते, सुविधाजनक और व्यापक रूप से इस्तेमाल होते हैं, किन्तु यह पर्यावरण के लिए अत्यधिक हानिकारक प्लास्टिक अपशिष्ट पैदा करते हैं। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, हर साल 8 मिलियन टन से अधिक प्लास्टिक कचरा समुद्र में पहुंचता है और इस कचरे में सिगल-यूज प्लास्टिक का मात्रा काफ़ी ज़्यादा होती है। सिगल-यूज प्लास्टिक उत्पाद, जिन्हें एक बार इस्तेमाल करने के बाद त्याग दिया जाता है, तेजी से उपयोग में लाये जा रहे हैं और चिता का कारण बन रहे रहे हैं। पैकेजिंग, विशेष रूप से खाद्य और पेय पदार्थों के कंटेनरों हेतु सिगल-यूज प्लास्टिक, कुल प्लास्टिक उपयोग का लगभग 36% हिस्सा है। दुर्भाग्यवश, इनमें से 85% हिस्सा लैंडफिल में चला जाता है या अनियमित कचरे के रूप में फेंक दिया जाता है। इस समस्या को और जटिल बनाने वाली बात यह है कि लगभग सभी सिगल-यूज प्लास्टिक जीवाश्म ईंधन से निर्मित हैं।

प्लास्टिक प्रदूषण के प्रसार में उपभोक्ता के व्यवहार की भूमिका

प्लास्टिक में पैक किए गए सुविधा-उन्मुख उत्पादों पर बढ़ती सामाजिक निर्भरता, साथ ही फेंकने की संस्कृति, अत्यधिक प्लास्टिक की खपत, उसके अनुचित निस्तारण को बढ़ावा देती है। बहुत से लोग प्लास्टिक प्रदूषण के पर्यावरणीय प्रभावों और उचित अपशिष्ट प्रबंधन के महत्व से अनभिज्ञ हैं। उपभोक्ता के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने और जिम्मेदार उपभोग और निस्तारण प्रथाओं को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा और जागरूकता अभियान आवश्यक है। कमज़ोर नियमों और मौजूदा नियमों के ढीले प्रवर्तन के कारण उद्योगों को अत्यधिक मात्रा में प्लास्टिक बनाने की छूट मिल जाती है , बिना इसके निपटान की पर्याप्त ज़िम्मेदारी उठाए। यदि प्लास्टिक के उत्पादन, उपयोग और निपटान पर कड़े और प्रभावी नियम लागू किए जाएँ तो प्लास्टिक प्रदूषण को कम करने में मदद मिल सकती है। आपूर्ति श्रृंखलाओं के वैश्वीकरण में अक्सर सामानों की पैकेजिंग और परिवहन के लिए प्लास्टिक सामग्री का अत्यधिक उपयोग किया जाता है। प्लास्टिक प्रदूषण से निपटने के लिए सीमाओं के पार समन्वित प्रयास की आवश्यकता है, ताकि प्लास्टिक के उत्पादन और अपशिष्ट प्रबंधन प्रक्रियाओं को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सके। कई मामलों में, प्लास्टिक के व्यवहार्य विकल्प सीमित या अधिक महंगे होते हैं, जिससे उद्योग और उपभोक्ता इसके पर्यावरणीय दुष्प्रभावों के बावजूद प्लास्टिक पर निर्भर बने रहते हैं। प्लास्टिक की खपत को कम करने के लिए सतत विकल्पों के अनुसंधान और विकास में निवेश अनिवार्य है। प्लास्टिक प्रदूषण से निपटने हेतु एक बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाना होगा, जो इन परस्पर जुड़े हुए पहलुओं को समग्र रूप से संबोधित करें। इसमें नीतिगत हस्तक्षेप, जन जागरूकता अभियान, तकनीकी नवाचारों और सरकारों, उद्योगों व स्थानीय समुदायों के बीच सहयोगात्मक प्रयास शामिल होने चाहिए।

अपर्याप्त पुनर्चक्रण (recycling) अवसंरचना

प्लास्टिक रीसाइक्लिंग की निम्न दरें पर्यावरण में प्लास्टिक अपशिष्ट के संचय में योगदान करती हैं। अधिकांश प्लास्टिक उत्पाद रीसाइक्लिंग के अनुकूल डिज़ाइन नहीं किए गए हैं, और कुल प्लास्टिक खपत की तुलना में पुनर्चक्रण दरें अपेक्षाकृत कम हैं (चित्र 2)। पैकेजिंग उद्योग प्लास्टिक प्रदूषण के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अत्यधिक पैकेजिंग, जिसमें ओवररैपिंग और गैर-पुनर्चक्रणीय सामग्री का उपयोग प्लास्टिक अपशिष्ट की मात्रा बढ़ाने में योगदान देता है। इसके अलावा, पैकेजिंग में प्लास्टिक का प्रयोग अक्सर इसकी कम लागत और स्थायित्व से प्रेरित होता है। फास्ट फ़ैशन और उपभोक्ता वस्तुओं जैसे उद्योग प्लास्टिक पैकेजिंग और सामग्री पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं। प्लास्टिक में पैक किए गए डिस्पोजेबल फ़ैशन और उपभोक्ता उत्पादों कि बढ़ती प्रवृति प्लास्टिक प्रदूषण को बढ़ाता है, क्योंकि ये वस्तुएं थोड़े समय के उपयोग के बाद त्याग दी जाती हैं। फिर भी, प्लास्टिक प्रदूषण से निपटने के लिए इन सभी कारकों को दूर करने हेतु ठोस प्रयासों की आवश्यकता है, इसमें अपशिष्ट में कमी लाने वाली नीतियों का निर्माण, बेहतर अपशिष्ट प्रबंधन अवसंरचना, जिम्मेदार निस्तारण प्रथाओं को प्रोत्साहित करने वाले जन जागरूकता अभियान और प्लास्टिक हेतु टिकाऊ विकल्पों के उपयोग को बढ़ावा देने वाली पहल शामिल हैं। पर्यावरण पर प्लास्टिक प्रदूषण के प्रभावों को कम करने के लिए सरकारों , उद्योगों, समुदायों और व्यक्तियों के बीच सहयोग आवश्यक है।

अनुचित अपशिष्ट निस्तारण

प्लास्टिक अपशिष्ट का अनुचित निपटान प्लास्टिक प्रदूषण का एक और प्रमुख कारण है। प्लास्टिक उत्पादों के विघटन में सैकड़ों वर्ष लगते हैं, और जब उनका अनुचित तरीके से निस्तारण किया जाता है, तो वे समुद्र या लैंडफिल में जमा होकर वन्यजीवों और पर्यावरण को नुकसान पहुंचा सकते

हैं। कई देशों में अपशिष्ट प्रबंधन प्रणालियां अपर्याप्त हैं, जिसके कारण प्लास्टिक अपशिष्ट को नदियों और समुद्रों में फेंक दिया जाता है या जला दिया जाता है, जिससे हवा में जहरीले रसायन फैलते हैं (चित्र 3)।

प्लास्टिक प्रदूषण के प्रभाव

प्लास्टिक प्रदूषण के पर्यावरण, समुद्री जीवन, मानव स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था पर गंभीर परिणाम होते हैं। प्लास्टिक प्रदूषण के कुछ प्रभाव इस प्रकार हैं:

समुद्री जीवन को होने वाला नुकसान

प्लास्टिक प्रदूषण समुद्री जीवन के लिए सबसे बड़े खतरों में से एक है। मछली पकड़ने के जाल, प्लास्टिक बैग और सिक्स-पैक रिंग जैसे बड़े प्लास्टिक के मलबे समुद्री कछुए, डॉल्फ़िन, व्हेल और पक्षियों जैसे समुद्री जीवों को उलझा सकते हैं, जिससे चोट, दम घुटने और मौत हो सकती है (चित्र 4)। इसके अलावा, समुद्री जीव छोटे प्लास्टिक के कणों को भोजन समझ सकते हैं, जिससे उनके पाचन तंत्र में रुकावट, कुपोषण और मौत हो सकती है। एक हालिया अध्ययन में पाया गया है कि 90% से अधिक समुद्री पक्षियों ने प्लास्टिक निगल लिया है, अगर समय रहते कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए तो 2050 तक यह आंकड़े 99% तक पहुँच सकते हैं। सूक्ष्म प्लास्टिक, जो आमतौर पर 5 मिलीमीटर से छोटे प्लास्टिक कण होते हैं, जो जलीय पारिस्थितिकी तंत्र के लिए एक बड़ा ख़तरा हैं। यहाँ बताया गया है कि सूक्ष्म प्लास्टिक जलीय प्रणालियों के संदूषण में किस प्रकार योगदान करते हैं: ज़ूप्लैंकटन, फ़िल्टर फीडर और छोटी मछलियाँ सहित कई जलीय जीव भोजन करते समय अनजाने में सूक्ष्म प्लास्टिक निगल लेते हैं। ये कण उनके पाचन तंत्र में जमा हो सकते हैं, जिससे शारीरिक नुकसान हो सकता है, भोजन ग्रहण करने की क्षमता कम हो सकती है और पोषक तत्वों के अवशोषण में बाधा आ सकती है।

चित्र 3. एकत्र नहीं किए गए प्लास्टिक अपशिष्ट का आधे से अधिक हिस्सा जला दिया जाता है।

चित्र 4. प्लास्टिक प्रदूषण समुद्री जीवन के लिए सबसे बड़ा खतरा

आर्थिक लागत

प्लास्टिक प्रदूषण समाज पर एक महत्वपूर्ण आर्थिक बोझ डालता है। विश्व आर्थिक मंच की 2016 की रिपोर्ट के अनुसार, वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए प्लास्टिक प्रदूषण की लागत 2050 तक 13 ट्रिलियन डॉलर तक पहुँच सकती है। इसमें प्लास्टिक अपशिष्ट की सफाई, पर्यटन राजस्व का नुकसान और मत्स्य पालन और समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र को होने वाला नुकसान शामिल है।

मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण पर प्रभाव

प्लास्टिक प्रदूषण से मनुष्यों को कई स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जिनमें कैंसर, प्रजनन संबंधी समस्याएं और विकास संबंधी समस्याएँ शामिल हैं (चित्र 5)। जब प्लास्टिक गर्मी, प्रकाश या अम्लीय परिस्थितियों के संपर्क में आता है, तो यह बिस्फेनॉल ए (बीपीए), फथलेट्स और स्टाइरीन जैसे हानिकारक रसायनों को छोड़ सकता है।

ये रसायन खाद्य श्रृंखला में जमा हो सकते हैं, जिससे दीर्घकालिक स्वास्थ्य प्रभाव हो सकते हैं। प्लास्टिक प्रदूषण का पर्यावरण पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है, जिसमें मिट्टी व जल प्रदूषण, बढ़ता उत्सर्जन तथा जैव विविधता की हानि शामिल है। प्लास्टिक को नष्ट होने में सैकड़ों वर्ष लगते हैं और यह मिट्टी और जल स्रोतों को दूषित कर सकता है, जिससे विषाक्त अपशिष्ट जमा हो सकते है। प्लास्टिक अपशिष्ट और उत्पादन से मीथेन और कार्बन

डाइऑक्साइड जैसी ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता है, जो पर्यावरणीय परिस्थितियों में अस्थिरता को बढ़ावा देती हैं। अंत में, प्लास्टिक प्रदूषण पोषक तत्वों और खाद्य स्रोतों के संतुलन को बाधित करके पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित कर सकता है।

अध्ययन के अनुसार, पारिस्थितिकी तंत्र, वन्यजीवों और मानव आबादी पर प्लास्टिक प्रदूषण के पारिस्थिति कीय और स्वास्थ्य संबंधी प्रभावों का मूल्यांकन करने के लिए ऐसे पारिस्थितिक अध्ययन किए जाते हैं जिनमें समुद्री और स्थलीय जीवों पर प्लास्टिक के अंतर्ग्रहण, उलझाव और आवासीय व्यवधान के प्रभावों का आकलन शामिल है। इसके अतिरिक्त, प्लास्टिक-दूषित भोजन और पानी के सेवन से जुड़े संभावित स्वास्थ्य खतरों की जांच आवश्यक है, जिसमें विषैले रसायनों और रोगजनकों के स्थानांतरण की संभावना भी शामिल है। संवेदनशील प्रजातियों और पारिस्थितिकी तंत्रों, साथ ही संभावित मानव स्वास्थ्य संबंधी चिताओं की पहचान करके, शोधकर्ता पारिस्थितिकी तंत्र, वन्यजीवन और मानव आबादी पर प्लास्टिक प्रदूषण के पारिस्थितिकी और स्वास्थ्य प्रभावों का मूल्यांकन करते हुए संरक्षण प्रयासों, सार्वजनिक स्वास्थ्य हस्तक्षेपों को प्राथमिकता दे सकते हैं। आंकड़ों के अनुसार प्लास्टिक प्रदूषण के कारण पारिस्थितिकी और स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन मानव स्वास्थ्य पर सबसे अधिक 40% पाया गया, इसके बाद पारिस्थितिकी प्रभाव 35% और फिर वन्यजीव प्रभाव का 25% देखा गया, जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है:

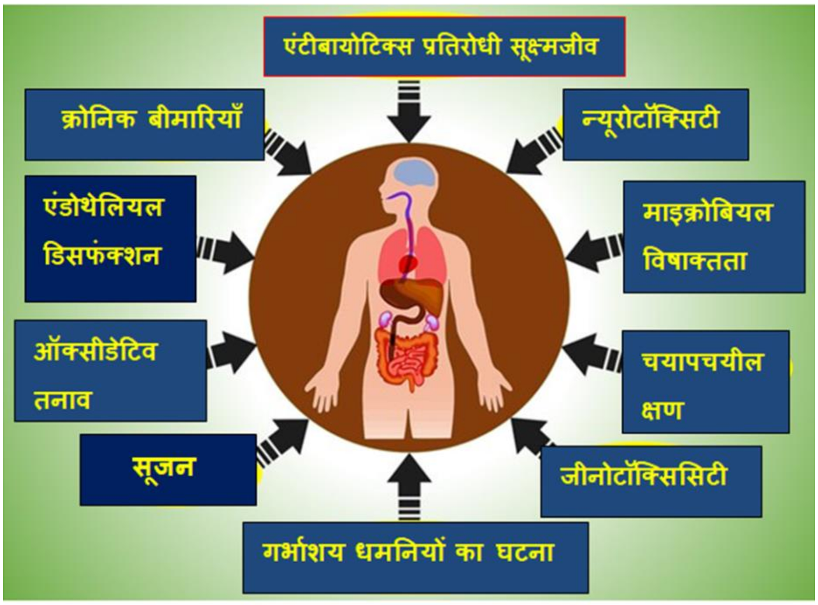

चित्र 5. मानव स्वास्थ्य पर एम.पी.एस. के प्रतिकूल प्रभाव।

सूक्ष्मप्लास्टिक भारी धातुओं और रोगजनकों के वाहक के रूप में कार्य करते हैं, जो विभिन्न प्रकार की विषाक्तता उत्पन्न करते हैं और कई पैथोफिजियोलॉजिकल कारकों को प्रेरित करते हैं। ये पैथोफिजियोलॉजिकल मध्यस्थ आगे चलकर कई शारीरिक विकारों और पुरानी जटिलताओं का कारण बनते हैं।

समाधान और न्यूनीकरण

- *3R सिद्धांत को अपनाकर:* समग्रियों का पुनः उपयोग करें, पुनः चक्रण करें, प्लास्टिक की खपत कम करें, प्लास्टिक प्रदूषण को काफी हद तक कम किया जा सकता है।
- *नीतिगत हस्तक्षेप:* सरकारें प्लास्टिक बैग, एकल-उपयोग प्लास्टिक पर कर, तथा प्लास्टिक के उपयोग को विनियमित करने और विकल्पों को प्रोत्साहित करने के लिए टिकाऊ पैकेजिग हेतु प्रोत्साहन जैसी नीतियां लागू कर सकती हैं।
- *सार्वजनिक जागरूकता और शिक्षा:* शैक्षिक अभियानों के माध्यम से प्लास्टिक प्रदूषण के पर्यावरणीय प्रभावों के बारे में जागरूकता बढ़ाना लोगों में व्यावहारिक बदलाव लाने और जिम्मेदार उपभोग की आदतों को बढ़ावा देने में मदद कर सकता है।
- *नवाचार और प्रौद्योगिकी:* जैव-अवघटनशील (बायोडिग्रेडेबल) प्लास्टिक, वैकल्पिक सामग्रियों और नवीन रीसाइक्लिंग तकनीकों के अनुसंधान एवं विकास में निवेश करना प्लास्टिक अपशिष्ट को कम करने के लिए स्थायी समाधान प्रदान कर सकता है।
- *कॉर्पोरेट जिम्मेदारी:* व्यवसायों को चिरस्थायी प्रथाओं को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना, जैसे पर्यावरण अनुकूल पैकेजिग का उपयोग करना और उनकी आपूर्ति श्रृंखलाओं में प्लास्टिक को कम करना, प्लास्टिक प्रदूषण कम करने में सहायक हो सकता है।

- *सामुदायिक भागीदारी:* सफाई प्रयासों, समुद्र तट की सफाई और नदी की सफाई में स्थानीय समुदायों को शामिल करने से प्लास्टिक अपशिष्ट को जल निकायों में जाने से रोका जा सकता है और इस मुद्दे के बारे में जागरूकता बढ़ाई जा सकती है। प्लास्टिक प्रदूषण को संबोधित करने की बात आने पर असहाय महसूस करना आसान है, लेकिन हर व्यक्ति छोटे लेकिन प्रभावशाली कदम उठाकर बदलाव ला सकता है।

खरीदारी के लिए जाते समय हमेशा अपने साथ दोबारा इस्तेमाल के योग्य बैग लेकर जाएं। प्लास्टिक बैग की तुलना में ये पर्यावरण हेतु ज़्यादा अनुकूल हैं। पानी और दूसरे पेय पदार्थों के लिए अपने साथ पुनः भरणीय पानी की बोतल रखें। यह सिंगल-यूज़ प्लास्टिक बोतलों के इस्तेमाल से ज़्यादा पर्यावरण के अनुकूल है। स्ट्रॉ, बर्तन और खाने के कंटेनर सहित सिंगल-यूज़ प्लास्टिक का इस्तेमाल न करें। कांच, धातु या बांस के उत्पादों जैसे प्लास्टिक-मुक्त विकल्पों का चयन करें। जब भी संभव हो, थोक में ख़रीदारी करें, ताकि पैकेजिंग कचरे को कम किया जा सके और दीर्घकाल में पैसे की भी बचत हो सके। इसके साथ ही अपशिष्ट संग्रह और निस्तारण की उचित व्यवस्था को लागू करना आवश्यक है, जिसमें रीसाइक्लिंग और जैव अपघटन सुविधाएं शामिल हों।

लखनऊ और आसपास के क्षेत्रों में बड़े मंगल के अवसर पर, जिसमें धार्मिक उत्सव और प्रसाद वितरण शामिल होते हैं, डिस्पोजेबल वस्तुओं के रूप में प्लास्टिक अपशिष्ट का उपयोग एक गंभीर मुद्दा है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण होता है। हालांकि धार्मिक प्रथाओं और सौहार्द को बढ़ावा देने के प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन प्लास्टिक अपशिष्ट की व्यापकता एक चुनौती बना हुआ है।

जहां एक ओर नियमों के व्यापक प्रचार और प्रभावी प्रवर्तन की आवश्यकता है, वहीं कुछ संभावित समाधानों में पुन: प्रयोज्य विकल्पों को बढ़ावा देना शामिल है: प्लास्टिक के डिस्पोजेबल उत्पादों के स्थान पर दोबारा उपयोग में आने वाली थालियों, कपों और बर्तनों के उपयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए।

डॉ. स्वाति त्रिपाठी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

भारत के सभी भागों में सारी शिक्षा का एक उद्देश्य हिंदी का पूर्ण ज्ञान भी होना चाहिए। हिंदी का भारत कि राष्ट्रभाषा होना निश्चित है। संचार व्यवस्था और वाणिज्य कि प्रगति ही यह कार्य सम्पन्न करेगी।

— चक्रवती राजगोपालाचारी

मैं वृक्ष नहीं इतिहास हूँ!

प्रकृति में ऐसे बहुत से रहस्य हैं, जिसे समझ पाना मनुष्य के लिए बहुत मुश्किल है। मनुष्य आज भी इन रहस्यों को सम्पूर्ण तरीके से समझने में प्रयासरत हैं। मनुष्य बोलने और समझने में सक्षम है किन्तु प्रकृति हमें कुछ भी बोल के नहीं बताती बल्कि संकेत देती है। ऐसे ही हमारे आस पास वृक्ष है जो बोलते नहीं परन्तु अपना इतिहास अपने में समाहित करते हैं। हर वृक्ष, विशेष रूप से वह जो सौ वर्षों से अधिक समय से खड़े हैं, अपने भीतर समय की परतें समेटे हुए होता है (चित्र 1)। उसकी शाखाएँ, उसकी छाल, उसकी जड़ें — सब कुछ अनुभवों की किताबें हैं। जब कोई वृक्ष सदियों से एक ही स्थान पर खड़ा होता है, तो उसने वहां के अनगिनत मौसम देखे होते हैं, पीढ़ियों को गुजरते हुए देखा होता है, इतिहास को घटते और बनते देखा होता है। वह गवाह होता है राजाओं के शासन का, आज़ादी की लड़ाई का, गाँव के मेलों का और आधुनिकता के आगमन का।

"मैं वृक्ष नहीं इतिहास हूँ", यह पंक्ति केवल शब्द नहीं, बल्कि एक गहरी पुकार है, जिसे आज हम नजर अंदाज कर देते हैं। वृक्ष एक छोटे बालक की तरह है जो अनुकूल परिस्थिति मिलने पर अच्छे से बढ़ता है और अनुकूल परिस्थिति ना हो तो अच्छे से नहीं बढ़ पाता। वैज्ञानिक इन्हीं बातों को समझने के लिए वृक्षों पर कई प्रकार के अनुसंधान करने में प्रयासरत है। वनस्पति विज्ञान, वानिकी (वनों का विज्ञान), पारिस्थितिकी, आयुर्वेद और पारंपरिक चिकित्सा, वनोन्मूलन और पर्यावरणीय प्रभाव अध्ययन, जलवायु विज्ञान, डेंड्रोक्रोनोलॉजी, ऐसे बहुत सी शाखाएं हैं जिनमें वृक्षों को अलग-अलग तारीखों से समझने की कोशिश की जाती है।

आज हम खास तौर से डेंड्रोक्रोनोलॉजी के बारे में जानेंगे। डेंड्रोक्रोनोलॉजी वह विज्ञान है जिसमें वृक्ष के तनों में पाए जाने वाले वार्षिक वृत्तों (annual rings) का अध्ययन कर किसी वृक्ष की आयु, जलवायु परिवर्तन, सूखा, आग, भूकंप, और अन्य ऐतिहासिक घटनाओं का पता लगाया जाता है। इस अध्ययन के लिए उन वृक्षों का चुनाव किया जाता है जिनमे वार्षिक वृत्त उपस्थित होते हैं।

चित्र 1 : वृक्ष के विभिन्न अनुभव

हमारे आस पास मौजूद वृक्षों में वृत्त की उपस्थिति या अनुपस्थिति सामान्य है परन्तु ऐसे कुछ ही वृक्ष हैं जिनमें वार्षिक वृत्त का निर्माण होता है। समशीतोष्ण (temperate) क्षेत्रों में पाए जाने वाले कई वृक्षों में स्पष्ट वार्षिक वृत्त बनते हैं, जो डेंड्रोक्रोनोलॉजी अध्ययन के लिए उपयुक्त होते हैं । यह वृत्त ऋतुओं के बीच तापमान और जलवायु में होने वाले भिन्नता के कारण बनते हैं (सर्दी और गर्मी के स्पष्ट अंतर के कारण) (चित्र2 व 3)। देवदार, चीड़ जैसे वृक्ष इसका उदहारण हैं। उष्णकटिबंधीय (Tropical) क्षेत्रों में, वृक्षों के वार्षिक वृत्त का बनना आमतौर पर अधिक जटिल होता है, क्योंकि यहाँ की जलवायु में ठंडी और गर्म ऋतुओं की स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं होती जोकि वृत्तों के बनने के लिए आवश्यक होती है। फिर भी, कुछ उष्णकटिबंधीय वृक्षों में स्पष्ट वार्षिक वृत्त पाए जाते हैं, और उन पर डेंड्रोक्रोनोलॉजी आधारित अध्ययन संभव होता है। सागौन और रुण वृक्ष इसके महत्वपूर्ण उदहारण हैं (चित्र 2)।

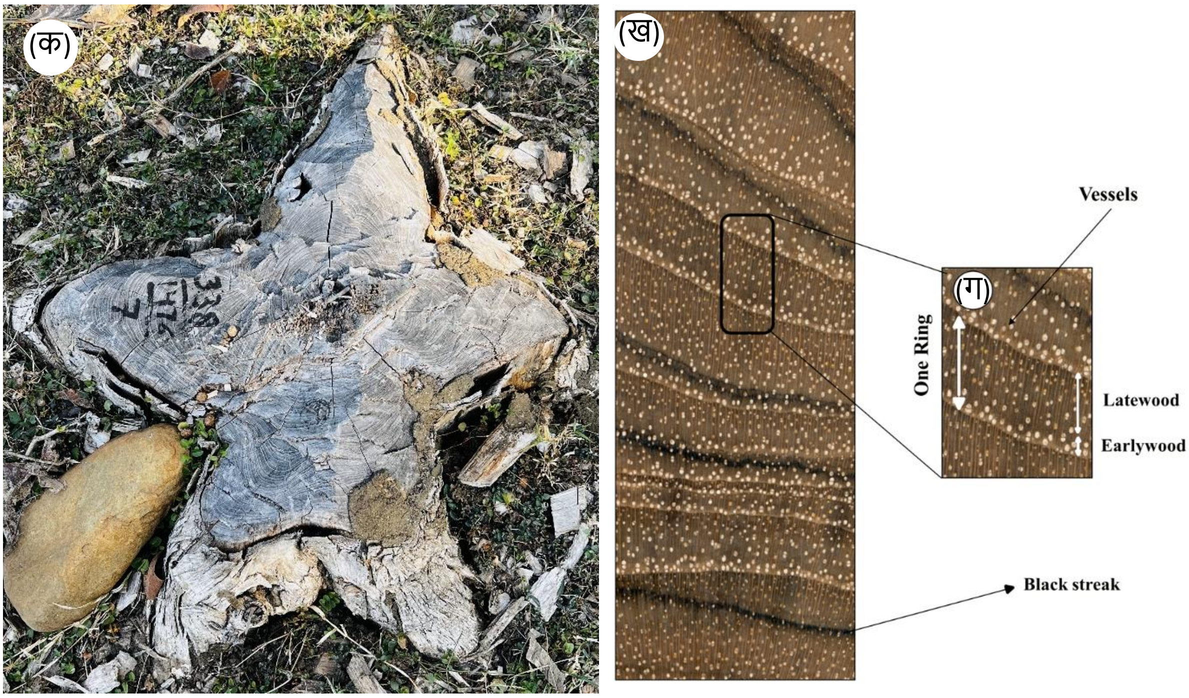

चित्र 2 : सागौन का तना एवं उसमे उपस्थित वार्षिक वृत्त

चित्र 3: विभिन्न अनुभवों के आधार पर वार्षिक वृत्तों में परिवर्तन

हर साल वृक्ष अपने तने में एक नया वृत्त जोड़ता है। इन वृत्तों की गिनती और पैटर्न सुमेलन (pattern matching) करके वृक्ष की आयु ज्ञात की जाती है। इन वृत्त की मोटाई उस वर्ष की जलवायु पर निर्भर करती है जिस वर्ष में उसका निर्माण हुआ है। अनुकूल परिस्थिति होने पर यह वृत्त

मोटे होते हैं तथा सूखे वर्षों में पतले। इसके अतिरिक्त वृक्ष वृत्त को जंगल की आग, वनों की कटाई, शहरीकरण, प्रदूषण, खनन जैसी मानव गतिविधियाँ भी प्रभावित करती हैं और इसके अध्ययन से इसकी सम्पूर्ण जानकारी संभव है। इस ज्ञान के आधार पर उस स्थान की जलवायु और पर्यावरण का इतिहास जाना जाता है। यह अध्ययन केवल वृक्षों से ही नहीं बल्कि पुराने लकड़ी के टुकड़ों (जैसे पुरानी इमारतें, नावें, मंदिर) का उपयोग करके भी संभव है। वृक्ष वृत्तों की सहायता से वैज्ञानिक पुराजलवायु का अध्ययन करते हैं जिससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि भविष्य में जलवायु परिवर्तन से क्या प्रभाव हो सकते हैं — जैसे: समुद्र स्तर में वृद्धि, कृषि पर प्रभाव, जल संकट, जैव विविधता का नुकसान।

निष्कर्ष: भारत के वृक्ष केवल जीवन के प्रतीक नहीं हैं, वे इतिहास के जीवंत अभिलेख हैं। एक वृक्ष काटना वर्षों के इतिहास को ख़त्म करने के समान है। डेंड्रोक्रोनोलॉजी के माध्यम से हम प्रकृति की उस मौन भाषा को पढ़ सकते हैं, जो सदियों से वृक्षों में दर्ज है। यह विज्ञान हमें न केवल अतीत को समझने में मदद करता है, बल्कि भविष्य की जलवायु और पारिस्थितिकीय दिशा को भी निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

दीक्षा

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

यह भारत कि जनता के बहुत बड़े वर्ग की और, यदि हम छोटे-मोटे बोलीगत रूप भेदों को छोड़ दें तो, हिन्दी बहुमत कि भाषा है। वास्तव में यह उसी प्रकार भारत कि राष्ट्रीय भाषा होने का दावा कर सकती है जिस प्रकार से हिन्दू धर्म भारत का राष्ट्रीय धर्म ।

— चक्रवती राजगोपालाचारी

रंगों का अद्भुत रहस्य: प्रकाश और वर्णक क्यों भिन्न सिद्धांतों का पालन करते हैं

क्या रंगों के साथ खेलते हुए कभी आप उलझन में पड़े हैं? लाल, हरे और नीले प्रकाश को मिलाएँ और देखिए—आपको मिलता है शुद्ध सफेद प्रकाश। चमकदार, जीवंत, जैसे पूरा स्पेक्ट्रम आपके सामने हो। लेकिन जब आप ब्रश उठाकर लाल, पीला और नीला रंग मिलाते हैं, तो क्या होता है? अक्सर एक फीका, मटमैला भूरा।

असली पहेली यहीं है—प्रकाश की दुनिया के प्राथमिक रंग (RGB: लाल, हरा, नीला) हैं और रंगों की दुनिया के पास अपने (RYB: लाल, पीला, नीला)। अवधारणा तो एक ही है, है ना? तीन प्राथमिक रंग मिलते हैं। फिर भी, परिणाम इससे अधिक भिन्न नहीं हो सकते।

आखिर यहाँ चल क्या रहा है?

इसका रहस्य एक दिलचस्प वैज्ञानिक विरोधाभास में छिपा है: रंग केवल वह नहीं है जो हम देखते हैं; यह इस बात का एक गतिशील मेल है कि प्रकाश कैसे व्यवहार करता है, सामग्री कैसे प्रतिक्रिया करती है और हमारा मस्तिष्क इन सबको कैसे समझता है। आपकी स्क्रीन पर चमकते पिक्सेल से लेकर एक कलाकार के पैलेट पर मौजूद रंग-बिरंगी वर्णक (pigment) तक, यह सब दो अलग-अलग प्रणालियों से उत्पन्न होता है: योज्य (additive) और घटाव (subtractive) रंग मिश्रण।

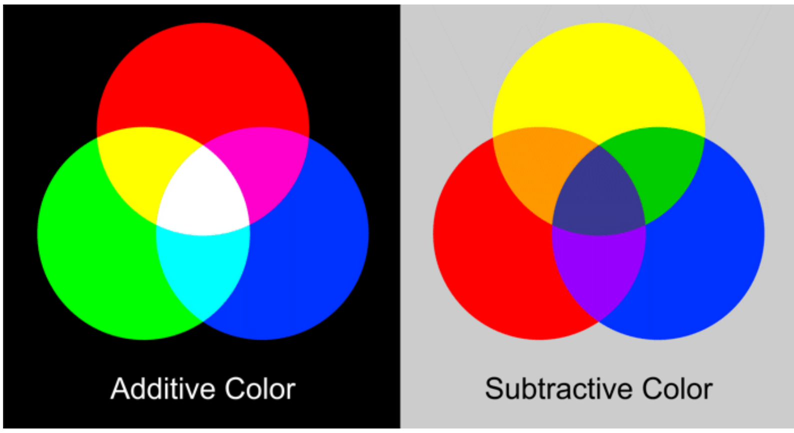

प्रकाश का रहस्य: योज्य रंग मिश्रण (Additive Color Mixing)

कल्पना कीजिए कि आप एक पूरी तरह से अंधेरे कमरे में हैं। अब सोचिए: एक चमकदार लाल रंग की किरण उस अंधेरे को चीरते हुए आती है और दीवार को गहरे लाल रंग से रंग देती है। फिर आती है हरी किरण, उसके बाद नीली। हर किरण दीवार पर अपना अलग रंग बनाती है। लेकिन जब ये तीनों शुद्ध और चमकीली रोशनियाँ एक साथ नृत्य करना और मिलना शुरू करती हैं, तब क्या होता है?

यह सिर्फ एक खूबसूरत दृश्य नहीं है; यह योज्य रंग मिश्रण के पीछे का जादुई रहस्य है। हम यहाँ प्रकाश की तरंगदैर्ध्य (wavelength) को संयोजित कर पूरी तरह से नए रंग बनाने की बात कर रहे हैं। हमारी आँखों में तीन प्रकार की शंकु कोशिकाएँ (cone cells) होती हैं, जिनमें से प्रत्येक दृश्यमान स्पेक्ट्रम (visible spectrum) की विशिष्ट श्रेणियों के प्रति संवेदनशील होती है: लाल, हरा और नीला (RGB)। जब प्रकाश की विभिन्न तरंगदैर्ध्य के संयोजन इन शंकुओं को एक साथ उत्तेजित करते हैं, तो मस्तिष्क उन्हें रंगों की एक शानदार श्रृंखला में बदल देता है:

लाल + हरा ⟶ चमकीला पीला

हरा + नीला ⟶ शांत सियान

नीला + लाल ⟶ गहरा मैजेंटा

और सबसे शानदार अंत: लाल + हरा + नीला ⟶ शुद्ध, चकाचौंध करने वाला सफेद

यह प्रकाशीय घटना केवल प्रयोगशालाओं तक ही सीमित नहीं है; यह आपके रोज़मर्रा के डिजिटल अनुभव का प्रमुख कारक है। किसी भी आधुनिक स्क्रीन—चाहे वह आपका टेलीविजन हो या स्मार्टफोन—पर करीब से देखें। आपको सूक्ष्म लाल, हरे और नीले पिक्सेल (pixel) दिखाई देंगे। वे केवल छोटे बिंदु नहीं हैं; वे लघु प्रकाश उत्सर्जक हैं। प्रत्येक की तीव्रता को सटीक रूप से ऊपर या नीचे करके, आपकी स्क्रीन लाखों विभिन्न रंगों का भ्रम पैदा करती है। यह योज्य मिश्रण है, जो असल में आपकी डिजिटल दुनिया को रंग रहा है।

क्योंकि ये तीन चमकदार रंग—लाल, हरा और नीला—प्रकाश के लगभग हर उस रंग को उत्पन्न करने की शक्ति रखते हैं जिसे हमारी आँखें देख सकती हैं, इसलिए उन्हें सार्वभौमिक रूप से प्रकाश के वास्तविक प्राथमिक रंग के रूप में जाना जाता है।

वर्णक पहेली: घटाव रंग मिश्रण (The Pigment Puzzle: Subtractive Color Mixing)

अब आइए हम शुद्ध प्रकाश के क्षेत्र से हटकर पेंट की दुनिया की ओर ध्यान केंद्रित करें। यहाँ, रंगों का निर्माण एक मौलिक रूप से भिन्न, लगभग विपरीत सिद्धांत पर आधारित है। जब आपकी आँखें एक चमकदार लाल सेब को देखती हैं, तो सेब खुद लाल रोशनी उत्सर्जित (emit) नहीं कर रहा होता। सेब प्रकाश की अधिकांश अन्य तरंगदैर्ध्य (wavelength) को अवशोषित (absorb) कर लेता है, और केवल लाल तरंगदैर्ध्य को परावर्तित करता है, जिसे हमारी आँखें पहचानती हैं। यही घटाव रंग मिश्रण का मूल है—एक आकर्षक प्रक्रिया जो प्रकाश के अवशोषण (absorption) और निस्पंदन (filtration) कि प्रक्रिया पर आधारित है।

पेंट और स्याही का मूल उनके वर्णकों (pigments) में निहित है, जो प्रकाश की कुछ तरंगदैर्ध्य को अवशोषित करते हैं और बाकी को परावर्तित करते हैं। जब आप वर्णकों को मिलाते हैं, तो आप प्रकाश जोड़ नहीं रहे होते; आप उनकी प्रकाश-अवशोषित क्षमताओं को बढ़ा रहे होते हैं। आप जितनी अधिक परतें मिलाते हैं, उतनी ही अधिक प्रकाश तरंगदैर्ध्य फंस जाती हैं और गायब हो जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप रंग अनिवार्य रूप से गहरा होता जाता है।

परंपरागत रूप से, वर्णक के प्राथमिक रंग लाल, पीला और नीला (RYB) हैं। आइए उनकी व्यक्तिगत भूमिकाओं पर गौर करें:

पीला वर्णक: यह वर्णक एक चयनात्मक फिल्टर के रूप में कार्य करता है, नीले प्रकाश को अवशोषित करता है और लाल व हरे रंग के संयोजन को परावर्तित करता है, जिसे हमारी धारणा पीले रंग के रूप में व्याख्या करती है।

नीला वर्णक: इसका मुख्य कार्य लाल और पीले प्रकाश को अवशोषित करना है, जिससे केवल नीला परावर्तित करता है

लाल वर्णक: यह नीले और हरे दोनों प्रकाश को प्रभावी ढंग से अवशोषित करता है, और केवल लाल परावर्तित करता है

जब ये संयुक्त होते हैं तो उनके परिवर्तनकारी शक्ति को देखें:

पीला + नीला ⟶ हरा (पीला नीले प्रकाश को घटाता है, जबकि नीला लाल प्रकाश को घटाता है, जिससे हरा प्रमुख परावर्तित रंग रह जाता है।)

नीला + लाल ⟶ गहरा बैंगनी

लाल + पीला ⟶ गर्म नारंगी

लाल + पीला + नीला ⟶ आदर्श रूप से, शुद्ध काला, लेकिन व्यवहार में, वर्णकों की अंतर्निहित अशुद्धियों के कारण, यह भव्य संयोजन अक्सर एक फीका, मटमैला भूरा रंग देता है।

अंततः, घटाव की दुनिया कम होती रोशनी की है। आपके द्वारा डाला गया हर रंग स्पेक्ट्रम से और अधिक रंग छानता है, चमक जोड़कर नहीं बल्कि जो पहले था उसे रणनीतिक रूप से हटाकर रंग बनाता है, जो एक चित्रकार के सबसे गहरे रंगों के समृद्ध, मिट्टी के रंगों में परिणत होता है।

RYB से परे: मुद्रण में CMYK का उदय (Beyond RYB: The Rise of CMYK in Printing)

जहाँ कला कक्षाओं में परिचित RYB (लाल, पीला, नीला) का दबदबा है, वहीं आधुनिक विज्ञान और पेशेवर मुद्रण की परिष्कृत दुनिया ने एक अधिक सटीक और शक्तिशाली रहस्य को अपनाया है: CMY (सियान, मैजेंटा, पीला) मॉडल। अक्सर, एक महत्वपूर्ण चौथा खिलाड़ी, K/Key (काला), अद्वितीय गहराई और स्पष्ट कंट्रास्ट प्राप्त करने के लिए इस तिकड़ी में शामिल होता है।

रंगों की दुनिया जितनी सुंदर है, उतनी ही चतुर भी। हम रोज़मर्रा की ज़िंदगी में जिन रंगों से घिरे रहते हैं—कभी मोबाइल स्क्रीन की चमक में, तो कभी दीवार पर उभरे किसी ब्रश स्ट्रोक में—उनके पीछे दो बिलकुल अलग विज्ञान काम कर रहे होते हैं। लेकिन इस विज्ञान को जानना सिर्फ तकनीकी जानकारी नहीं देता, यह हमें देखने का नया नज़रिया देता है।

शायद अगली बार जब आप प्रोजेक्टर की सफेद रोशनी देखें या बच्चों की चित्रकारी में भूरा रंग बनते देखें, तो आप सिर्फ रंग नहीं देखेंगे — आप उस अदृश्य संवाद को समझेंगे जो प्रकाश, पदार्थ और मानव आँख के बीच चलता है।

क्योंकि कभी-कभी रंग सिर्फ रंग नहीं होते—वे विज्ञान की कविता होते हैं।

शिवाली श्रीवास्तव

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

कार्बन के विविध रंग: प्रकृति और जलवायु के विशेष संदर्भ में

मैं कार्बन हूँ !

अधिकतर लोगों ने मुझे केवल मेरे काले रूप में ही पहचाना है, लेकिन आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि प्रकृति में मेरा सबसे अधिक प्रचलित रंग नीला है। मैं, अर्थात् कार्बन, आपके पारिस्थितिक तंत्र का एक मूलभूत घटक हूँ। आप मुझे पृथ्वी की आधारशिला भी कह सकते हैं। मैं पृथ्वी की जलवायु को संतुलित रखने में एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हूँ। हालाँकि मेरा नाम एक ही है, परंतु मेरे प्रकार, प्रभाव और गुण समय-समय पर पर्यावरणीय परिवर्तनों के अनुसार बदलते रहते हैं।

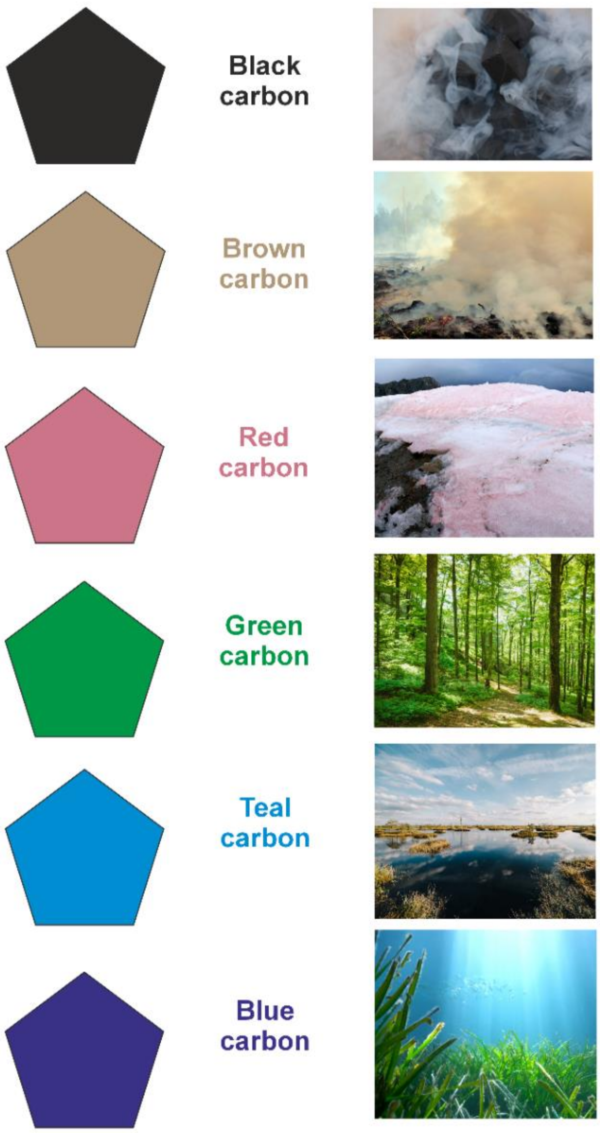

चित्र 1. रंगों के आधार पर कार्बन के विभिन्न प्रकार

यदि हम कार्बन के विविध रूपों और उनके विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों से संबंध को गहराई से समझ पाएं, तो हम प्रकृति में घटित होने वाली जटिल जैव-भौतिक प्रक्रियाओं तथा उनके परिणामस्वरूप उत्पन्न पर्यावरणीय परिवर्तनों को और स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। कार्बन के ये विभिन्न स्वरूप न केवल पर्यावरण संरक्षण में सहायक हैं, बल्कि पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए भी अत्यंत आवश्यक हैं।

आज कार्बन को उसके "रंगों" के आधार पर वर्गीकृत और अध्ययन करने की एक नवीन वैज्ञानिक पद्धति विकसित की जा रही है, जो कार्बन चक्र के विश्लेषण की गति को कई गुना (लगभग दस गुना) बढ़ा सकती है (चित्र 1 व 2)। यह दृष्टिकोण न केवल वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए महत्त्वपूर्ण है, बल्कि यह मानव समाज को कार्बन के विवेकपूर्ण और सतत उपयोग की दिशा भी प्रदान करता है।

कार्बन को उसके प्रभावों के आधार पर मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है:

1. नीला (Blue), हरा (Green) और नीला-हरा (Teal) कार्बन (लाभकारी या कार्बन-संग्रहण करने वाला कार्बन) – ये प्रकार पृथ्वी में कार्बन के शमन (Mitigation) और जब्ती (Sequestration) में सहायक होते हैं।
2. काला (Black), भूरा (Brown) और लाल (Red) कार्बन (हानिकारक या ऊष्मावर्धक कार्बन) – ये प्रकार पृथ्वी के ऊष्मा संतुलन को प्रभावित करते हैं तथा हिमखंडों के पिघलने की प्रक्रिया को तेज करते हैं।

प्रकृति में कार्बन के विभिन्न रंग

- **नीला कार्बन (Blue Carbon):**
  यह तटीय एवं समुद्री पारिस्थितिक तंत्रों में संचित कार्बन है, जैसे समुद्री घास, मैंग्रोव और लवणीय दलदलों में। इन्हें 'तटीय रक्षक' भी कहा जाता है।
- **हरा कार्बन (Green Carbon):**
  यह जंगलों, पेड़ों और अन्य स्थलीय पादपों में संचित कार्बन है। जंगलों को पृथ्वी के फेफड़े भी कहा जाता है क्योंकि वे CO_2 को अवशोषित करके प्रकाश-संश्लेषण के माध्यम से बायोमास में सुरक्षित करते हैं।
- **नीला-हरा कार्बन (Teal Carbon):**
  यह मीठे जल की आर्द्रभूमियों में पाया जाता है। यह प्रकार कार्बन पृथक्करण और शमन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि यह धीरे-धीरे कार्बन को अवशोषित और संचित करता है।
- **काला कार्बन (Black Carbon):**
  यह अधजले कार्बनिक पदार्थों के कारण उत्पन्न होता है। यह हिमखंडों की सतह के अल्बेडो को कम करता है और उनके पिघलने की गति को बढ़ा देता है। इसके स्रोतों में प्राकृतिक घटनाएं तथा जीवाश्म ईंधन का दहन शामिल है।
- **भूरा कार्बन (Brown Carbon):**
  यह वनस्पति और वृक्षों के जलने से उत्पन्न होता है। यह प्रकाश को अवशोषित करता है और वातावरण को गर्म करता है। जंगल की आग इसका एक प्रमुख स्रोत है।
- **लाल कार्बन (Red Carbon):**
  यह अपेक्षाकृत नया प्रकार है, जिसमें सूक्ष्मजीवों (विशेषकर शैवाल) द्वारा उत्पन्न लाल वर्णक बर्फ की सतह पर देखा जाता है। यह अल्बेडो को कम करता है और बर्फ के पिघलाव को बढ़ावा देता है।

नीला कार्बन: विस्तृत विश्लेषण

नीला कार्बन (Blue Carbon) तटीय पारिस्थितिक तंत्रों में संचित वह कार्बन है, जो वैश्विक कार्बन चक्र में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मैंग्रोव, समुद्री घास (सीग्रास) और ज्वारीय दलदली क्षेत्र जैसे तटीय पारिस्थितिक तंत्र न केवल प्राकृतिक कार्बन के प्रभावी भंडार के रूप में कार्य करते हैं, बल्कि तटीय कटाव से सुरक्षा प्रदान करने, समुद्री जैवविविधता को संरक्षित करने और स्थानीय समुदायों की आजीविका को सुदृढ़ करने में भी सहायक होते हैं।

अपनी असाधारण कार्बन शमन एवं अवशोषण क्षमताओं के कारण, नीला कार्बन आज नीति-निर्माताओं और वैज्ञानिकों द्वारा जलवायु परिवर्तन से निपटने के एक सशक्त एवं टिकाऊ समाधान के रूप में देखा जा रहा है। यदि इन पारिस्थितिक तंत्रों का संरक्षण और पुनर्स्थापन प्राथमिकता के आधार पर किया जाए, तो यह वैश्विक तापमान वृद्धि को नियंत्रित करने में एक महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

तटीय मैंग्रोव वन

मैंग्रोव वन CO_2 को नियंत्रित करने की अपनी क्षमता के कारण विशिष्ट माने जाते हैं। विश्वभर में लगभग 1.4×10^7 हेक्टेयर मैंग्रोव वनों में प्रतिदिन औसतन 1000 किलोग्राम CO_2 अवशोषित और 720 किलोग्राम O_2 उत्सर्जित होता है। इनकी जटिल जड़ें अवायवीय बैक्टीरिया (Anaerobic bacteria) का घर होती हैं, जो CO_2 को कम करने के लिए हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) का उपयोग करते हैं। यह उन्हें अत्यधिक प्रभावी कार्बन पृथक्करण क्षेत्र बनाता है।

चुनौतियाँ

बढ़ती जनसंख्या, तीव्र नगरीकरण, औद्योगिकीकरण और संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण हमारे तटीय पारिस्थितिक तंत्र पर भारी दबाव है। विशेषकर भारत के पूर्वी तट पर स्थित मैंग्रोव, समुद्री घास और ज्वारीय दलदली क्षेत्रों जैसे नीले कार्बन भंडार का लगभग 40% हिस्सा नष्ट हो चुका है। इसके प्रमुख कारण—कृषि भूमि का विस्तार, अनियंत्रित मत्स्य पालन, पर्यटन-आधारित अवसंरचनाओं का निर्माण और शहरी विकास। इसका सीधा प्रभाव तटीय जैवविविधता, प्राकृतिक कार्बन अवशोषण क्षमता और स्थानीय समुदायों की आजीविका पर पड़ा है।

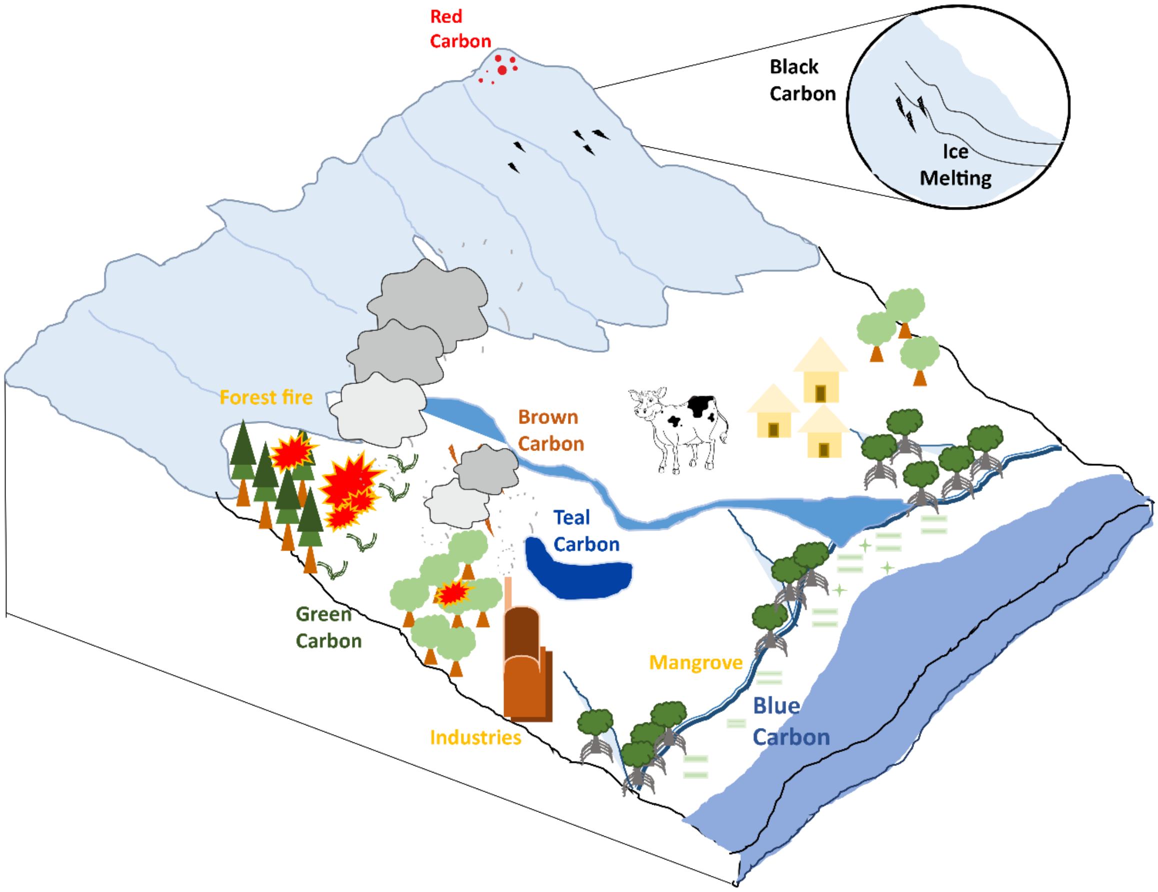

चित्र 2. पृथ्वी के पर्यावरण में विभिन्न प्रकार के कार्बन

संरक्षण की आवश्यकता

नीले कार्बन के प्रभावी संरक्षण हेतु मैंग्रोव पारिस्थितिकी तंत्र की कार्यप्रणाली और पारिस्थितिकीय सेवाओं को गहराई से समझना आवश्यक है। कार्बन-केंद्रित रणनीतियों में न केवल पारिस्थितिक कार्यों की रक्षा होनी चाहिए, बल्कि स्थानीय समुदायों की आजीविका और सांस्कृतिक मूल्यों को भी महत्व दिया जाना चाहिए। साथ ही ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने के लिए पुनर्स्थापन परियोजनाओं, सामुदायिक भागीदारी और सतत प्रबंधन की दिशा में प्रयासों को तेज करना होगा।

निष्कर्ष

यदि नीले कार्बन संसाधनों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सुदृढ़ नीति-निर्माण और स्थानीय सहभागिता के माध्यम से संरक्षित और प्रबंधित किया जाए, तो यह जलवायु परिवर्तन से निपटने का एक अत्यंत प्रभावी हथियार सिद्ध हो सकता है।

आनंद राजोरिया

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

रोग नहीं योग बड़ा है

योग जीवन के रूपांतरण की विशिष्ट कला(Art) एवं विज्ञान(Science) है। समाज के प्रायः समस्त वर्गों ने योग के अध्ययन और अभ्यास में रूचि ली है। गत कुछ वर्षों से योग अपने मात्र भारतीय स्वरूप से हटकर अंतर्राष्ट्रीयता की ओर, व्यक्तिगत साधन मात्र से हटकर वैज्ञानिकता की ओर अग्रसर हो रहा है। आज का बहुचर्चित योग अपने प्राचीन औपनिषिदिक स्वरूप से और अधिक व्यापक है जिसके कारण योग जन-जन तक अति सरल रूप में प्रसारित हो रहा है। योग की मूल धारा आध्यात्मिक है। यह तत्व ज्ञान एवं तत्वानुभूति का विज्ञान है। यह एक विशिष्ट प्रकार का विज्ञान है जो भौतिक जीवन व चेतना को एक साथ समेटे अग्रसर है तथा विज्ञान एवं अध्यात्म की खाई पर सेतुबंध का कार्य करता है। योग पर होने वाले अधिकाँश वैज्ञानिक शोधार्थियों का उद्देश्य भी योगाभ्यास की क्रिया – शरीरिकी (Anatomy) तथा चिकित्सीय प्रभावों का आकलन करना है। व्यावहारिक दृष्टि से योग मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक विकास का क्रम है। योग से मानसिक तनाव के निराकरणार्थ, शारीरिक रोगों के चिकित्सार्थ तथा शरीर-सौष्ठव परिवर्धनार्थ रूचि ली जा रही है। अल्प शक्ति की पूंजी लगाकर अधिक स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करना सिर्फ योगिक आसनों से ही संभव है। योगिक आसन करने से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की अनुभूति (उपलब्धि) स्वयं होती है। योग द्वारा ही हम जीवन को पूर्णतः अभिव्यक्त कर पाते हैं। योग एक ऐसी क्रिया है जो जीवन की वीणा के तार को सुव्यस्थित, संतुलित एवं सुनियोजित और अन्तः चेतना को झंकृत कर परमात्मा को मुग्ध करने वाला संगीत निकालती है।

आयुर्विज्ञान के मुताबिक़ सामान्य व्यक्ति बिना भोजन के 02 माह, बिना पानी पिए 06 दिनों तक तथा हवा के बिना 04 मिनट बाद ही परलोक सिधार जाता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सटीक श्वास लेने का मतलब है - अपनी श्वास को लयबद्धता में नियंत्रित करना। फेफड़ों (Lungs) को 30 डिग्री तापमान की, 75-80 प्रतिशत नमीं वाली तथा कीटाणु, धूल और अन्य प्रदूषणरहित हवा चाहिए। नासिका (Nose) यह सारी व्यवस्था करती है। शनै-शनै गहरा एवं लंबा श्वास लेना व छोड़ना फेफड़ों का व्यायाम है, इससे फेफड़े शक्तिशाली होते हैं। जितनी गहरी और लंबी श्वास होगी उतनी ही श्वास की गति कम होगी एवं व्यक्ति आरोग्यवान एवं दीर्घायु होगा। योगिक क्रियाओं संबंधी कुछ ज़रूरी जानकारी निम्न है -:

स्थान - नदी तट, स्वच्छ, शांत, एकांत, वृक्षों की हरियाली के समीप, बाग़, तालाब सर्वोत्तम है। समतल स्थल पर कम्बल/दरी/योगमैट बिछाकर आसन करने चाहिए।

समय - सूर्योदय से पूर्व का काल उत्तम है। ब्रह्ममुहूर्त में सजगता से आसन करने से दिन का श्रीगणेश ही शांति एवं आनंद से होता है। तेज धूप में आसन नहीं करने चाहिए।

श्वास -क्रिया - हम श्वास द्वारा काफी मात्रा में ऑक्सीजन अंदर लेते हैं; फेफड़ों में पहले-से विद्यमान हवा को शुद्ध करते हैं। फिर प्रश्वास द्वारा कार्बनडाइऑक्साइड एवं अन्य विषाक्त गैसों को बाहर फेंकते हैं। गलत श्वसन- क्रिया की वजह से यदि विषाक्त गैसें ज़्यादा देर तक फेफड़ों में रुकी रहती हैं तो ये फेफड़ों, हृदय और शरीर के समस्त अंगों को दुर्बल व विषाक्त बनाती हैं। आसन करते समय आगे झुकते हुए श्वास बाहर निकालते हैं, श्वास सदा नासिका से ही लेना और छोड़ना चाहिए, नाक से ली गई श्वास फ़िल्टर होकर अंदर जाती है व स्वर-तंत्र संतुलित रहता है। श्वास-गति हमेशा लयबद्ध रखनी चाहिए इससे कोशिकाओं का पुनर्नवीनीकरण हो जाता है, मानसिक एकाग्रता बढ़ती है।

अंग-विन्यास - आसन करते समय अंग-संचालन क्रिया पूर्णरूपेण लयबद्ध हो; अधिक तनाव, खिचाव व झटके के साथ आसन नहीं करने चाहिए; शनै -शनै ही लचीलापन (Flexibility) आता है।

आसनों की अवधि - स्वयं की सामर्थ्यानुसार उसी मुद्रा में रूककर आसन करने चाहिए ,शुरुआत में 30-40 सेकंड उस अवस्था में रहना चाहिए; रोग-विशेष में 10 मिनट तक।

निषेध - अत्यधिक दुर्बलता, चक्कर आने पर, ऋतुस्राव, गर्भावस्था में आसनों से परहेज़ करें; प्रसूति के छः महीने बाद आसन कर सकते हैं, यदि करना आवश्यक हो, तो रोग-चिकित्सा विशेषज्ञ के संरक्षण करने चाहिए। उच्च रक्त-चाप व हृदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों को धीरे-धीरे प्राणायाम (कपाल-भाति, अनुलोम-विलोम) अवश्य करना चाहिए।

सही आकलन - आसनोपरांत यदि तन-मन हल्का हो, प्रफुल्लता, शांति महसूस हो तो समझें आसन सटीकता से किया जा रहा है; यदि थकान, अकड़न, जकड़न, सिरदर्द आदि परिलक्षित हों तो समझें कि आसन ठीक से नहीं हो रहे हैं; परंतु प्रारंभिक चरण में हल्की थकान अवश्यंभावी है।

आहार ही उपचार है - योगिक क्रियाएं खाली पेट ही करें, आवश्यकतानुसार पेय लेने के एक घंटे उपरांत तथा पूर्ण आहार लेने के पांच घंटे बाद योगिक क्रियाएं की जा सकती हैं। योगाभ्यास के 20 मिनट बाद गाय का घी एक चम्मच चुटकी-भर सेंधा नमक व गुनगुना दो घूंट जल, कुछ देर बाद अंकुरित अन्न, आवश्यक पेय तथा 45 मिनट बाद पूर्ण आहार ले सकते हैं, सुबह दही, दोपहर छाछ व रात्रि में दुग्ध पान श्रेयस्कर है, खड़े होकर पानी पीना, रात्रि में दही, छाछ खीरा आदि के सेवन से भी बचें तो अच्छा है।

योगाभ्यास के मूल- सिद्धांत - ध्यानपूर्वक किए हुए प्राणायाम से हम 99-100 प्रतिशत रोगों का पूर्ण समाधान कर सकते हैं। सम्यक विधि, नियत समय, एकाग्रता व निरंतरता पूर्वक किया गया योगभ्यास हमारे व्यक्तित्व की पूर्ण अभिव्यक्ति (Complete Expression), पूर्ण संतुलन (Complete Balance), पूर्ण जागरण (Complete Awakening) तथा पूर्ण दिव्य रूपांतरण (Complete Divine Transformation)

करता है; यह सिम्पटोमेटिक (Symptomatic) के साथ-साथ सिस्टेमेटिक (Systematic) उपचार भी है, इससे हमें तात्कालिक एवं दीर्घकालिक समाधान प्राप्त होता है। जीवन-शैली जनित, वंशानुगत और असाध्य रोगों में योगभ्यास की अवधि बढ़ाना श्रेयस्कर है तथा रोग से निरोग होने पर एक -डेढ़ घंटे का योगभ्यास भी पर्याप्त है।

समस्त रोगों की एक मात्र वैज्ञानिक, निर्विवाद ,प्रामाणिक व प्रभावशाली अनुभूति सर्वश्रेष्ठ औषधि प्राणायाम और आसन ही हैं। प्राणायाम व खाली पेट तिल का तेल सेवन करने से लचीलापन लाने के उपरांत निम्न रोगों में आसनों का अभ्यास सामर्थ्यानुसार करना चाहिए :-

मोटापा - भुजंगासन, शलभासन, पादवृत्तासन, मर्कटासन, योगमुद्रासन, उत्तानपादासन, चक्रासन, धनुरासन, पवनमुक्तासन, नौकासन, चक्की-आसन

कब्ज़ - योगमुद्रासन, मंडूकासन, गौमुखासन, हलासन, शलभासन, पवनमुक्तासन, वक्रासन, मर्कटासन, नौकासन, मत्स्यासन, मूल-बंध

गैस - योगमुद्रासन, मंडूकासन, गौमुखासन, हलासन, पवनमुक्तासन, वक्रासन, मर्कटासन

मधुमेह (डायबिटीज) - शशकासन, सर्वांगासन, पादांगुष्ठानासा स्पर्शासन, मंडूकासन, वक्रासन, योगमुद्रासन, नौकासन

मासिक-धर्म व अनियंत्रित ऋतुस्राव - मूल बंध, कंधरासन, योगमुद्रासन, मंडूकासन, गौमुखासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन

घुटने का दर्द - सूक्ष्म व्यायाम, वक्रासन,यथा शक्ति उल्टा दौड़ना व चलना, भुजंगासन

किडनी – धनुरासन, भुजंगासन, सर्वांगासन, योगमुद्रासन, हलासन

कैन्सर - योग-निद्रासन, शवासन, वज्रासन, मंडूकासन, शशकासन,

नेत्र विकार - शीर्षासन, सर्वांगासन, दृष्टि वर्धन योगिक अभ्यास, त्राटक करना, कपाल-भाति करते-करते आँख का एक्यूप्रेसर पॉइंट 10 मिनट दबाना

'राशन कम और आसन ज़्यादा' तथा 'आहार भी औषधि है' और 'उपवास ही उपचार है' मूलमंत्र को आत्मसात करते हुए मैंने स्वयं दाहिने पैर की गठिया (Arthiritis) (पैर में रिवॉल्वर की गोली लगने के कारण हुई), पथरी, उच्च रक्त-चाप से पूर्णरूपेण निजात पाई है तथा एक घंटे से ज़्यादा कपालभाति करके तथा अनुलोम- विलोम, त्राटक, एक्यूप्रेस्सर पॉइंट दबाकर 40 वर्षों से लगा रहा आँखों का चश्मा भी उतार दिया है, यह अद्भुत और अकल्पनीय है। कह सकता हूँ कि अप्रतिम लाभ प्राप्त होते हैं।

अशोक कुमार

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

प्रांतीय ईर्ष्या को दूर करने में जितनी सहायता हिंदी प्रचार से मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीज से नहीं मिल सकती।

—नेताजी सुभाष चंद्र बोस

शोध सार

राजस्थान के जैसलमेर क्षेत्र में परागकणों और जीवाश्मों के माध्यम से भूवैज्ञानिक अतीत की परतों का अध्ययन

राजस्थान का जैसलमेर बेसिन मेसोजोइक युग की एक महत्वपूर्ण भूवैज्ञानिक संरचना है, जिसकी अवसादी अनुक्रम प्रारंभिक जुरासिक से लेकर प्रारंभिक-मध्य एल्बियन काल तक फैली हुई हैं। इस अध्ययन में इस बेसिन की पाँच प्रमुख लिथोस्ट्रैटिग्राफिक संरचनाओं — लाठी, जैसलमेर, भदासर, परिवार और हाबूर — का विश्लेषण किया गया है। कुल 14 स्तरीकृत खंडों से शैल नमूने, परागकण , पैलीनोफैसिज़ (palynofacies) और पौधों के मेगाफॉसिल्स एकत्र किए गए हैं। तमिरा राय मंदिर (लाठी फ़ोर्मेशन), भदासर रिज और मोकल नाला (भदासर फ़ोर्मेशन), तथा सेरावा (परिवार फ़ोर्मेशन) खंड विशेष रूप से वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पाए गए हैं, जहाँ से उच्च गुणवत्ता के पैलीनोलॉजिकल और वनस्पति जीवाश्म डेटा प्राप्त हुए।

पैलीनोफैसिज़ विश्लेषण के आधार पर, इन खंडों में दो प्रमुख संघटन पीए-I और पीए-II की पहचान की गई। ये संघटन मुख्य रूप से अपारदर्शी फाइटोक्लास्ट्स (opaque phytoclasts) की प्रधानता और अमॉर्फस कार्बनिक पदार्थों (amorphous organic matter) की न्यूनता द्वारा चिह्नित हैं, जो सीमांत समुद्री अवसादन परिवेश में स्थलीय इनपुट की प्रमुख भूमिका को दर्शाते हैं। मोकल नाला खंड का PA-II संघटन संरक्षित परागकणों, अमॉर्फस पदार्थों और ट्रेस फॉसिल्स की उपस्थिति के आधार पर निम्न ऊर्जा वाले उथले समुद्री अवसादन वातावरण की पुष्टि करता है (चित्र 1)।

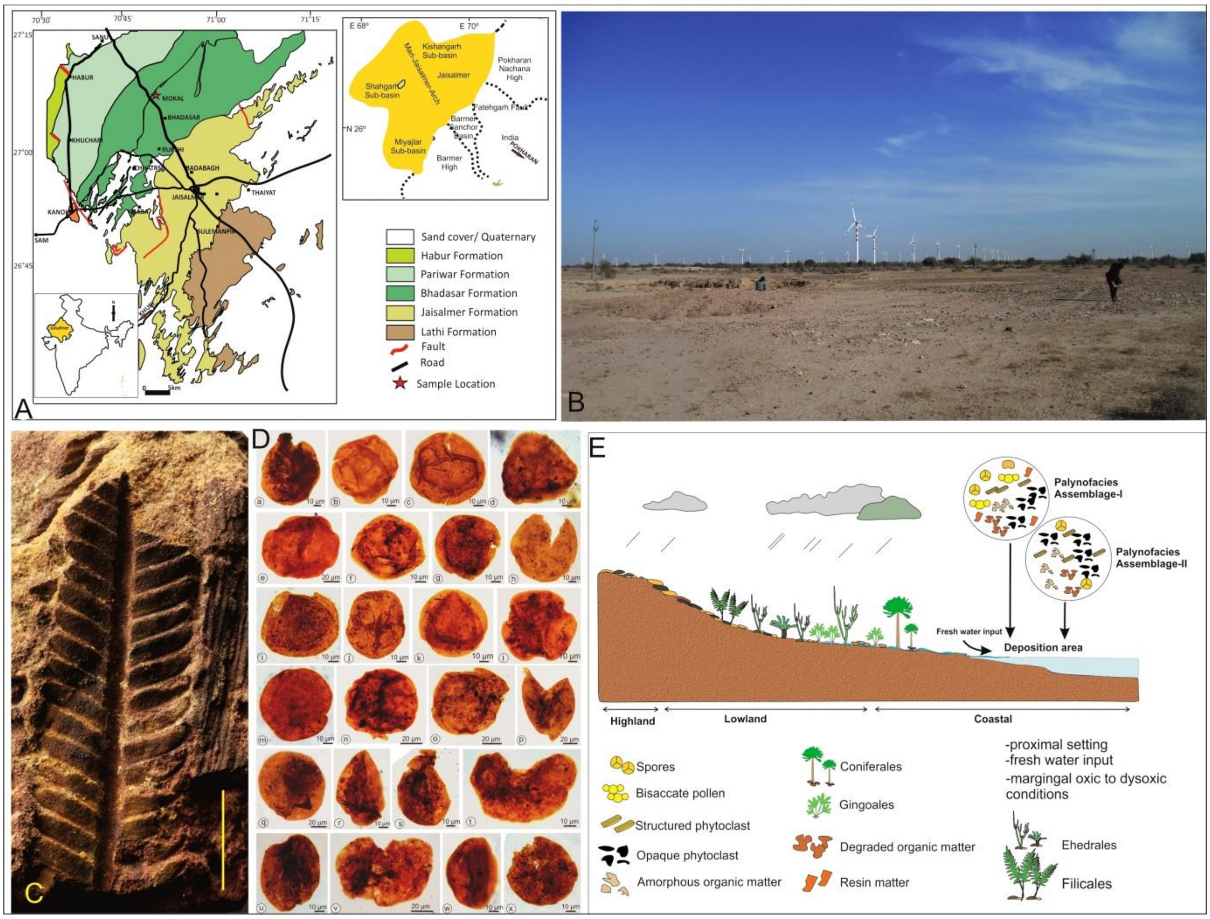

चित्र 1 : A) जैसलमेर बेसिन का भूवैज्ञानिक मानचित्र, B) सेरावा गाँव के पास पौधों के जीवाश्मों की स्थल, C) टिलोफिलम कटचेंस पौधे का जीवाश्म, D) जैसलमेर बेसिन में अभिलिखित परागकणों की विभिन्न प्रजातियाँ, E) जैसलमेर बेसिन के जुरासिक काल के दौरान पुराअवसादी परिस्थितियों को दर्शाने वाला एक काल्पनिक मॉडल।

भदासर रिज और मोकल नाला खंडों से कुल 41 परागकण प्रजातियों की पहचान की गई है, जिनमें से 33 प्रजातियाँ पहली बार लेट टिथोनियन–निओकोमियन अनुक्रम से दर्ज की गई हैं। महत्वपूर्ण टैक्सा में *अरौकेरियासाइट्स ऑस्ट्रेलिस, कैलियालैस्पोराइट्स* समूह की विभिन्न प्रजातियाँ, *गौबिनीस्पोरा इंडिका*, और *पोडोकार्पिडाइट्स कैनाडेंसिस* शामिल हैं। *गौबिनीस्पोरा इंडिका,* की उपस्थिति से इस टैक्सां (taxon) की आयु सीमा को विस्तारित करते हुए अब इसे प्रारंभिक ट्राइसिक से लेकर निओकोमियन तक माना गया है, जो पूर्व में केवल डामोदर बेसिन के प्रारंभिक–मध्य ट्राइसिक अनुक्रम से ज्ञात था।

परागकणों की जैव विविधता से संकेत मिलता है कि उस समय का जलवायु गर्म और आर्द्र था, जिसमें तटीय क्षेत्र मुख्यतः कोणधारी वनस्पतियों से आच्छादित थे। साथ ही, कुछ दुर्लभ परागकण प्रकार जैसे *पोडोकार्पिडाइट्स* शुष्क उच्चभूमि वनस्पति की उपस्थिति का संकेत देते हैं।

पौधों के मेगाफॉसिल अध्ययन में विलियम्सोनियेसी कुल, टिलोफिलम वंश, तथा दो प्रजातियाँ — *टिलोफिलम कटचेंस* और *टिलोफिलम एक्यूटिफोलियम* — की पहचान की गई। इनमें *टिलोफिलम कटचेंस* की रिपोर्ट पहली बार परिवार फ़ोर्मेशन से हुई है। *टिलोफिलम* के व्यापक वितरण के साथ-साथ जीवाश्मकृत लकड़ी और बायोटर्बेशन के प्रमाण, विशेष रूप से ट्रेस फॉसिल्स की उपस्थिति, उस काल में जैसलमेर बेसिन में हरित, तटीय, निम्नभूमि वनों की उपस्थिति की पुष्टि करते हैं।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जैसलमेर बेसिन की मेसोजोइक परतें न केवल भूवैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे प्राचीन पर्यावरण, जलवायु और वनस्पति की विस्तृत जानकारी भी प्रदान करती हैं। यह शोध भारतीय उपमहाद्वीप की भूवैज्ञानिक एवं पर्यावरणीय इतिहास को समझने में एक महत्वपूर्ण योगदान देता है।

संबन्धित शोध पत्रों का उद्धरण

दास, एन., कुमार, आर., पांडे, बी., कुमार, के. और भट्टाचार्य, डी., 2021. पश्चिमी भारत के जैसलमेर बेसिन में परिवार संरचना के नए खोजे गए अनुक्रम से पादप जीवाश्मों का अभिलेख। हिस्टॉरिकल बयोलॉजी, 33(12), 3281-3290।

कुमार, आर., पांडे, बी., दास, एन., अग्रवाल, एन., मूर्ति, एस., कुमार, के. और पाठक, डी.बी., 2024. जैसलमेर बेसिन (भारत) के लेट टिथोनियन (लेट जुरासिक) पैलिनोलॉजिकल रिकॉर्ड। हिस्टॉरिकल बयोलॉजी, 1-13.

डॉ. राज कुमार और डॉ. नीलम दास

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

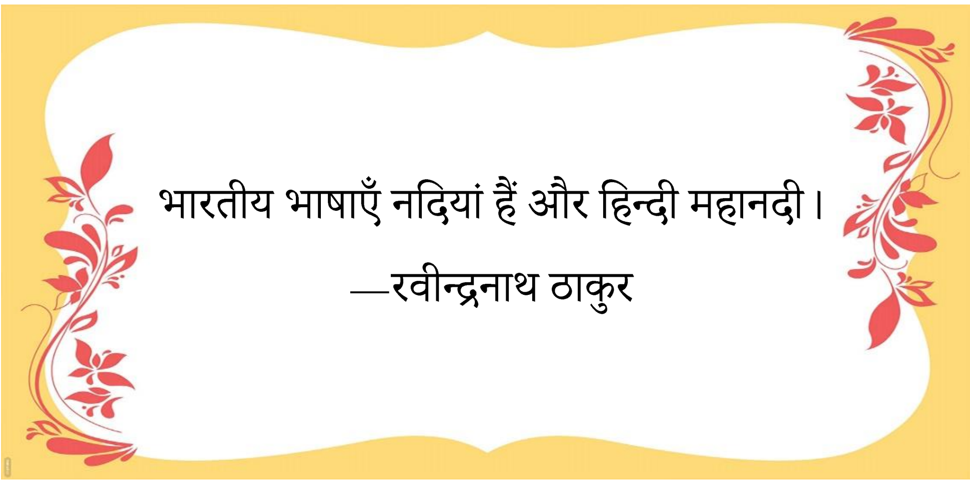

मध्य इओसीन जलवायु उत्कर्ष (MECO) के दौरान उष्णकटिबंधीय वर्षावनों की पारिस्थितिकीय प्रतिक्रिया: परागविज्ञान साक्ष्य द्वारा कच्छ बेसिन से ग्लोबल वॉर्मिंग का पुरातन अध्याय

भूवैज्ञानिक इतिहास में वैश्विक ऊष्मीकरण (ग्लोबल वार्मिंग) की घटनाएं यह समझने का एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं कि पृथ्वी की पारिस्थितिकीय प्रणालियां उच्च वायुमंडलीय CO_2 स्तरों और जलवायु परिवर्तनों पर कैसे प्रतिक्रिया देती हैं। मध्य इओसीन जलवायु उत्कर्ष (Middle Eocene Climatic Optimum - MECO) एक ऐसी ही अल्पकालिक, परंतु सघन ऊष्मीकरण घटना है, जो लगभग 40 मिलियन वर्ष पहले घटी थी। यह घटना पृथ्वी के हरितगृह (greenhouse) अवस्था से हिमगृह (icehouse) की ओर संक्रमण के दौरान हुई थी और इसकी अवधि लगभग 4 लाख वर्ष मानी जाती है। MECO को मुख्यतः समुद्री अभिलेखों से पहचाना गया है, विशेषकर दक्षिणी महासागर और अन्य समुद्री क्षेत्रों से। लेकिन, इसके स्थलीय प्रभावों पर, विशेष रूप से उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में, अभी तक कम ध्यान दिया गया है।

यह अध्ययन इस कमी को पूरा करने का प्रयास है, जिसमें भारत के पश्चिमी कच्छ बेसिन की हरुडी फ़ोर्मेशन (Harudi Formation) से प्राप्त परागकण और कार्बन समस्थानिक आंकड़ों के माध्यम से इस घटना के दौरान उष्णकटिबंधीय वर्षावनों की प्रतिक्रिया का विश्लेषण कि या गया है। हरुडी संरचना, जो जीवाश्मों और तलछटी अनुक्रमों से समृद्ध है, MECO के दौरान वनस्पति और पर्यावरणीय गतिशीलताओं को समझने के लिए एक अनूठा अवसर प्रदान करती है। यह अध्ययन उच्च-रिज़ॉल्यूशन परागकण विश्लेषण और स्थिर कार्बन समस्थानिक ($\delta^{13}C$) डेटा को जोड़ता है ताकि उस काल के पारिस्थितिकीय परिदृश्य को पुनर्निर्मित किया जा सके।

भूगर्भीय और स्तरानुक्रमिक संदर्भ से कच्छ बेसिन भारत के पश्चिमी भाग में स्थित एक प्राचीन दरार घाटी (rift basin) है, जहाँ मेसोज़ोइक से लेकर सेनोज़ोइक तक की तलछटी अनुक्रम अच्छी तरह से संरक्षित हैं। इसमें स्थित हरुडी संरचना मध्य इओसीन (Bartonian) काल की मानी जाती है और इसमें लगभग 10 मीटर मोटी मिश्रित सिलिकिक्लास्टिक और चूना पत्थर के निक्षेप पाये जाती हैं, जिनमें शेल, कोकिना, लिग्नाइट युक्त मृदा आदि शामिल हैं। यह संरचना विभिन्न जीवाश्म समूहों जैसे फोरामिनिफेरा और नैनोफॉसिल्स के आधार पर भली-भाँति दिनांकित है और इसे वैश्विक MECO कालक्रम से जोड़ा जा सकता है।

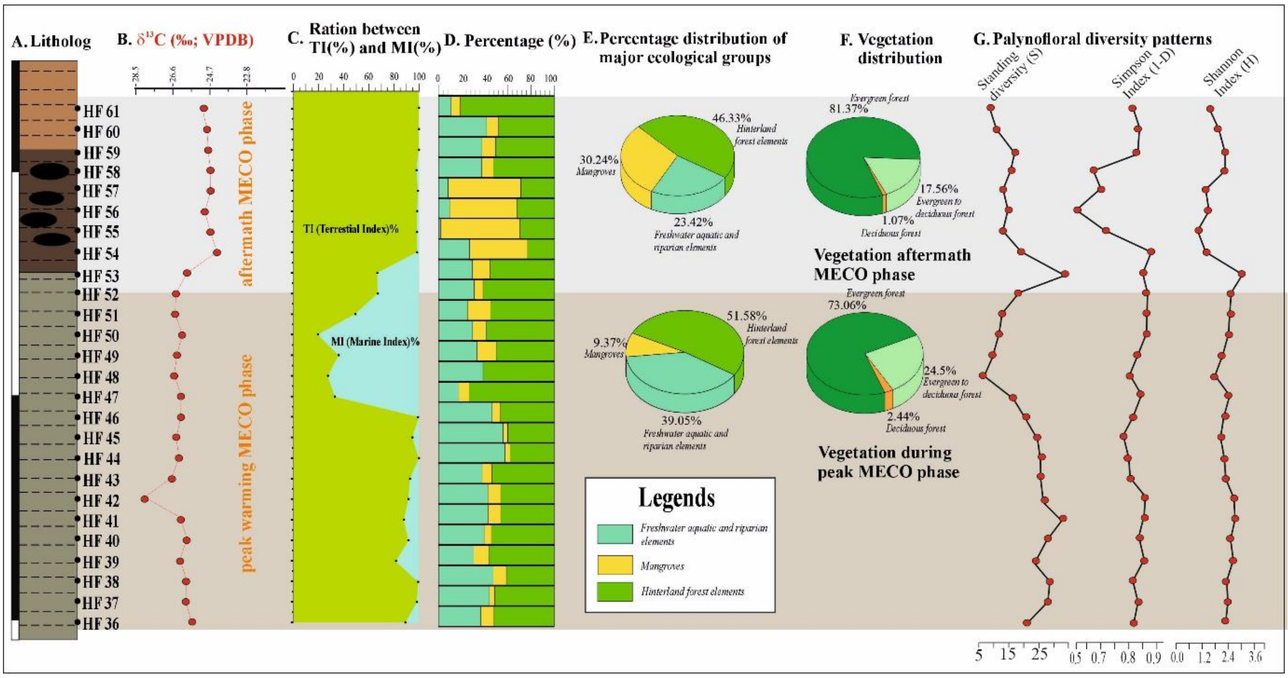

चित्र 1. संयुक्त चित्र दर्शाता है - (ए) पैलिनोलॉजिकल रूप से उत्पादक नमूनों से चिह्नित लिथोकॉलम; (बी) $\delta^{13}C$ प्रोफ़ाइल जो उच्चतम वार्मिंग MECO और उसके बाद के चरण को दर्शाता है; (सी) स्थलीय सूचकांक (TI%) और समुद्री सूचकांक (MI%) रुझान; (डी और ई) प्रमुख पारिस्थितिक समूहों के वितरण पैटर्न को दर्शाने वाले आरेख, (एफ) वन प्रकारों के वितरण पैटर्न को दर्शाने वाले पाई आरेख, और (जी) उच्चतम वार्मिंग और उसके बाद के MECO चरण के दौरान पराग विविधता सूचकांक।

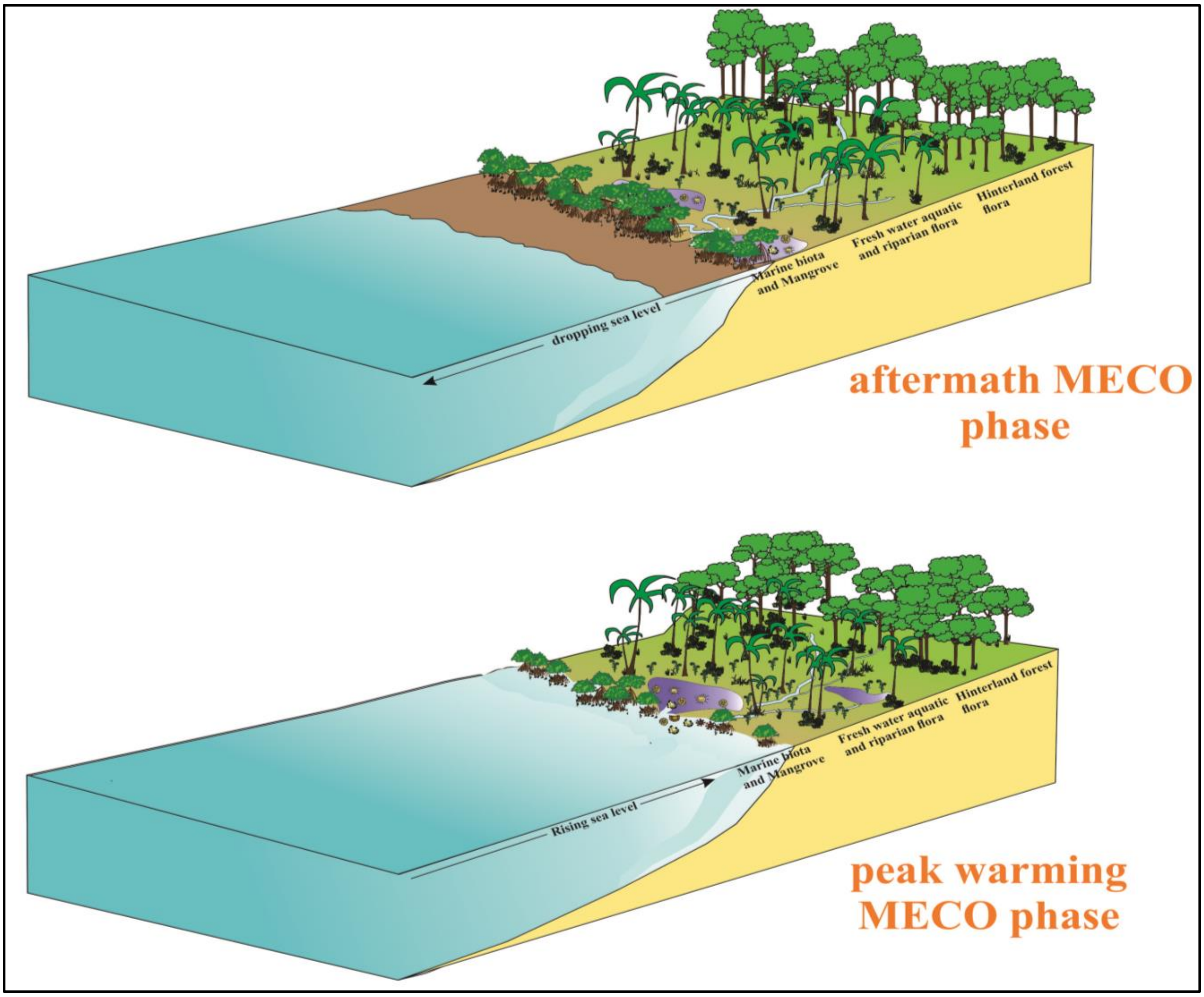

चित्र 2. गुजरात के कच्छ बेसिन में अध्ययन किए गए मध्य इओसीन हरुडी फ़ोर्मोशन अनुक्रम की पुरापारिस्थितिकीय और पुरानिक्षेपणीय स्थितियों में परिवर्तनों को दर्शाने वाला एक संकल्पनात्मक मॉडल।

अध्ययन की रूपरेखा और कार्यप्रणाली में, हरुडी संरचना की लगभग 11 मीटर मोटी अनुक्रम से 10 सेंटीमीटर के अंतराल पर कुल 100 नमूने एकत्रित किए गए। इनमें से 26 नमूने परागकण विश्लेषण के लिए उत्पादक पाए गए। नमूनों से परागकण, बीजाणु और अन्य सूक्ष्म जीवाश्म निकाले गए तथा कुल 76 वंश और 82 प्रजातियों की पहचान की गई। कार्बन समस्थानिक विश्लेषण में जैविक कार्बन के $\delta^{13}C$ मानों का अध्ययन किया गया और इन मानों का उपयोग वैश्विक कार्बन चक्र में MECO जैसे व्यवधानों की पहचान हेतु किया गया।

परिणामस्वरूप, $\delta^{13}C$ मान –24.3‰ से –28.1‰ के बीच पाए गए, जिनमें लगभग 2.5‰ का स्पष्ट ऋणात्मक विचलन (CIE) दर्ज किया गया। यह विचलन MECO की चरम ऊष्मीकरण अवस्था के अनुरूप है, जिसके बाद $\delta^{13}C$ मान धीरे-धीरे सामान्य स्तर पर लौटते हैं। यह परिवर्तन वैश्विक स्तर पर अन्य MECO अभिलेखों से मेल खाता है और यह संकेत देता है कि उस समय वातावरण में ^{12}C युक्त CO_2 की बड़ी मात्रा का प्रवाह हुआ था।

परागकण संयोजन में कुल 82 प्रजातियां पाई गईं, जिनमें आवृतबीजी (58 प्रजातियां) — प्रमुख रूप से ऐरेसी (Araceae), ऐरिकेसी (Arecaceae) और बोम्बेकेसी (Bombacaceae), पर्णबीजी (12 प्रजातियां), डाइनोफ्लैजेलेट सिस्ट (12 प्रजातियां, जो समुद्री प्रभाव का संकेत देती हैं), और शैवाल व कवक अवशेष शामिल थे। सांख्यिकीय रूप से आवृतबीजी परागकण सबसे अधिक पाए गए, जिनकी मात्रा 51% से 67% के बीच थी।

विश्लेषण के आधार पर दो प्रमुख पेलिनोज़ोन (Palynoassemblage Zones) पहचाने गए। पेलिनोज़ोन A, जो MECO की ऊष्मीकरण मुख्य अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है, में फ़र्न जैसे पर्णबीजियों (*लाइगोड़ियम* (*Lygodium*), *पोल्यस्पोराइटिस* (*Polypodiisporites*) की प्रचुरता, ऐरेसी (Araceae) परिवार के परागकण, डाइनोफ्लैजेलेट्स की अधिकता (समुद्री जल के अतिक्रमण का संकेत), कुछ पर्णपाती

(deciduous) तत्वों की उपस्थिति (जो वर्षा में ऋतुवत्ता की ओर संकेत करती है) और उच्चतम जैव विविधता पाई गई।

पेलिनोज़ोन B, जो MECO के बाद की पुनर्प्राप्ति अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है, में सदाबहार उष्णकटिबंधीय वनस्पतियों की पुनः प्रधानता, मैन्ग्रोव वनस्पतियों की बहाली, डाइनोफ्लैजेलेट्स की उपस्थिति में कमी और कुछ नमूनों में विविधता में गिरावट देखी गई।

शोध में पाया गया कि MECO से पहले अत्यधिक आर्द्र और स्थिर जलवायु में सदाबहार वर्षावन और मैन्ग्रोव फल-फूल रहे थे। MECO के दौरान तापमान और CO_2 में वृद्धि ने पारिस्थितिकीय संतुलन बिगाड़ा, वर्षा ऋतुवत्तामय (seasonal) हुई, मैन्ग्रोव घटे और शैवाल की वृद्धि हुई, जबकि पादप विविधता उच्च रही। MECO के बाद पर्यावरणीय स्थिरता की वापसी के साथ वनस्पति ने तेजी से पुनरुत्थान किया, सदाबहार तत्वों और मैन्ग्रोव की बहाली हुई, हालांकि विविधता कुछ नमूनों में कम रही (चित्र 1-2)।

अध्ययन के अनुसार, उष्णकटिबंधीय वर्षावन जलवायु बदलाव के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं, परंतु उनके भीतर उच्च तन्यकता (resilience) है और अनुकूल परिस्थितियों में वे तेजी से पुनर्जीवित हो सकते हैं। MECO जैसी घटनाएं यह संकेत देती हैं कि वर्तमान मानवजनित ऊष्मीकरण में भी इन पारिस्थितिक प्रणालियों पर गहरा प्रभाव संभव है। अंततः , यह अध्ययन दर्शाता है कि मध्य इओसीन MECO घटना ने पश्चिमी भारत के उष्णकटिबंधीय पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित किया, वर्षा प्रणाली में ऋतुवत्ता लाई और वनस्पति संरचना में परिवर्तन किया, किंतु स्थिर वातावरण की वापसी के साथ सदाबहार वनस्पतियों ने पुनः प्रभुत्व स्थापित किया।

संबन्धित शोध पत्रों का उद्धरण - देवरी, एन., वर्मा, पी.*, अग्रवाल, एस., ठक्कर, एम. जी., और पटेल, जे. एम. (2025)। मध्य इओसीन जलवायु उत्कर्ष (MECO) के दौरान उष्णकटिबंधीय वर्षावनों की तापमान वृद्धि पर प्रतिक्रिया: पश्चिमी भारत के कच्छ बेसिन के बार्टोनियन निक्षेपों के पैलिनोलॉजिकल रिकॉर्ड से साक्ष्य। इवॉल्विंग अर्थ, 100065. https://doi.org/10.1016/j.eve.2025.100065.

डॉ. पूनम वर्मा और नाज़िम देवरी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

राष्ट्र की एकता को यदि बनाकर रखा जा सकता
है तो उसका माध्यम हिन्दी ही हो सकता है।

—सुब्रह्मण्यम भारती

पश्चिम भूमध्यरेखीय हिंद महासागर में गत ~412 हजार वर्षों के दौरान मिश्रित परत की जलगतिकी और उत्पादकता में परिवर्तन: प्लवक फोरामिनिफेरा के जीवाश्मों के समस्थानिक आंकड़ों के आधार पर अध्ययन

भूमध्यरेखीय हिंद महासागर क्षेत्र सबसे अधिक सौर विकिरण प्राप्त करता है और इसे व्यापारिक पवनों (Trade winds) की तीव्रता, वैश्विक वॉकर परिसंचरण और टेली-कनेक्शन जैसे अनेक कारक प्रभावित करते हैं, जिससे यह प्राचीन मानसून परिवर्तनशीलता को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बन जाता है। इस अध्ययन में, हम पश्चिम भूमध्यरेखीय हिंद महासागर (WEIO) से प्राप्त कोर VM29-045PC में पाई गई प्लवक फोरामिनिफेरा *Globigerinoides ruber* (*G. ruber*) के जीवाश्मों का विश्लेषण करते हैं, ताकि पिछले ~412 हजार वर्षों में मिश्रित परत की जलगतिकी और समुद्री उत्पादकता में हुए परिवर्तनों का अध्ययन किया जा सके। इस कोर की कालक्रम (Chronology) पाँच रेडियोकार्बन (^{14}C) तिथियों के आधार पर और वैश्विक बेंथिक फोरामिनिफेरा के समस्थानिक आंकड़ों (LR04) के साथ इसोटैक (isostack) करके तैयार की गई है।

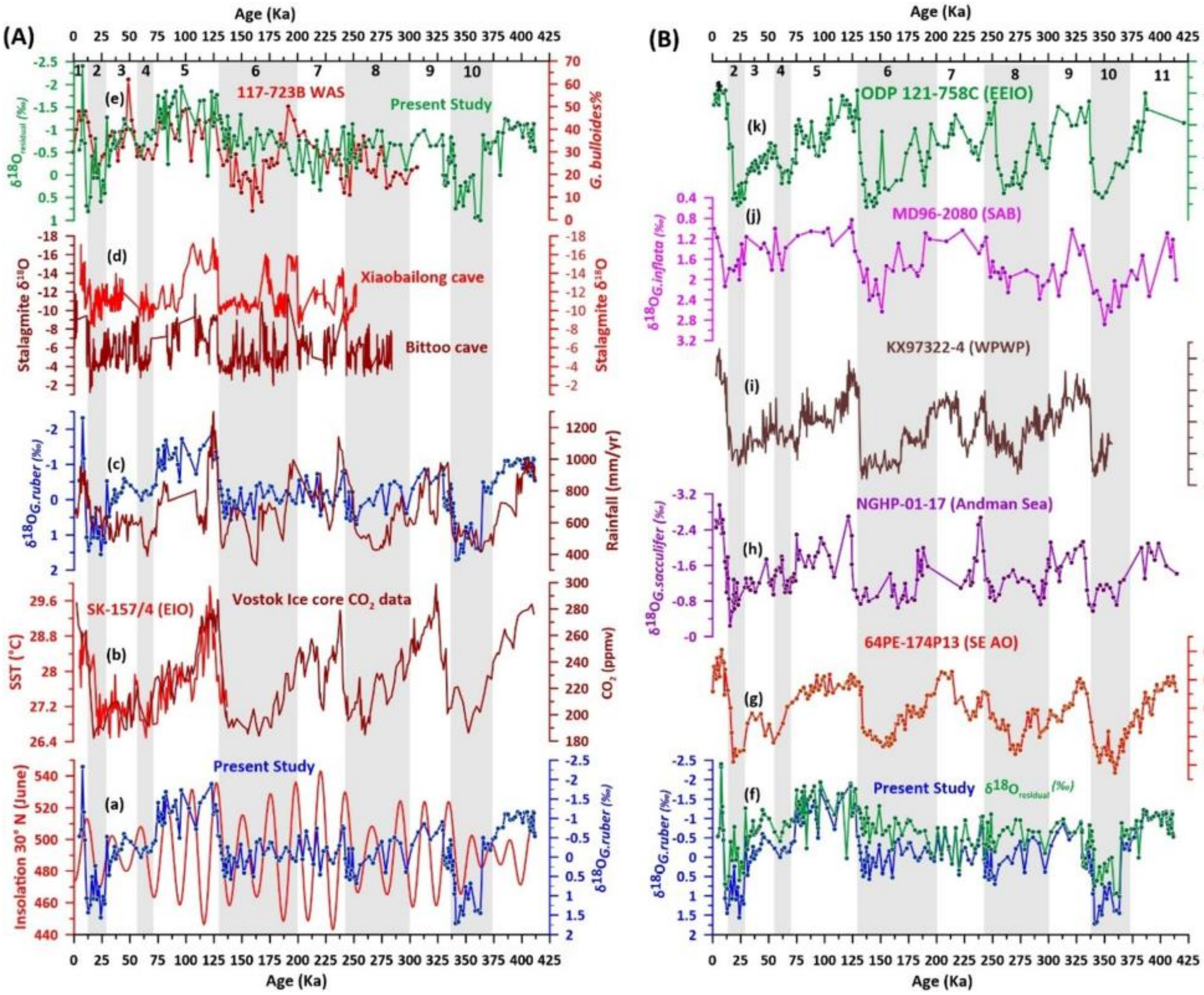

चित्र 1. (ए) कोर VM29-045PC में $\delta^{18}O_{G.ruber}$ (आकार सीमा 250-350 μm) के डाउन कोर परिवर्तन और परिणामों की तुलना, (बी) $\delta^{18}O$ का विभिन्न भारतीय, अटलांटिक और प्रशांत महासागर बेसिनों के रिकॉर्ड (अधिक जानकारी हेतु https://doi.org/10.1007/s12040-025-02520-6 खोलें)

हमारे अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि समुद्री समस्थानिक चरणों (Marine Isotopic Stages - MIS) 11, 5 और 1 के दौरान *Globigerinoides ruber* में $\delta^{18}O$ मान कम दर्ज किए गए। यह इस बात का संकेत है कि उन अवधियों में अधिक वर्षा हुई और भारतीय ग्रीष्मकालीन

मानसून (Indian Summer Monsoon - ISM) शक्तिशाली था। इसके विपरीत, MIS 10, MIS 8, MIS 6, MIS 4 और MIS 2 में उच्च $\delta^{18}O$ मान दर्ज किए गए, जो ठंडे और शुष्क कालों की ओर संकेत करते हैं जिनमें शीतकालीन मानसून तीव्र था।

ये निष्कर्ष स्थल-आधारित वर्षा रिकॉर्ड्स से तुलना करके और भी मज़बूत होते हैं, जो ISM की इसी प्रकार की परिवर्तनशीलता को दर्शाते हैं। $\delta^{18}O$ *G.ruber* की तुलना अन्य महासागरों के रिकॉर्ड्स से करने पर स्पष्ट होता है कि MIS 10 और MIS 2 ने MIS 6 और MIS 8 की तुलना में अपेक्षाकृत ठंडी और शुष्क स्थितियों का अनुभव किया है (चित्र 1), जिसे क्षेत्रीय प्रभावों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। $\delta^{18}O_{G.ruber}$ के साथ-साथ $\delta^{13}C_{G.ruber}$ रिकॉर्ड, वैश्विक रिकॉर्ड्स से अच्छी संगति दर्शाते हैं। MIS 8 से MIS 6 के बीच $\delta^{13}C_{G.ruber}$ में गिरावट पाई गई, जो ऊपरी जलस्तर में प्रकाश संश्लेषण आधारित प्राथमिक उत्पादकता में कमी का संकेत देती है। वहीं, MIS 10 और MIS 3 से MIS 1 के दौरान $\delta^{13}C_{G.ruber}$ के बढ़े हुए मान अधिक उत्पादकता की ओर संकेत करते हैं।

शोध पत्र का उद्धरण व लिंक- कुमार, बी., गोविल, पी., अग्रवाल, एस., कुमार, पी., वर्मा, डी. और खान, एच., 2025. पिछले लगभग 412,000 वर्षों के दौरान प्लैंक्टिक फोरामिनिफेरा ग्लोबिगेरिनोइड्स रूबर के समस्थानिक अभिलेखों से अनुमानित पश्चिमी भूमध्यरेखीय हिंद महासागर की सतह के जलविज्ञानीय परिवर्तन। जर्नल ऑफ अर्थ सिस्टम साइंस, 134(1), 58। https://doi.org/10.1007/s12040-025-02520-6

बृजेश कुमार एवं पवन गोविल

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

हिन्दी भाषा कि उन्नति का अर्थ है राष्ट्र और गण कि उन्नति।

— महात्मा गांधी

अंतिम हिमानी आधिकतम (लास्ट ग्लेसियल मैक्सिमम-LGM) के पश्चात मध्य भारतीय के कोर मानसून क्षेत्र में वनस्पति गतिकी तथा मानसूनी जलवायु परिवर्तन

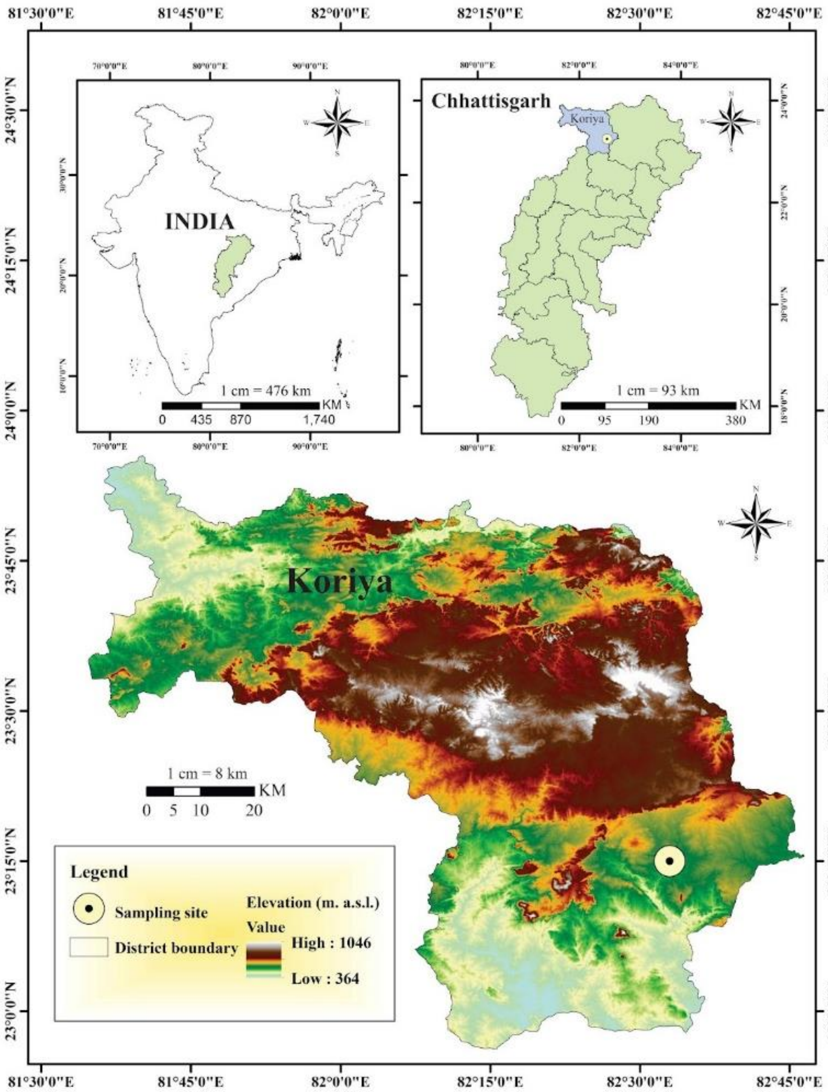

चित्र 1. छत्तीसगढ़ राज्य को दर्शाता भारत का भौगोलिक मानचित्र (ऊपरी बायाँ पैनल), छत्तीसगढ़ राज्य का भौगोलिक मानचित्र, कोरिया जिले को दर्शाता मध्य भारत (ऊपरी दायाँ पैनल), शटल रडार टोपोग्राफिक मिशन (SRTM) और कोरिया जिले में अध्ययन स्थल को दर्शाता डिजिटल एलिवेशन मॉडल (DEM): निचला पैनल। चित्र 1 का स्रोत: चित्र 1 को ArcGIS 10.3 का उपयोग करके बनाया गया है।

पूर्व के वनस्पति इतिहास और समकालीन मानसूनी जलवायु परिवर्तनों के बारे में हमारा ज्ञान मुख्य रूप से पुरावनस्पतीय , पुरपरिस्थितिकीय तथा पुराजलवायवीय अभिलेखों पर आधारित है। हालाँकि, ये अभिलेख प्रायः केवल सीमित समयावधि को ही आच्छादित करते हैं और भारतीय परिदृश्य में पर्याप्त कालानुक्रमिक नियंत्रण से रहित होते है। इसके अतिरिक्त, भारतीय संदर्भ में अब तक (ISM) की परिवर्तनीयता से संबन्धित दीर्घकालिक स्थलीय जैविक अभिलेखों की भी कमी रही है। यह अध्ययन मध्य भारतीय कोर मानसूनी क्षेत्र (CMZ) से अंतिम हिमानी अधिकतम (LGM) जोकि लगभग 23-19 हज़ार वर्ष पूर्व हुआ था, से भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (ISM) वर्षा परिवर्तनीयता का प्रथम बहु-प्रतिपत्नी अभिलेख प्रदान करता है।

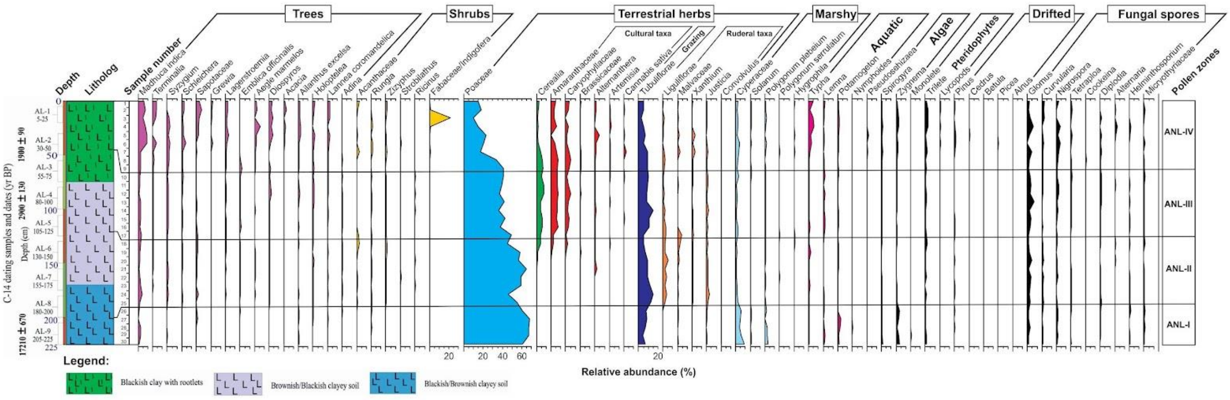

चित्र 2. वनस्पति के परागकणों, झाड़ियों और शाकीय परागकणों के पराग आरेख, साथ ही जलीय परागकणों, शैवाल अवशेषों, दलदली परागकणों, टेरिडोफाइटिक परागकणों, स्थानांतरित परागकणों और कवक बीजाणुओं का आनंदपुर नर्सरी झील अवसाद प्रोफ़ाइल (एएनएल), कोरिया जिला, छत्तीसगढ़, मध्य भारत से परागकणों का आरेख।

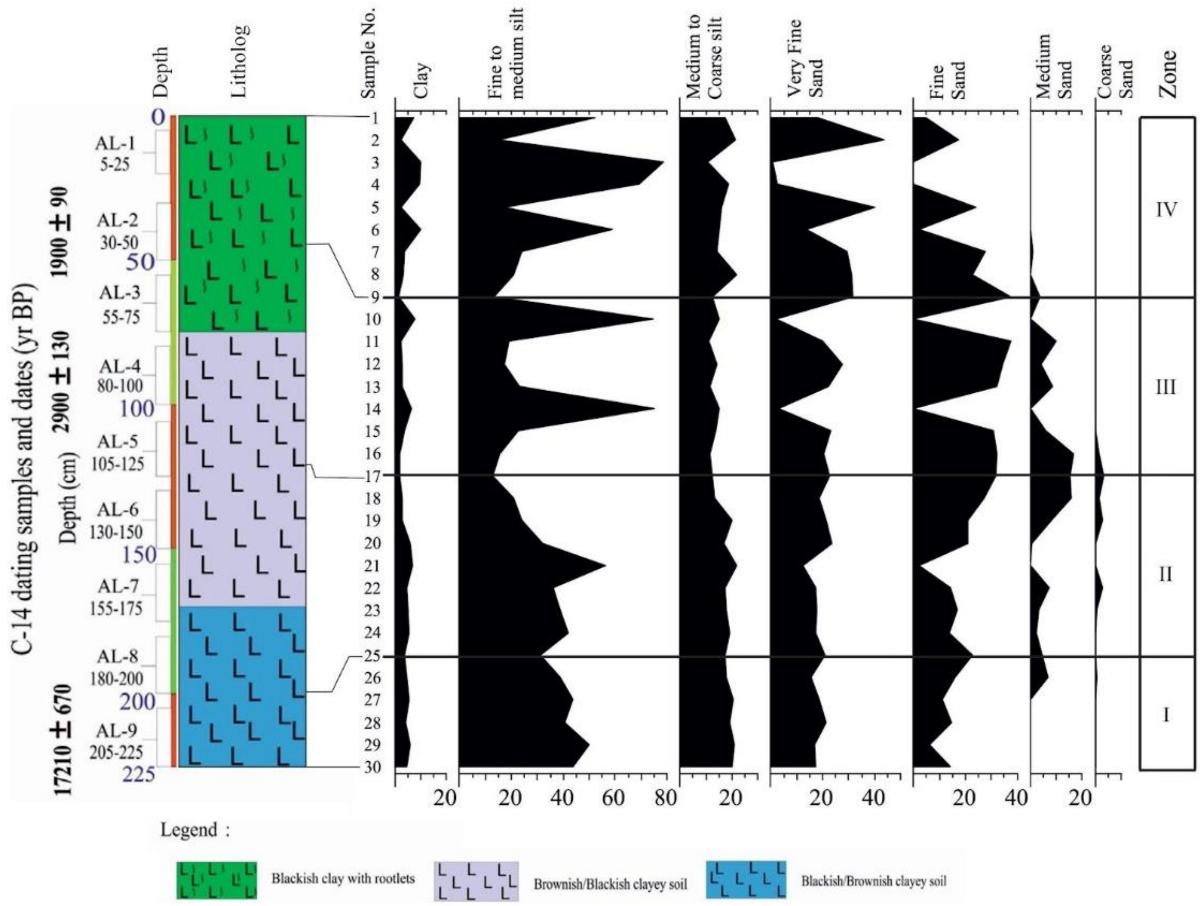

चित्र 3. मध्य भारत के छत्तीसगढ़ राज्य के कोरिया जिले के आनंदपुर नर्सरी झील अवसाद प्रोफ़ाइल (एएनएल) से विभिन्न कणआकार मापदंडों में भिन्नता को दर्शाता आरेख

विशेष रूप से वार्षिक भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसूनी वर्षा (AISMR) की तीव्रता की जानकारी प्रदान करता है जो कि भारत के शीर्ष वर्षा के माह- जुलाई और अगस्त के दौरान वर्षा परिवर्तनीयता पर आधारित है। 18°N और 28°N अक्षांशों तथा 67°E और 88°E देशांतरों के मध्य स्थित

CMZ, ISM अस्थिरता के प्रति संवेदनशील होने के कारण, वर्षाऋतु कि कमजोर या तीव्र अवधि की पहचान हेतु प्रमुख क्षेत्र माना जाता है, जिसे क्रमशः 'ब्रेक' या 'सक्रिय' अवधि कहा जाता है, इसके अलावा यह (AISMR) की तीव्रता भी बताता है।

मध्य भारत के छत्तीसगढ़ राज्य के कोरिया जिले में बैकुंठपुर वन क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली आनंदपुर नर्सरी झील से 2.25 मीटर गहरा झील अवसाद प्रोफाइल से नमूने लिये गये (चित्र 1)। यह इलाका कोर मानसून क्षेत्र (CMZ) में आता है। इस प्रोफाइल की 215 सेंटीमीटर गहराई पर लगभग 17,210 ± 670 साल पहले की रेडियोकार्बन (^{14}C) आयु मापी गई, तथा अनुमान है कि पूरी गहराई (2.25 मीटर) पर करीब 22,200 साल पुरानी परत है।इस अध्ययन के लिए कुल 30 नमूने लिए गए: 15 नमूने 5-5 सेमी की दूरी पर (0 से 50 सेमी और 200 से 225 सेमी गहराई से), और बाकी 15 नमूने 10-10 सेमी के अंतराल पर (50 से 200 सेमी गहराई से)। इसके अलावा, रेडियोकार्बन डेटिंग के लिए कुछ बड़े और विशेष नमूने भी लिए गए। पराग के अध्ययन के साथ-साथ, मृदा के कणों के आकार और उसमें मौजूद चुंबकीय गुणों (पर्यावरणीय चुंबकत्व) का भी विश्लेषण किया गया, ताकि LGM के बाद मिले परागों के निष्कर्षों की पुष्टि की जा सके (चित्र 2-4) ।

यह नवीन शोध भारत के मुख्य मानसून क्षेत्र (CMZ) से अंतिम हिमानी अधिकतम (LGM) के पश्चात कि अवधि में बहु-प्रतिपत्री अभिलेखों (परागकण आकार और पर्यावरणीय चुंबकत्व) का उपयोग करके पराग (वनस्पति) आधारित जल-जलवायु परिवर्तनों तथा (भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून: ISM) कि परिवर्तनीयता को समझने पर आधारित है। अध्ययन क्षेत्र को उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के उन हिस्सों में माना जाता है जिन्हें अब तक बहुत कम समझा गया है, जहाँ वर्षा मुख्य रूप से ISM वर्षा द्वारा नियंत्रित होती है। अध्ययन से पता चला है कि मध्य भारतीय CMZ में अध्ययन क्षेत्र के आसपास आज से ~22,200 व 18658 वर्ष पूर्व के मध्य मानसून कमजोर (ठंडा और शुष्क जलवायु) था, जो वैश्विक रूप से LGM (23-19 हजार वर्ष) के साथ सहसंबंधित है। इसके अतिरिक्त, अध्ययन क्षेत्र में 7340 व 1960 वर्ष पूर्व के मध्य एक गर्म तथा अपेक्षाकृत अधिक आर्द्र जलवायु की स्थिति का संकेत मिलता है, जो वैश्विक होलोसीन जलवायु अनुकूलतम (HCO; 7000-4000 वर्ष) के अनुरूप है (चित्र 5) ।

एल नीनो-दक्षिणी दोलन (ENSO) को व्यापक रूप से ISM वर्षा के प्रमुख जलवायु नियंत्रकों में से एक के रूप में स्वीकार किया जाता है। ENSO घटनाओं की सकारात्मक चरण अवस्था (एल नीनो) आम तौर पर ISMR में कमी से संबद्ध है, जबकि ENSO घटनाओं का नकारात्मक चरण (ला नीना) आम तौर पर भारतीय क्षेत्र में अत्यधिक वर्षा की स्थिति से संबद्ध होता है। अल नीनो वर्ष में सामान्यतः ब्रेक चरण हावी रहता है, जबकि ISMR का सक्रिय चरण ला नीना वर्ष से जुड़ा होता है। इसके अतिरिक्त, अल नीनो-ब्रेक चरण के बीच का संबंध ENSO-मानसून संबंध से स्वतंत्र माना जाता है जबकि ला नीना-सक्रिय संबंध ENSO-मानसून संबंध से जुड़ा हुआ है।

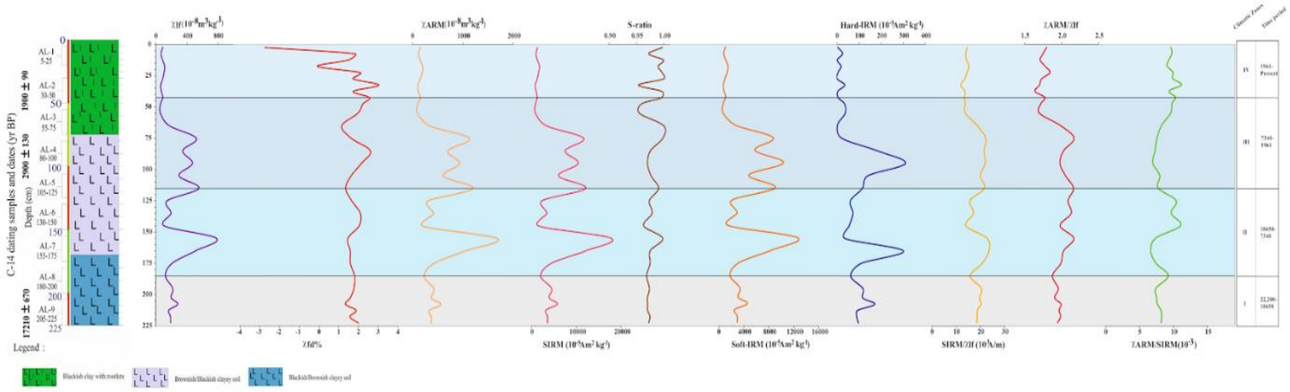

चित्र 4. मध्य भारत के छत्तीसगढ़ राज्य के कोरिया जिले के आनंदपुर नर्सरी झील अवसाद प्रोफ़ाइल (एएनएल) से पर्यावरणीय चुंबकत्व अध्ययन के विभिन्न मापदंडों के बदलावों को दर्शाता आरेख।

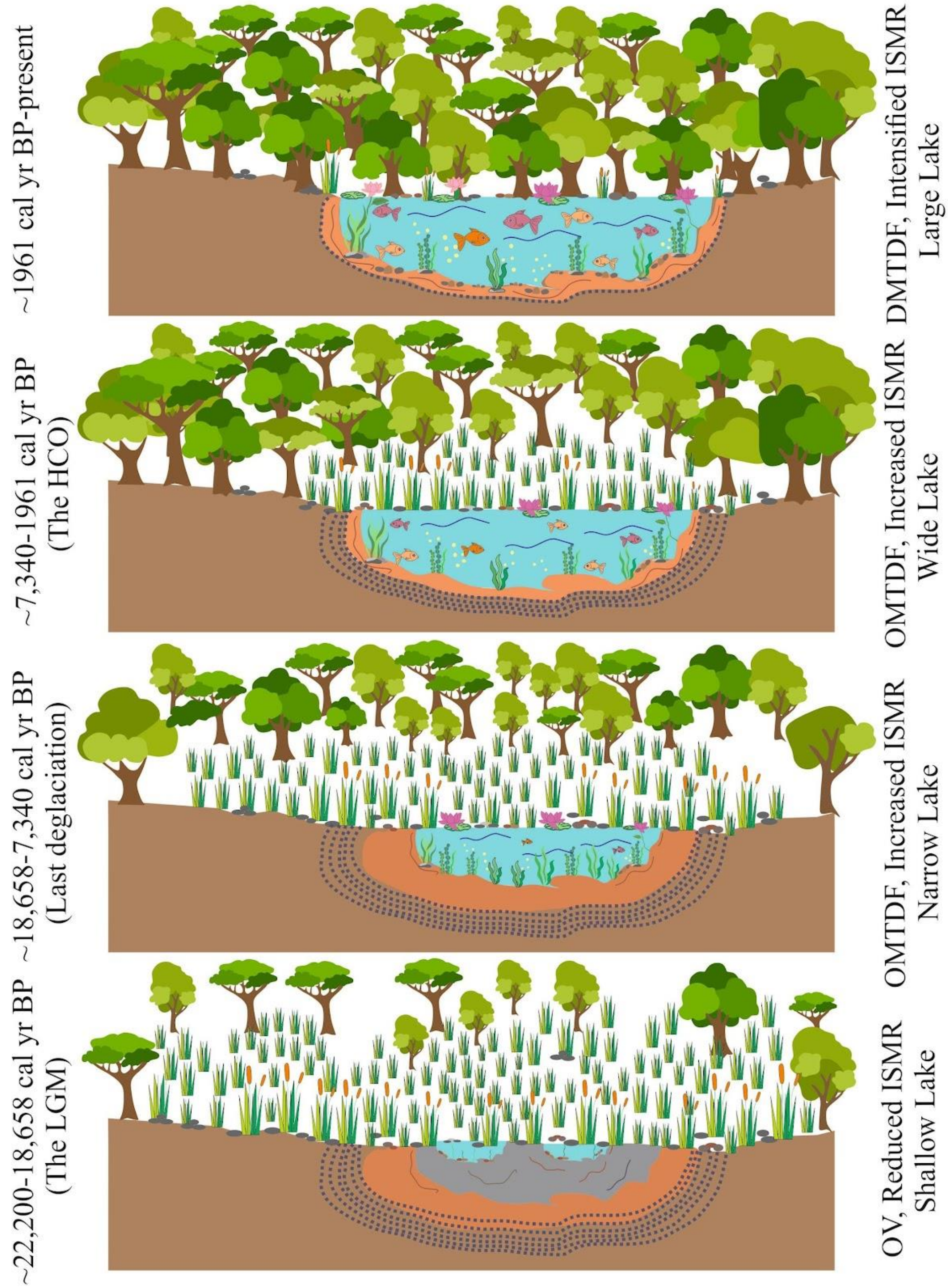

चित्र 5. अवसादीय पर्यावरण (झील-स्तर में परिवर्तन) के विकास, साथ ही वनस्पति गतिकी और मध्य भारतीय CMZ से LGM के बाद ISMR परिवर्तनीयता को दर्शाने वाला योजनाबद्ध आरेख। (ओवी=खुले वन; OMTDF: खुले मिश्रित उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन; DMTDF: घने मिश्रित उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन; LGM =अंतिम हिमानी अधिकतम; HCO =होलोसीन जलवायु अनुकूलतम)

वर्तमान शोध निष्कर्ष, परिवर्तित होते मानसूनी (ISM) जलवायु परिस्थितियों के अनुरूप वनस्पति अनुक्रमण की प्रक्रियाओं को समझने के नए दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, यह निष्कर्ष अतीत के वायुमंडलीय CO_2 स्तरों को समझने में सहायक हो सकते हैं, जिनका वनस्पतियों पर विशिष्ट प्रभाव होता है, जिससे उनकी पूर्ववर्ती अवस्थिति प्रभावित हुई होगी, विशेषकर LGM के दौरान जब CO_2 की सांद्रता 200 पीपीएम से भी कम हो गई थी। ऐसा माना जाता है कि यह प्रभाव शीतोष्ण क्षेत्रों की तुलना में उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में अधिक महत्वपूर्ण रहा है, क्योंकि C_4 पादप-प्रधानता वाले पारिस्थितिक तंत्रों (बायोमास) पर इसका विशेष रूप से सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। जो उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में अधिक प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।. इसके अतिरिक्त, LGM (23-19 हज़ार वर्ष पूर्व) की विशेषता निम्न वायुमंडलीय ग्रीनहाउस गैस (GHG) की सांद्रता, भूमि और महासागर दोनों पर सतही तापमान में गिरावट, वैश्विक हिम की मात्रा का बड़े पैमाने पर विस्तार और वैश्विक समुद्र स्तर में ~ 120 मीटर की गिरावट है।

अपनी विशिष्ट संरचना के कारण LGM को व्यापक रूप से जलवायु मॉडल की कार्यक्षमता के मूल्यांकन हेतु एक मानक के रूप में उपयोग किया गया है तथा सहस्राब्दी पैमाने पर जलवायु परिवर्तनों के संदर्भ के रूप में इसका उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त, LGM के बाद की अवधि में मध्य भारतीय CMZ में किए गए पुराजलवायवी अनुसंधान दीर्घकालिक जलवायु परिवर्तनीयता, पारिस्थितिकी तंत्र प्रतिक्रियाओं और जलजलवायु अस्थिरता के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। यह ज्ञान पुराजलवायु विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान की दिशा को सुदृढ़ करने के साथ-साथ उच्च शिक्षण संस्थानों में क्षमता निर्माण एवं अंतःविषयी अध्ययनों को प्रोत्साहित करने के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन सिद्ध हो सकता है। यह जटिल वैज्ञानिक तथ्यों को विद्यार्थियों एवं शोधकर्ताओं के लिए सुलभ बनाकर, उनके पर्यावरणीय विज्ञान, जलवायु परिवर्तन अध्ययन एवं पारिस्थितिकी पर आधारित शोध में व्यावहारिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है।

शोध पत्र का उद्धरण व लिक- क़मर, एम.एफ., दुबे, जे., तिवारी, पी., दास, पी.के., ठाकुर, बी., जावेद, एम., प्रसाद, एन., मनीषा, एम. एट अल., सांगोडे, एस.एन., 2024. भारत के मुख्य मानसून क्षेत्र से अंतिम हिमनद अधिकतम के बाद से कई प्रॉक्सी द्वारा प्रकट जल-जलवायु परिवर्तन। क्वाटरनेरी 7, 52.https://doi.org/10.3390/quat7040052

मोहम्मद फ़िरोज़ क़मर

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

> समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो, तो वह दवेनागरी ही हो सकती है।
>
> — जस्टिस कृष्ण स्वामी अय्यर

भूमध्य रेखा-उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में लघु हिमयुग का अनुगमन: तटीय दक्षिण-पश्चिम भारत से बहु-प्रतिपत्री अंतर्दृष्टि

होलोसीन युग, जो लगभग 11,700 वर्ष पूर्व प्रारंभ होकर आज तक जारी है, में प्लीस्टोसीन जैसे पूर्ववर्ती काल की तुलना में उल्लेखनीय लेकिन अपेक्षाकृत कम तीव्र तापमान परिवर्तन हुए। इन तापीय उतार-चढ़ावों ने वायुमंडलीय परिसंचरण और वर्षा पैटर्न को प्रभावित किया, जिससे हिमानी गतिकी पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इन जलवायु परिवर्तनों को समझने से होलोसीन काल के दौरान वर्षा और हिमनदों/हिमानी के व्यवहार के स्थानिक और कालगत वितरण को समझने में सहायता मिलती है। पिछले 2000 सालों में, धरती ने जलवायु में कई बदलाव देखे हैं, जिनमें कुछ प्राकृतिक कारणों से और कुछ मानव की गतिविधियों से हुए। इन बदलावों में अलग-अलग समय और क्षेत्रों में कभी गर्मी बढ़ी तो कभी ठंडक आई। इनमें प्रमुख हैं मध्यकालीन जलवायु विसंगति (MCA), जो 800 और 1200 ई. के बीच का एक गर्म चरण था, और लघु हिमयुग (LIA), जो 1350 से 1850 ई. तक का एक ठंडा चरण था LIA विशेष रूप से अपने व्यापक हिमनद/हिमानी विस्तार के लिए महत्वपूर्ण है, विशेषकर उत्तरी गोलार्ध तथा ग्रीनलैंड, यूरोपीय आल्प्स, उत्तरी अमेरिका, अलास्का, न्यूज़ीलैंड और दक्षिणी एंडीज़ जैसे क्षेत्रों में। ये वैश्विक विन्यास LIA को व्यापक पर्यावरणीय प्रभावों वाली एक महत्वपूर्ण जलवायु घटना के रूप में रेखांकित करते हैं।

लघु हिमयुग (LIA) को आम तौर पर दुनिया भर में ठंडा और सूखा समय माना जाता है, जिसमें मानसून भी कमजोर थे। लेकिन दक्षिण एशिया के भूमध्यरेखीय और उष्णकटिबंधीय इलाकों से मिले सबूत बताते हैं कि यहाँ हालात हर जगह एक जैसे नहीं थे। हालिया शोध लघु हिमयुग LIA को एक समान रूप से ठंडे काल के रूप में देखने की पारंपरिक धारणा को चुनौती देते हैं, और इस अवधि के दौरान जलवायु परिस्थितियों में महत्वपूर्ण स्थानिक परिवर्तनीयता को उजागर करते हैं। उदाहरण के लिए, दक्षिण भारत के कोडागु जिले में LIA (1550-1850 ई.) के दौरान बढ़ी हुई मानसूनी वर्षा के साथ एक गर्म और आर्द्र चरण देखा गया, जिसके परिणामस्वरूप मिश्रित आर्द्र/अर्ध-सदाबहार तथा शुष्क पर्णपाती वनों का विकास हुआ। इस संदर्भ में, यह अध्ययन दक्षिण-पश्चिम केरल में स्थित अष्टमुडी झील की पुरापर्यावरणीय परिस्थितियों की जाँच करता है ताकि लघु हिम युग (LIA) के दौरान इस क्षेत्र की जलवायु प्रतिक्रिया का आकलन किया जा सके। डायटम विश्लेषण, परागाणु संलक्षणियां अध्ययन, स्थिर कार्बन-नाइट्रोजन समस्थानिकों और कण-आकार वितरण जैसे बहु-प्रतिपत्री दृष्टिकोण का उपयोग करते हुए, अध्ययन का उद्देश्य यह मूल्यांकन करना है कि क्या LIA के जलवायु संकेत भूमध्यरेखीय-उष्णकटिबंधीय दक्षिण एशिया में समकालिक थे।

दक्षिण भारत के केरल राज्य के कोल्लम ज़िले में स्थित अष्टमुडी नदमुख, वेम्बनाड के बाद राज्य का दूसरा सबसे बड़ा नदमुख है और इसे रामसर स्थल के रूप में नामित किया गया है। अपनी आठ शाखाओं के कारण जो ऑक्टोपस जैसी प्रतीत होती है , इसका नाम अष्टमुडी पड़ा है। यह नदमुख 54 वर्ग किमी में फैला हुआ है और 16 किलोमीटर लंबा है, जो 200 मीटर चौड़े मुख से अरब सागर में खुलता है। 8°57'–9°03' उत्तर और 76°31'–76°41' पूर्व के बीच स्थित, यह नदमुख मुख्यतः पश्चिमी घाट से निकलने वाली कल्लड़ा नदी और उसकी सहायक नदियों से मीठा जल प्राप्त करती है। यह नदमुख अर्ध-दैनिक ज्वार का अनुभव करती है, जिसमें औसतन 1 मीटर की ज्वारीय सीमा होती है, और बाढ़ ज्वार के दौरान गाद युक्त अवसाद का परिवहन होता है। यह नदमुख उष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु क्षेत्र में स्थित है, जहाँ वार्षिक औसतन वर्षा 2,428 मिमी होती है। दक्षिण-पश्चिम मानसून (जून-सितंबर) के दौरान लगभग 55% वर्षा होती है, जबकि उत्तर-पूर्वी मानसून (अक्टूबर-दिसंबर) लगभग 24% वर्षा में योगदान करता है। वार्षिक औसत तापमान 26.5°C से 28.5°C के बीच रहता है, जिसमें आर्द्रता का स्तर समान्यतः अधिक होता है और वाष्प दाब 27 से 28.5 hPa के बीच होता है।

दक्षिण-पश्चिम भारत के अष्टमुडी झील से कोर के वर्तमान अध्ययन से लघु हिमयुग (LIA) के साक्ष्य का पता चलता है, जिसे बहु-प्रतिपत्री आंकड़ों के आधार पर तीन अलग-अलग चरणों में विभाजित किया गया है, जिसमें डायटम समुच्चय, परागाणु संलक्षणियाँ, स्थिर कार्बन और नाइट्रोजन समस्थानिक तथा अवसादकीय संरचनाएँ शामिल हैं (चित्र 1)। प्रथम चरण (1507-1518 ई.) को गर्म और आर्द्र जलवायु द्वारा चिह्नित किया गया, जिसकी विशेषता उच्च मीठे जल और समुद्री प्लवक-बेन्थिक डायटम की प्रचुरता, तनाव-सूचक एपिफाइटिक डायटम की अधिकता तथा उच्च TOC (6.53%) के साथ $\delta^{13}C$ मान -28.5‰ के आसपास थे। ये आँकड़े बढ़ी हुई प्राथमिक उत्पादकता और स्थलीय जैविक इनपुट का संकेत देते हैं।

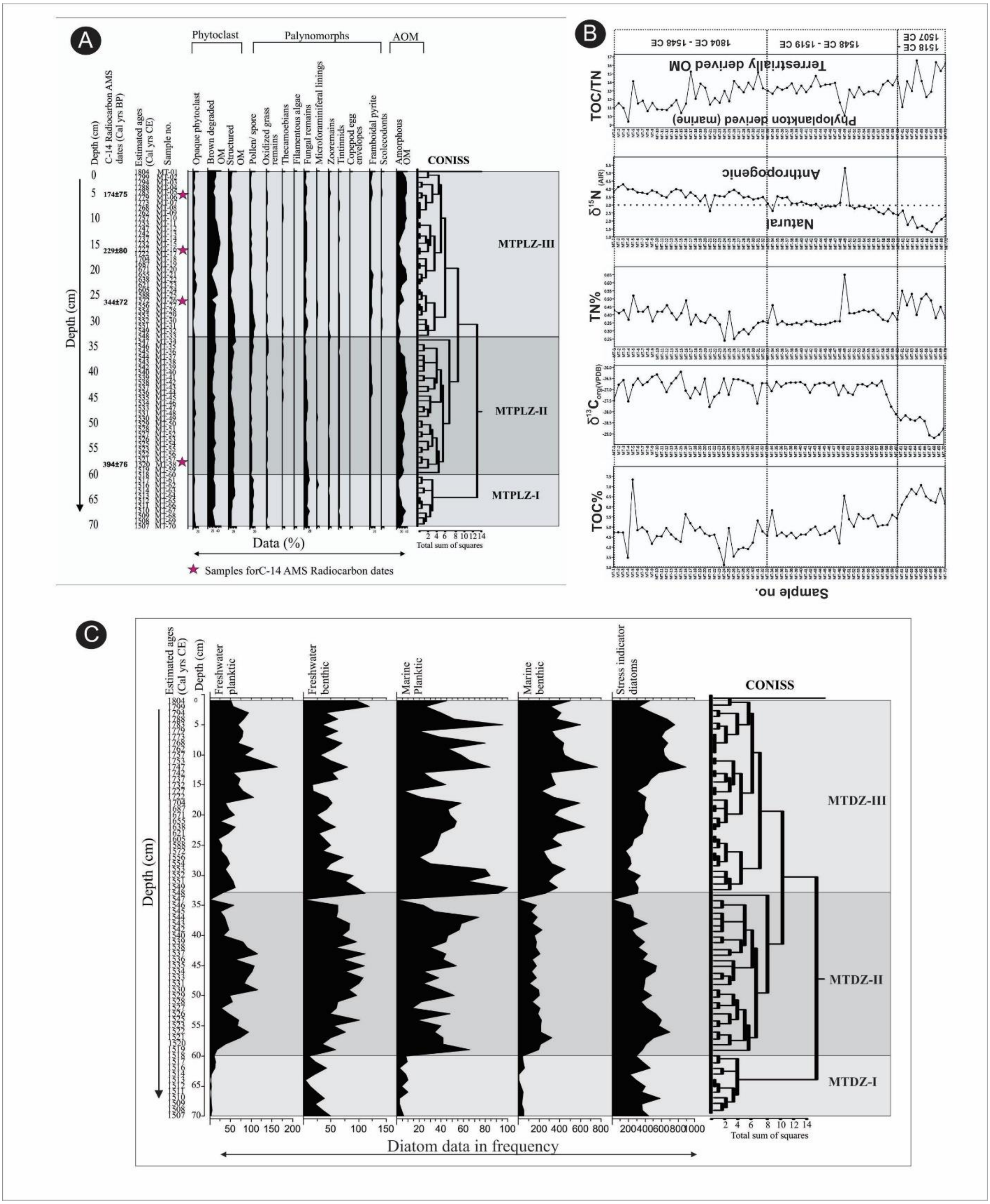

चित्र 1. (A) परागाणु संलक्षणियाँ, (B) TOC%, δ_{13}C, TN%, δ_{15}N, TOC/TN, (C) (LIA) लघु हिम युग के विभिन्न चरणों के लिए डायटम का आवृत्ति वितरण और CONISS क्लस्टर विश्लेषण

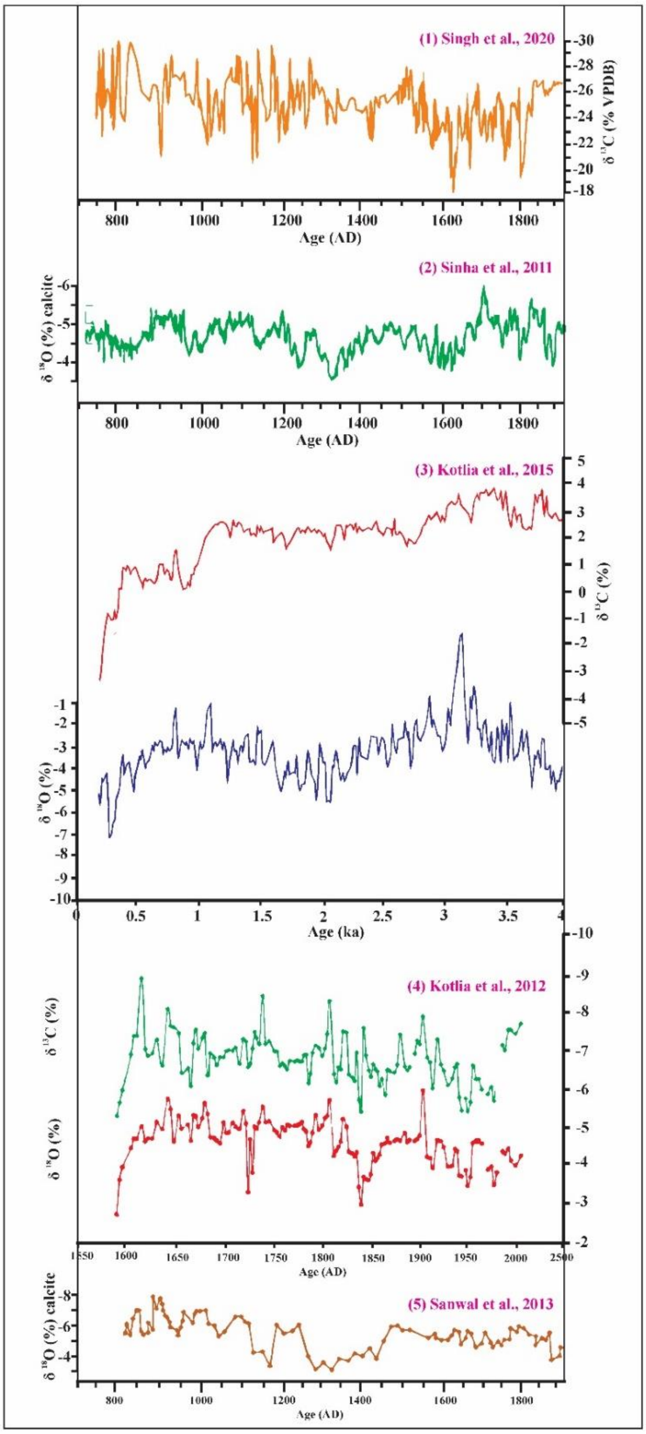

चित्र 2. आद्र(नम) LIA में दर्ज विविधताएँ1). रिवालसर झील, मंडी जिला, हिमाचल प्रदेश (उत्तर पश्चिमी हिमालय) से (सिंह एट अल., 2020), 2). झूमर और दंडक गुफाओं से, मध्य भारतीय कोर मानसून ज़ोन/मंडल(सिन्हा एट अल., 2011), 3). भारतीय मध्य हिमालय से (कोटलिया एट अल., 2015), 4). कुमाऊं लघु हिमालय से (कोटलिया एट अल., 2012) और 5). धरमजली गुफा, पिथौरागढ जिला, मध्य कुमाऊं हिमालय, उत्तराखंड (सनवाल एट अल., 2013)।

उच्च TOC/TN अनुपात (~14), स्थलीय परागाणु संरूपों की महत्वपूर्ण उपस्थिति और कवकीय अवशेष प्रमुख स्थलीय जैविक स्रोतों की ओर संकेत करते हैं। न्यून समुद्री परागाणु संरूपों और घूर्णीकशाभ पुट्टी की आकस्मिक उपस्थिती सीमित समुद्री प्रभाव का संकेत देती हैं। यद्यपि यह कालखंड वैश्विक स्तर पर, विशेष रूप से यूरोप और उत्तरी अटलांटिक क्षेत्र में, LIA के साथ समकालिक था, तथापि दक्षिण भारत में यह अवधि विशिष्ट शीत-शुष्क परिस्थितियों को प्रतिबिंबित नहीं करती, बल्कि यह भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य भागों से प्राप्त आर्द्र LIA परिदृश्य के अनुरूप प्रतीत होती है। द्वितीय चरण (1519-1548 ई.) एक जलवायु संक्रमण को दर्शाता है, जिसमें कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में उतार-चढ़ाव और अनाकार कार्बनिक

पदार्थों (AOM) में वृद्धि देखी गई। TOC घटकर 5.03% हो गया, जबकि $\delta^{13}C$ का मान -26.6° पर और TN का औसत 0.39% रहा। $\delta^{15}N$ मान (~3.04°) मिश्रित वायुमंडलीय और मानवजनित नाइट्रोजन स्रोतों का संकेत देते हैं। TOC/TN अनुपात (~13) और कोप्रोफिलस कवकों की उपस्थिति स्थलीय और मानवजनित दोनों तरह के प्रभावों का संकेत देती है। मिश्रित डायटम समुच्चय और मृदा कणों की बढ़ी हुई मात्रा , ज्वारीय गतिविधि की तीव्रता और समुद्री जल के प्रवेश को दर्शाती है। 1519-1537 ई. के बीच पराग उत्पादकता में आई कमी, संभवतः समुद्री जल के प्रवेश के कारण मानसून के कमजोर होने की ओर इशारा करती है।

अंतिम चरण 3 (1548-1804 ई.) में, समुद्री प्रभाव और अधिक प्रबल हो गया, जिसकी पुष्टि प्रमुख अवसादकीय संरचनाओं, समुद्री डायटम प्रजातियों की अधिकता, तनाव सूचक संकेतकों, घूर्णीकशाभ पुट्टी, फ्रैम्बोइडल पाइराइट तथा समुद्री परागाणु संरूपों की बढ़ी हुई मात्रा से होती है। इस अवधि के दौरान TOC औसतन 4.6% रहा, $\delta^{13}C$ और घटकर -26.8‰ हो गया, जबकि TN 0.38% पर स्थिर रहा, और $\delta^{15}N$ 3.67‰ तक पहुँच गया, जो एक बार फिर से मानवजनित और वायुमंडलीय प्रभावों की ओर संकेत करता है। ये निष्कर्ष इस अवधि में समुद्री जल के प्रवेश में वृद्धि और कमजोर पड़ते दक्षिण-पश्चिम मानसून का संकेत देते हैं।

कई अध्ययनों से पता चलता है कि इस समय दक्षिण और पूर्वी एशिया के कुछ हिस्सों में मौसम नम (आर्द्र) था। जैसे ईटानगर, उत्तर-पश्चिम और मध्य हिमालय, उत्तरी तिब्बती पठार और दक्षिणी चीन में ज्यादा नमी वाले हालात दर्ज किए गए। इसके उलट, LIA के दौरान ठंडे और सूखे मौसम के भी सबूत मिले हैं, जैसे प्रायद्वीपीय भारत की कडप्पा गुफा, गढ़वाल हिमालय और उत्तर-पश्चिमी हिमालय में लगभग 1640 से 1800 ई. के बीच। यह बताता है कि LIA पूरी दुनिया में एक जैसी घटना नहीं थी, बल्कि अलग-अलग जगहों पर इसका असर अलग तरह से दिखाई दिया (चित्र 2)। इन क्षेत्रीय जलवायु बदलावों का संबंध कुछ बड़ी वैश्विक घटनाओं से हो सकता है, जैसे स्पोरर (~1450-1550 ई.), माउंडर (~1645-1715 ई.) और डाल्टन (~1790-1830 ई.) न्यून, जब सूरज की गतिविधि कम हो गई थी। इन अवधियों में कम सौर ऊर्जा मिलने से भूमध्यरेखीय और उष्णकटिबंधीय इलाकों का मौसम बदल गया। इसके कारण अंतर-उष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (ITCZ) दक्षिण की ओर खिसक गया, हवा में CO_2 थोड़ी कम हुई और वैश्विक तापमान करीब 1°C घट गया। अष्टमुडी झील के अध्ययन से पता चलता है कि यहाँ की जलवायु कभी वैश्विक LIA रुझानों के साथ मिलती-जुलती रही, तो कभी अलग रही। दक्षिण-पश्चिम भारत में LIA की शुरुआती अवधि में मानसून मजबूत था, लेकिन 1519-1804 ई. के दौरान मानसून कमजोर पड़ा और ज्वार का असर बढ़ गया। $\delta^{13}C$ के मान में 2-3‰ की कमी शायद वनों की कटाई और खेती-बाड़ी जैसे भूमि-उपयोग बदलावों से जुड़ी थी।

शोध पत्र का उद्धरण व लिंक - तिवारी, पी, ठाकुर, बी, श्रीवास्तव, पी, गहलौद, एसकेएस, बोस, टी, कुमार, ए, भूषण, आर, अग्निहोत्री, आर. 2024. क्या LIA सम-उष्णकटिबंधीय जलवायु के साथ समकालिक था? भारत के दक्षिण-पश्चिमी तट से एक बहु-प्रतिपत्नी अध्ययन। 709: 66-81. doi.org/10.1016/j.quaint.2024.09.004

बिश्वजीत ठाकुर[1] और पूजा तिवारी[2]

[1]बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, 53, विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ, भारत
[2]सीडब्ल्यूपीआरएस, भारत सरकार, जल शक्ति मंत्रालय, जल संसाधन विभाग, नदी विकास और गंगा संरक्षण, पुणे

लगभग पिछले 8 हज़ार वर्षों में भारत के मध्य हिमालय स्थित कुमाऊं क्षेत्र में पशु शाकचारण में वृद्धि

शाकाहारिता न केवल महत्वपूर्ण है बल्कि यह जैव विविधता में परिवर्तन और पारिस्थितिकी तंत्र के लचीलेपन को बनाए रखने का दीर्घकालिक कारक भी हैं। शाकाहारी जीवों और पारिस्थितिकी तंत्रों के बीच अंतःक्रिया की समझ, पुनः वन्यीकरण के उद्देश्य से बनाई गई संरक्षण नीतियों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, शाकाहारिता समकालीन स्थलीय पादप पारिस्थितिकी तंत्रों के विनियमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हालांकि, यह अतीत के पारिस्थितिकी तंत्र की गतिकी का एक एसा घटक है जिसे अभी भी पूर्ण रूप से नहीं समझा गया है, क्योंकि संबन्धित विधियों की नैदानिक क्षमता का परीक्षण और परिशोधन अभी जारी है। इसके अलावा, समय के साथ बड़े शाकाहारी जीवों की प्रचुरता में होने वाले परिवर्तनों को समझना और जैव विविधता में परिवर्तन तथा पारिस्थितिकी तंत्र के लचीलेपन को प्रभावित करने वाले विघटनकारी तंत्रों में इन जीवों की भू मिका का आकलन करना, दीर्घकालिक पारिस्थितिकीय पुनर्निर्धारण की एक प्रमुख चुनौती है। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार के अध्ययन प्रभावी वन्यजीव प्रबंधन हेतु महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इसके लिए शाकाहारी जीवों की प्रचुरता तथा वनस्पति व जलवायु के साथ उनकी दीर्घकालिक अंतःक्रियाओं पर आधारित पुरातन आंकड़ों की आवश्यकता होती है, जो अवलोकन और अभिलेखीय स्रोतों से प्राप्त किए जा सकते हैं। शाकाहारी प्राणियों के विष्ठा में पाये जाने वाले विशिष्ट बीजाणु अतीत में उनकी प्रचुरता के बारे में जानकारी प्रदान करने का एक संभावित स्रोत हैं। कोपरोफिलस कवक के बीजाणु, विष्ठा पर पैदा होने वाले कवकों के बीजाणु (SCF) शाकाहारी जीवों के विष्ठा पर उगते हैं।

नए शोध निष्कर्षों से पिछले 8.3 हजार वर्षों (मध्य होलोसीन) से पशु शाकचारण की शुरुआत और विकास की प्रक्रिया के बारे में जानकारी प्राप्त हो रही है, जिसे भारत में अभी तक ठीक से समझा नहीं गया है। यह अध्ययन गैर-पराग परागाणु संरूपों (NPP), विशेष रूप से SCF, पर आधारित है जो भारत के मध्य हिमालय स्थित कुमाऊं क्षेत्र में रावतसेरा पुराझील अवसाद प्रोफ़ाइल, से प्राप्त किए गए हैं। भारत के मध्य हिमालय स्थित कुमायूं के रावतसेरा पुराझील (चित्र 1-5) से 2.75 मीटर लंबी झीलीय अवसाद प्रोफ़ाइल का, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बीएसआईपी), लखनऊ, भारत में परागणविक रूप से विश्लेषण किया गया। इस अध्ययन के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य थे:

(1) पशु शाकचारण की गतिविधि, प्रकृति और विकास को समझना।

(2) मध्य होलोसीन के दौरान फंगल NPP और SCF पर आधारित मानवीय प्रभाव को समझना।

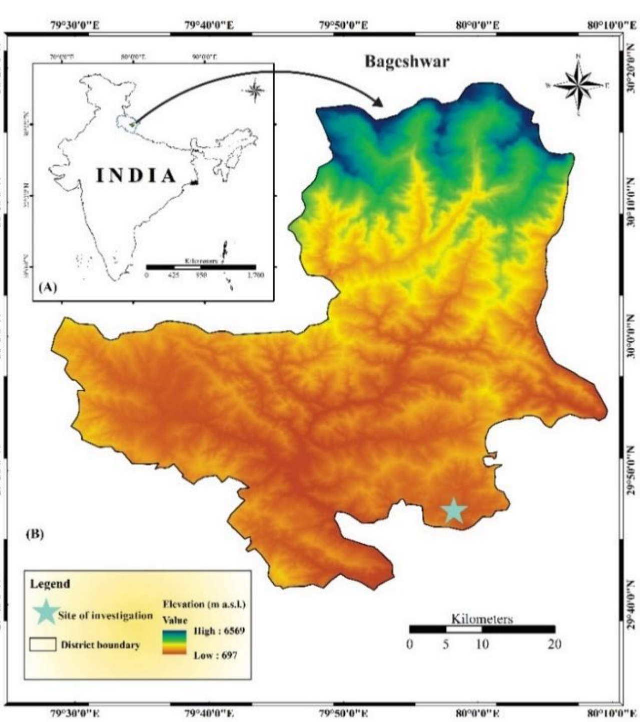

चित्र 1. अध्ययन क्षेत्र का शटल रडार टोपोग्राफिक मिशन (SRTM) का डिजिटल एलिवेशन मॉडल (DEM) जिसमें अध्ययन स्थल दिखाया गया है: कुमाऊं, मध्य हिमालय, भारत में रावतसेरा पुराझील ("स्टार")। चित्र को ArcGIS 10.3 का उपयोग करके बनाया गया है।

गैर-पराग परागाणु संरूपों (NPP) वास्तव में वे सभी 'अतिरिक्त' सूक्ष्म जीवाश्म होते हैं जो पराग कणों को पृथक करने की रासायनिक प्रक्रिया

के दौरान नष्ट नहीं होते हैं और अततः परागणविक माइक्रोस्कोप स्लाइड पर दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त, NPP परागकणों (लगभग 10-250μm) के आकार की सीमा में रहने वाले जीवों के अवशेषों का एक वृहद और वर्गीकरण की दृष्टि से विविध समूह है, जो विभिन्न पारिस्थितिकीय परिवेशों में पाये जाते हैं। NPP में कवक बीजाणु, शैवाल बीजाणु, टेस्टेट अमीबा, इसके साथ ही पादप एवं प्राणी सूक्ष्म अवशेष शामिल हैं। कवक बीजाणु के बीच कोप्रोफिलस कवक के बीजाणु (SCF), विष्ठा कवक के बीजाणु (SDF)—उदाहरण स्वरूप *स्पोरोर्मिएला* एसपी., *सोर्डेरिया* एसपी., *पोडोस्पोरा* एसपी., *डेलिट्सिया* एसपी., *सेरकोफोरा* एसपी., *आर्नियम* एसपी., और *कोनियोचाएटा* इत्यादि विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान वनस्पति के संबंध में शाकाहारी जीवों की स्थानीय उपस्थिति के संकेतक के रूप में होते हैं।

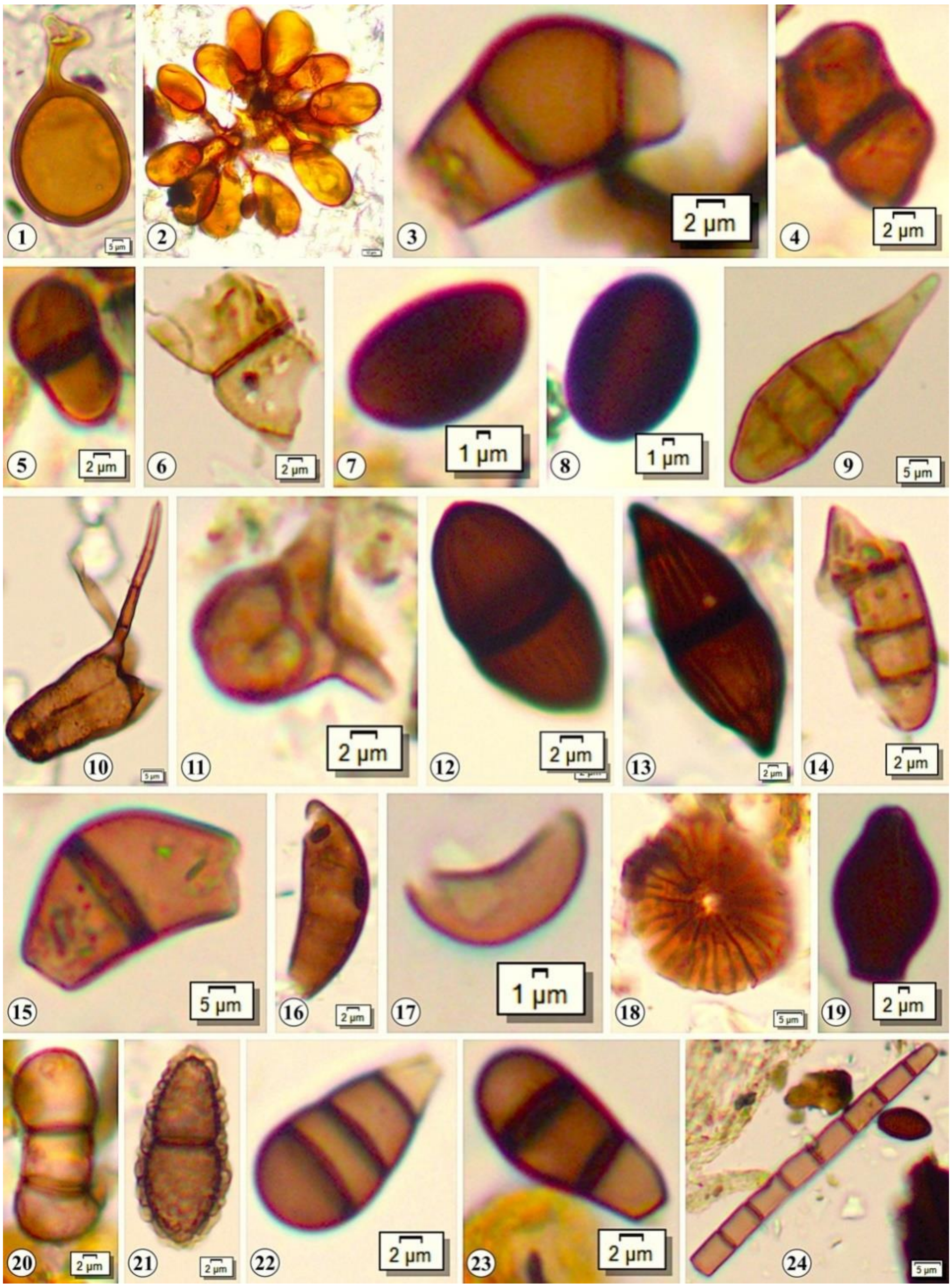

चित्र 2. आरएसपी, भारत के लघु हिमालय स्थित कुमाऊं, से कवक बीजाणु (NPP)। 1,2. ग्लोमस, 3,4. कर्वुलरिया, 5,6. डिप्लोडिया, 7,8. निग्रोस्पोरा, 9. अल्टरनेरिया, 10,11. टेट्राप्लोआ, 12. कूकीना, 13. एचडीवी 463, 14. थिलाविओप्सिस, 15. डायडोस्पोराइट्स, 16,17. उस्टुलिनाडेस्टा, 18. माइक्रोथाइरियासी, 19. सेरकोफोरा का एस्कोस्पोर, 20. एचडीवी-1007, 21. वाल्सारिया वेरियोस्पोरा का एस्कोस्पोर, 22. हेल्मिनथोस्पोरियम, 23. हाइपोमाइसेट्स, 24. क्लेस्टरोस्पोरियम का कोनिडिया।

पिछले दो दशकों से अधिक समय में, अवसादीय प्रोफाइल तथा कोप्रोलाइट्स में संरक्षित SCF की सापेक्षिक प्रचुरता में आए परिवर्तन के

आधार पर, संभावित आहार परिवर्तनों के संबंध में पुरा शाकाहार तथा जनसंख्या के आकार में संभावित परिवर्तनों और पुराआहार का विश्लेषण किया गया है। इससे यह जानने की कोशिश की गई कि क्या आहार में बदलाव और जनसंख्या में कमी की वजह से इन प्लीस्टोसिन (2.58 मिलियन वर्ष-11,700 हजार वर्ष) और होलोसीन (आज से 11,700 वर्ष पूर्व) युगों (चतुर्थमहाकल्प; 2.58 मिलियन वर्ष) के विशाल शाकाहारी जीवों का अंत हो गया था।

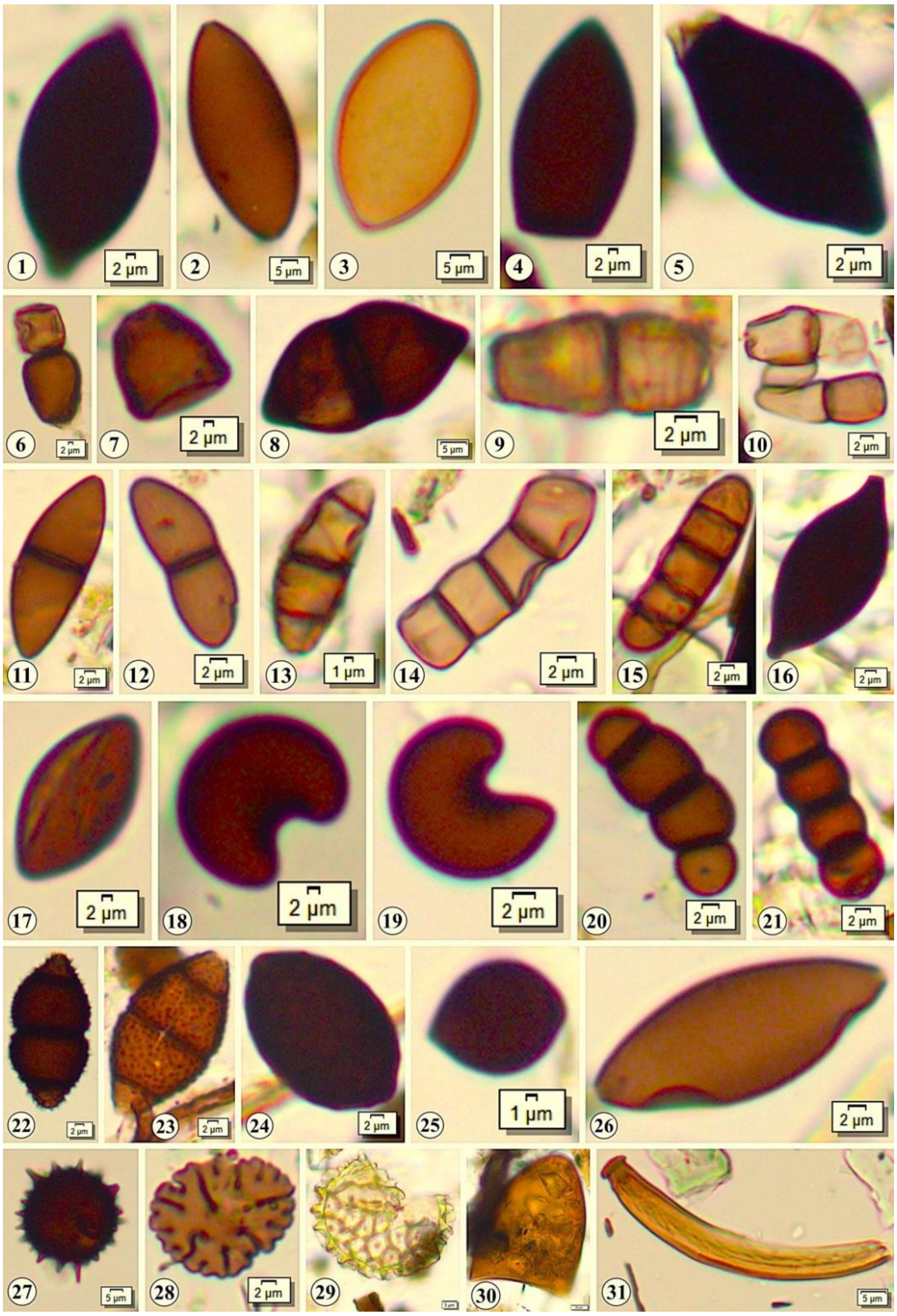

चित्र 3 कवक बीजाणु, आरएसपी, भारत के लघु हिमालय स्थित कुमाऊं, से कोप्रोफिलस कवक (SCF) तथा अन्य NPP के बीजाणु। 1-4. सॉर्डेरिया, 5. एपियोसोर्डेरिया, 6,7.स्पोरोर्मिएला एसपीपी., 8. डिपोरिसपोराइट्स, 9,10. डायडोस्पोराइट्स, 11,12. डेलिट्स्चिया एसपीपी., 13-15. मेलिओला एलिसी, 16. अज्ञात कवक बीजाणु, 17. कोनियोचेटा, 18,19.मेलानोग्राफियम, 20,21. क्यूटीपीएफ-1, 22,23. एस्कोस्पोर्स, 24,25.चेटोमियम, 26. अर्नियम 27. पेरिकोनिया?, 28. एंटोप्लिक्टिस लोबाटा? या डेस्मिडियोस्पोरा?, 29. गेस्ट्रम, 30. नेओरहबडोकोएला, 31. अज्ञात प्राणी अवशेष।

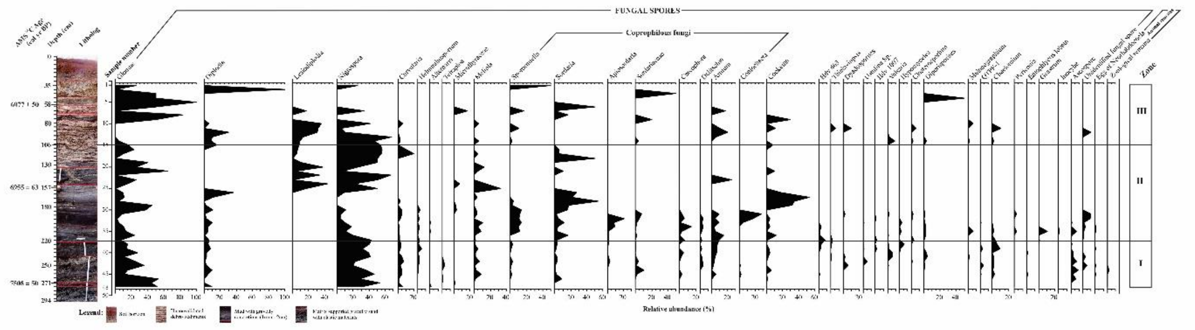

चित्र 4. रावतसेरा पुरा झील, भारत के लघु हिमालय स्थित कुमाऊं, से अवसादीय कोर के गैर-पराग परागाणु संरूपों (NPP) स्पेक्ट्रा।

इसके अतिरिक्त, SCF का अध्ययन क्षेत्र में पारिस्थितिकी, विविधता, पारिस्थितिक स्थलों के विभाजन और किसी क्षेत्र में उनकी सापेक्ष प्रचुरता में होने वाले परिवर्तनों के बारे में भी जानकारी प्रदान करता है। SCF का अध्ययन पशुपालन और अन्य मानवीय गतिविधियों से संबन्धित प्रश्नों का समाधान करने में भी सहायक होता है।

वर्तमान अध्ययन से पता चला है कि लगभग 8327-8041 वर्ष पूर्व, भारत स्थित मध्य हिमालय के कुमाऊं, अध्ययन क्षेत्र के भूदृश्य के आसपास स्थानीय चराई गतिविधि और पशुधन, विशेष रूप से गोजातीय पशुओं की उपस्थिति मौजूद थी। इसके बाद, स्थानीय शाकाहारी चराई गतिविधि में लगभग 7406 से 6999 वर्ष पूर्व के मध्य वृद्धि देखी गयी, जैसा कि SCF की संख्या और आवृत्तियों में वृद्धि से स्पष्ट है, हालांकि लगभग 8041-7406 वर्ष पूर्व. के दौरान इन बीजाणुओं (SCF) में अत्यधिक वृद्धि को भारत के मध्य हिमालय, स्थित कुमायूं अध्ययन क्षेत्र में चराई गतिविधियों और शाकाहारी (पशुचारण) की तीव्रता से जोड़ा जा सकता है।

यह अध्ययन यह समझने में मदद कर सकता है कि किसी इलाके में शाकाहारी जानवर कितनी संख्या में थे और उनका बायोमास कितना था। इसके अलावा, यह भी बताया जा सकता है कि किसी क्षेत्र में जानवरों की चराई कब शुरू हुई और वह कितनी तीव्र थी। यह अध्ययन अलग-अलग जलवायु और पर्यावरण की स्थिति को समझने में भी मदद करता है और पराग के आधार पर किए गए पुराने अध्ययन को और बेहतर बनाता है। यह रिसर्च SCF और NPP जैसी चीजों की सही पहचान करने में भी मदद करता है, खासकर तब सूक्ष्म जीवाश्मों में बदलाव (संकुचन या विस्तार) के कारण पहचान करना मुश्किल हो जाता है, जिससे गलत निष्कर्ष निकल सकते हैं।

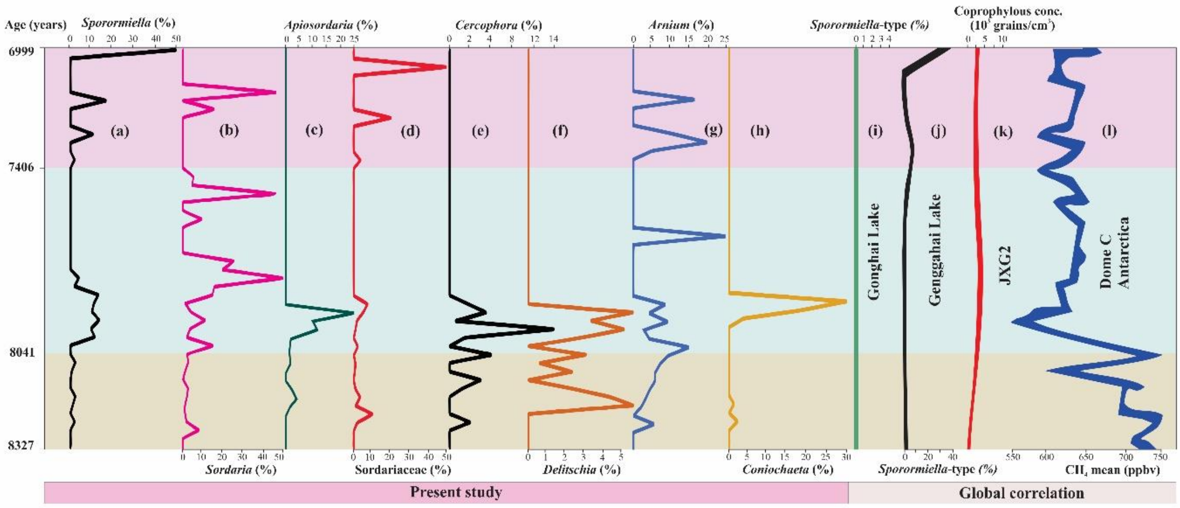

चित्र 5. वर्तमान अध्ययन (a-h) में कोप्रोफिलस कवक (SCF) के बीजाणुओं के अभिलेखों की तुलना (i) गोगहाई झील (हुआंग एट अल., 2021), (j) गेंगगहाई झील (X.-Z. हुआंग एट अल., 2020) और (k) अवसाद प्रोफ़ाइल JXG2, किंगहाई झील द्रोणी (वेई एट अल., 2020) से किए गए अध्ययनों से; (l) एपिका डोम सी आइस कोर, अंटार्कटिका (लौलेर्ग्यू एट अल., 2008) से वायुमंडलीय मीथेन (CH_4) सांद्रता को दर्शाता है (लौलेर्ग्यू एट अल., 2008)।

इसके ज़रिए हम यह भी अंदाज़ा लगा सकते हैं कि उस समय वातावरण में मीथेन गैस (CH_4) कितनी मात्रा में निकल रही थी। हालांकि भारत में इस तरह का यह पहला अध्ययन है, लेकिन यह पुराने पर्यावरण को समझने और भारत के मध्य हिमालयी इलाके में जानवरों की चराई से जुड़े प्रभावों को जानने के लिए एक अच्छी शुरुआत मानी जा सकती है।

शोध पत्र का उद्धरण व लिंक- मोहम्मद फ़िरोज़ क़मर*, नागेंद्र प्रसाद, मनीषा एम. ईटी, पॉलरामासामी मोर्तेकाई, अनूप कुमार सिंह, ललित मोहन जोशी, बहादुर सिंह कोटलिया, ध्रुव सेन सिंह, मोहम्मद जावेद. 2025. लगभग 800 वर्षों तक पशुचारण की तीव्रता: रावतसेरा पुराझील तलछट प्रोफ़ाइल, मध्य हिमालय, भारत से गैर-पराग पैलिनोमोर्फ विश्लेषण. रिवियू ऑफ पलिओबोटनी एंड पैलिनोलॉजी 335, 105288। https://doi.org/10.1016/j.revpalbo.2025.105288

मोहम्मद फ़िरोज़ क़मर

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

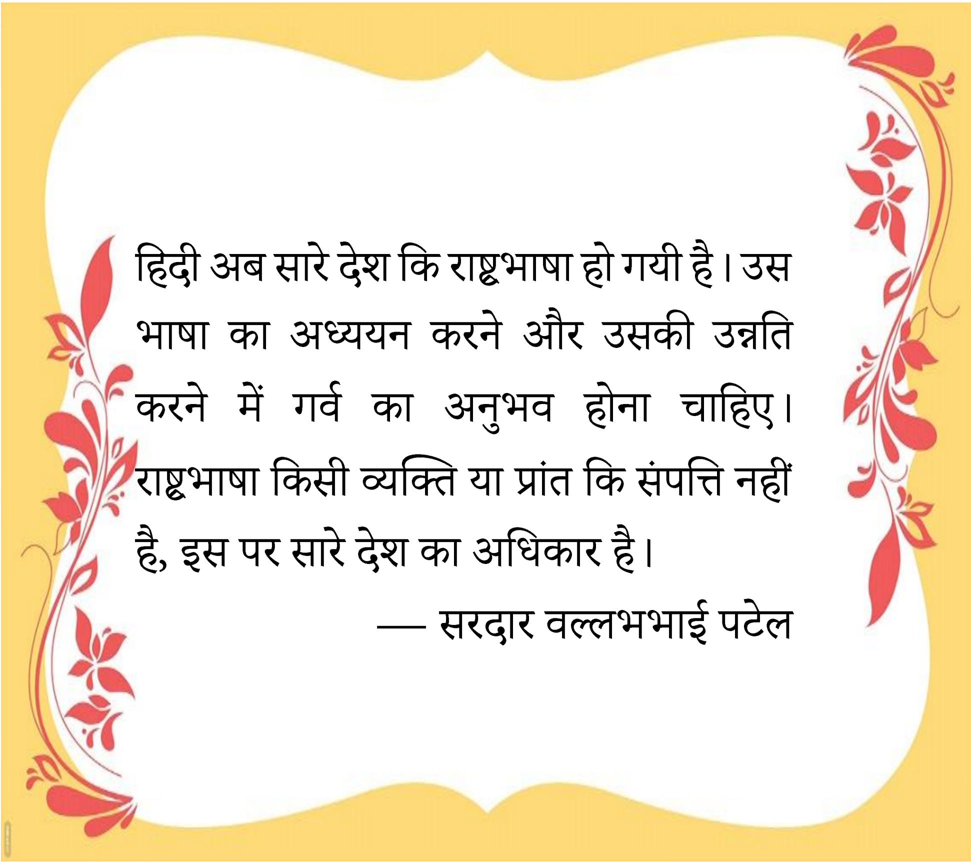

हिमालयी क्षेत्र में भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून: रेणुका झील में परागकणों के आधार पर 7500 वर्षों का जलवायु इतिहास

भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (ISM), भारतीय उपमहाद्वीप जलवायु की एक प्रमुख विशेषता है, जिसे मौसमी पवनों के व्यापक उलटफेर और इंटर-ट्रॉपिकल कन्वर्जेंस ज़ोन (ITCZ) से जुड़े उष्णकटिबंधीय वर्षा क्षेत्रों के स्थानांतरण द्वारा परिभाषित किया जाता है। यह वायुमंडल, महासागर और स्थलमंडल के बीच जटिल पारस्परिक क्रिया का परिणाम है, जो विभिन्न समय पैमानों पर कार्य करते हुए क्षेत्रीय जलवायु को प्रभावित करता है। एशियाई मानसून प्रणाली का अभिन्न हिस्सा होने के कारण, यह दैनिक, मौसमी, अंतरवर्षीय, दशकीय, शताब्दीय और सहस्राब्दीय स्तर पर व्यापक विविधता प्रदर्शित करता है। जून से सितंबर के बीच सक्रिय यह प्रणाली भारतीय उपमहाद्वीप की कुल वार्षिक वर्षा का लगभग 75–90% तक योगदान देती है।

होलोसीन युग, जो पृथ्वी के इतिहास के पिछले 11,700 वर्षों को समाहित करता है, प्राचीन जलवायु अनुसंधान के लिए एक महत्वपूर्ण अंतराल का निरूपण करता है। कई वैश्विक अभिलेखीय रिकॉर्डों के अनुसार, इस युग में जलवायु में तीव्र उतार-चढ़ाव— गर्म और शीतल अवधियों का अनुभव किया। इस स्थिर अंतर्हिमनदी युग ने मानव सभ्यताओं के विकास, क्रमविकास और उत्थान-पतन को देखा है।

प्रस्तुत अध्ययन उत्तर-पश्चिमी हिमालय के हिमाचल प्रदेश में स्थित सिरमौर जिले की रेणुका झील से प्राप्त परागकणों के आधार पर लगभग 7500 वर्ष पूर्व की प्राचीन जलवायविक परिस्थितियों का पुनर्निर्धारण करता है (चित्र 1 व 2)। साथ ही, इन प्रॉक्सी आंकड़ों की तुलना अर्थ सिस्टम पैलियोक्लाइमेट सिमुलेशन (ESPS) मॉडल से प्राप्त वर्षा अभिलेखों से की गई है।

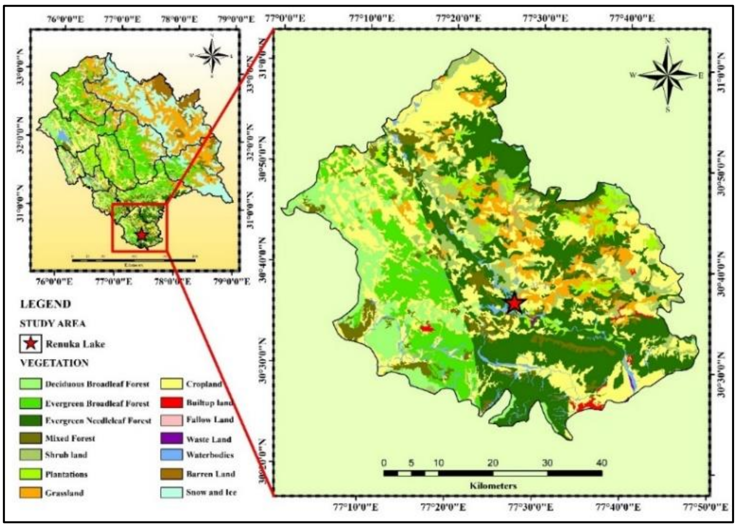

चित्र 1: रेणुका झील का परिदृश्य, जो चारों ओर से साल वनों से घिरा हुआ है। चित्र 2: अध्ययन क्षेत्र का वनस्पति मानचित्र

240 सेमी गहरी तलछटी ट्रेंच प्रोफाइल की जांच के माध्यम से, हमने *शोरिया रोबस्टा* (साल वृक्ष) और उनके सहयोगियों में जलवायु-प्रेरित प्रतिक्रियाओं की जांच की, उनके विकास, विस्तार और अस्थायी उतार-चढ़ाव पर ध्यान केंद्रित किया। यह शोध उत्तर-पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून की भूमिका को रेखांकित करता है और इसके प्रभाव से वनस्पति संरचना, पारिस्थितिकीय बदलाव और भू-दृश्य विकास के साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

रेणुका झील से प्राप्त पराग प्रॉक्सी डेटा लगभग 7500-4460 वर्ष पूर्व के दौरान तीव्र मानसूनी अवस्थाओं का संकेत देता है, जिसमें साल वृक्ष के विस्तार के साथ घने वनस्पति आवरण द्वारा इस चरण के दौरान गर्म और नम वातावरण का संकेत देता है। भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून का यह तीव्रीकरण होलोसीन क्लाइमेट ऑप्टिमम (HCO) के साथ संरेखित होता है।

लगभग 4460 और 3480 वर्ष पूर्व के बीच, साल वृक्ष के पराग कण की कम उपस्थिति ठंडी और शुष्क परिस्थितियों के साथ मेल खाती थी, जो सबसे कमजोर मानसूनी चरण का निरूपण करती थी। लगभग 3480-1965 वर्ष पूर्व से, मॉइस्ट डिसिड्यूअस वनस्पतियों के साथ साल वनों का पुनरावास ISM में सुधार के रुझान को दर्शाता था। क्षेत्र ने लगभग 1965-940 वर्ष पूर्व के दौरान अपेक्षाकृत मजबूत भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून परिस्थितियों का अनुभव किया, जिसे विविध नम पर्णपाती प्रजातियों के साथ-साथ साल वनों के पुनरुपस्थिति और तेज वृद्धि से चिह्नित किया गया। लगभग

940-540 वर्ष पूर्व से कमजोर मानसूनी परिस्थितियां प्रचलित थीं, जिसके बाद लगभग 540 वर्ष पूर्व से वर्तमान तक भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून का तीव्रीकरण हुआ।

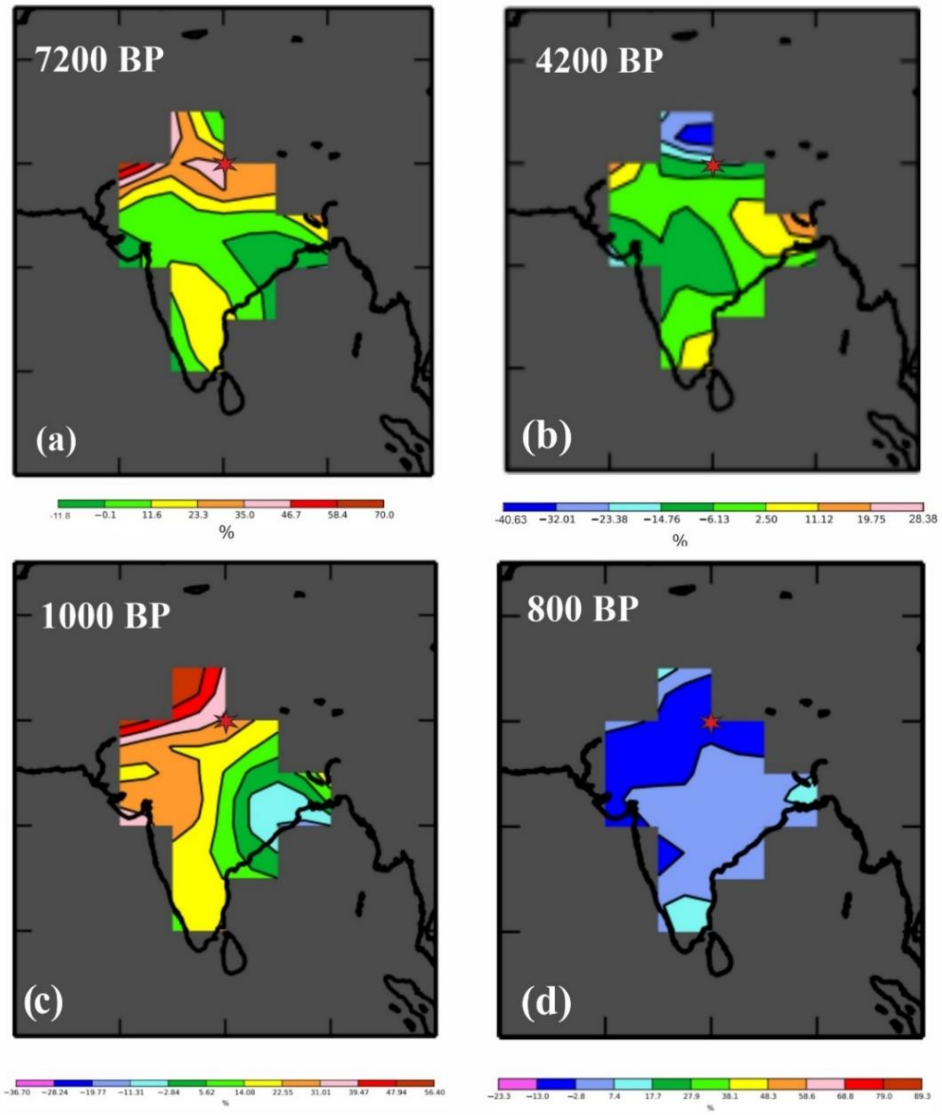

चित्र 3: ESPS मॉडल के माध्यम से भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून क्षेत्र के विभिन्न कालों का भूतपूर्व मानचित्रण

ESPS मॉडल (चित्र 3), जो लगभग 7500 वर्ष पूर्व से वर्तमान भारतीय ग्रीष्म मानसून की विविधताओं के उतार-चढ़ाव को दर्शाता है। यह लगभग 4460 से 3480 वर्ष पूर्व के दौरान एक गंभीर सूखे की अवस्था इंगित करता है, जो 4.2 हज़ार वर्ष पूर्व की (मेघालयन अवस्था) वैश्विक जलवायु घटना से संरेखित है। इसी प्रकार का समान जलवायविक पैटर्न दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के अन्य पुरा-जलवायविक अभिलेखों में भी दर्ज है।

शोध पत्र का उद्धरण व लिक - नाग, अ., त्रिवेदी, अ., फारूक़ी, अ., एवं मोर्थेकै, प. (2025). परागकण-आधारित फ़िंगरप्रिन्ट विश्लेषण द्वारा प्राचीन जलवायु संकेतों का अन्वेषण: उत्तर–पश्चिमी हिमालय, भारत में मध्य–पश्च होलोसीन जलवायु गतिकी की पुनर्निर्माण। क्वाटरनरी,8(1),6. https://doi.org/10.3390/quat8010006

अनुपम नाग एवं अंजलि त्रिवेदी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

निचले गंगा मैदानों में लौह युगीन पुराआहार संस्कृति: उरेन, लखीसराय, बिहार से एक पुरातात्विक अध्ययन

भारत के इतिहास और पुरातत्व में गंगा के मैदान का एक विशिष्ट स्थान है। गंगा के मैदान को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया गया है: (i) ऊपरी गंगा का मैदान, (ii) मध्य गंगा का मैदान, (iii) निचला गंगा का मैदान। गंगा का मैदान पुरातात्विक वनस्पति विज्ञान संबंधी अध्ययनों के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है क्योंकि इसमें कई पुरातात्विक स्थल हैं और यह वह क्षेत्र था जहाँ भारत में दूसरा शहरीकरण उभरा था। पुरातात्विक स्थल से कार्बनयुक्त अवशेष ऐसे साक्ष्य प्रदान कर सकते हैं जो प्रागैतिहासिक काल के दौरान संस्कृति-जलवायु- जीवन निर्वाह संबंध को समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं। पिछले कुछ दशकों के दौरान भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उत्खनन से प्राप्त फसल अवशेषों पर धीरे-धीरे बढ़ते डेटाबेस ने यह सुनिश्चित किया है कि देशी फसलों के अलावा, भूमध्यसागरीय, मध्य एशियाई, अफ्रीकी और यूरेशियन के जीवन निर्वाह संसाधनों के प्रकारों में निरंतर और पर्याप्त विस्तार ने प्रारंभिक कृषक समुदायों की अर्थव्यवस्था में गतिशीलता पैदा की है पुरातत्वविदों, पुरातत्व वनस्पतिशास्त्रियों और वैज्ञानिकों के बीच पिछले पांच सहस्राब्दियों के दौरान मौजूद सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक और पर्यावरणीय स्थितियां रुचि का विषय हैं। निचले गंगा मैदान (बिहार) के जलोढ़ मैदानों में नवपाषाण काल से लेकर अब तक की कई प्राचीन आवासीय बस्तियां प्रकाश में आई हैं। इस क्षेत्र में नवपाषाण और ताम्रपाषाण संस्कृतियों को 2500-1500 ईसा पूर्व के सामान्य समय-वर्ग में रखा जा सकता है। नवपाषाण-ताम्रपाषाण वासियों की खाद्य अर्थव्यवस्था में अनाज, दालें, तेल और फाइबर देने वाली फसलें शामिल हैं, जिनका उल्लेख उत्तर-पश्चिमी भारत के सिंधु/हड़प्पा स्थलों से मिलता है। गेहूं, जौ, मसूर, मटर, चना, खेसरी दाल, अलसी, कुसुम आदि का पूर्व की ओर प्रवास, बिहार के नवपाषाण-ताम्रपाषाण किसानों के उत्तर-पश्चिमी भारत (सिंधु क्षेत्र) की संस्कृतियों के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क का सुझाव देता है। बिहार के नवपाषाण काल के संदर्भ में इन हड़प्पा/सिंधु पोषक लक्षणों के फैलाव के मार्ग को भविष्य में ऊपरी और मध्य गंगा के मैदान में अधिक आशाजनक स्थलों के साथ समझा जा सकता है। दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व के अंत में, लोहे की खोज अब तक का सबसे महत्वपूर्ण कारक था जिसने भारतीय उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक उन्नति के एक नए युग की शुरुआत की। सारण जिले में घाघरा के तट पर मांझी में उत्खनन से लोहे का उपयोग करने वाले ब्लैक स्लिप्ड वेयर (BSW)और उत्तरी ब्लैक पॉलिश्ड वेयर(NBPW) से संस्कृतियों के व्यावसायिक चरणों का पता चला है। इस स्थल पर उत्तरी ब्लैक पॉलिश्ड वेयर(BSW) संस्कृति (लगभग 600-200 ईसा पूर्व) से *ओराइजा सैटिवा* (चावल), *होर्डियम वल्गेर* (जौ), *ट्रिटिकम एस्टिवम* (ब्रेड गेहूं), *विग्ना रेडिएटा* (हरा-चना) और *पाइसम सेटाइवम* (मटर) के खाद्यान्न के साक्ष्य मिले हैं। अभी तक लौह युग से लेकर ऐतिहासिक काल तक निचले गंगा मैदान से पौधों की अर्थव्यवस्था के बारे में जानकारी पर्याप्त नहीं है। उत्खनन के दौरान पुरातात्विक स्थलों से सामग्री का व्यवस्थित संग्रह और उत्खनन में शामिल संस्थानों के सहयोग से झील के तलछटी जमाव से पिछले 3000 वर्षों के दौरान संस्कृति-जलवायु-निर्वाह के बारे में हमारा ज्ञान समृद्ध होगा, जिसमें प्रमुख वैश्विक जलवायु घटनाएँ जैसे रोमन गर्म अवधि (RWP), मध्यकालीन गर्म अवधि (MCA) और छोटा हिमयुग (LIA) शामिल हैं।

निर्वाह पैटर्न को समझने के लिए, वर्तमान अध्ययन आधुनिक गांव उरेन (अक्षांश 25°10'3''N; देशांतर 86°13'11''E) में किया गया है, (चित्र 1a) जो वैश्विक जलवायु घटनाओं के संबंध में बिहार की राजधानी पटना से 160 किमी दूर और लखीसराय, जिले से 30 किमी दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। उरेन उत्तर में गंगा के सक्रिय जलोढ़ मैदानों और दक्षिण-दक्षिणपूर्व में स्थित है। वर्तमान बस्ती एक टीले के ऊपर बसी है जो इस साइट के पूर्ववर्ती आवासीय अवशेषों को सफलतापूर्वक छिपा रही है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की उत्खनन शाखा III, पटना ने वर्ष 2016-17 और 2017-18 में खुदाई की। काले और लाल बर्तन, काले चिकने बर्तन, उत्तरी काले पॉलिश वाले बर्तन, और संबंधित बर्तन जैसे लाल पॉलिश वाले बर्तन, चॉकलेट स्लिप वाले लाल बर्तन, सादे भूरे रंग के बर्तन, पतली काली स्लिप वाले भूरे रंग के बर्तन और टोंटी वाले बर्तन अध्ययन साइट पर स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

a

b

(चित्र 1a) उरेन पुरातात्विक स्थल पर उत्खनन अध्ययन स्थल।, (चित्र 1b) उरेन गांव का सामान्य दृश्य जिसमें पुरातात्विक स्थल दिखाया गया है।

टीले की चारों दिशाओं में और केंद्रीय ऊंचे हिस्से में खाइयों का लेआउट रखा गया था। तदनुसार, प्रत्येक क्षेत्र को यूआरएन I, यूआरएन II, यूआरएन III, यूआरएन IV और यूआरएन V के रूप में नामित और क्रमांकित किया गया था, जिस क्रम में खुदाई शुरू की गई थी । यह एक बहु-संस्कृति स्थल है जिसमें (अवधि I) बीआरडब्ल्यू-संबंधित गैर-धात्विक ग्रामीण बस्ती, (अवधि II) लोहे के साथ बीआरडब्ल्यू सांस्कृतिक संदर्भ को प्रमाणित करने के लिए, लकड़ी का कोयला और अनाज के नमूनों को इंटर-यूनिवर्सिटी एक्सेलेरेटर सेंटर, दिल्ली (IUAC) और डायरेक्ट-AMS, USA (D-AMS) में AMS रेडियोकार्बन डेटिंग विधि द्वारा दिनांकित किया गया था

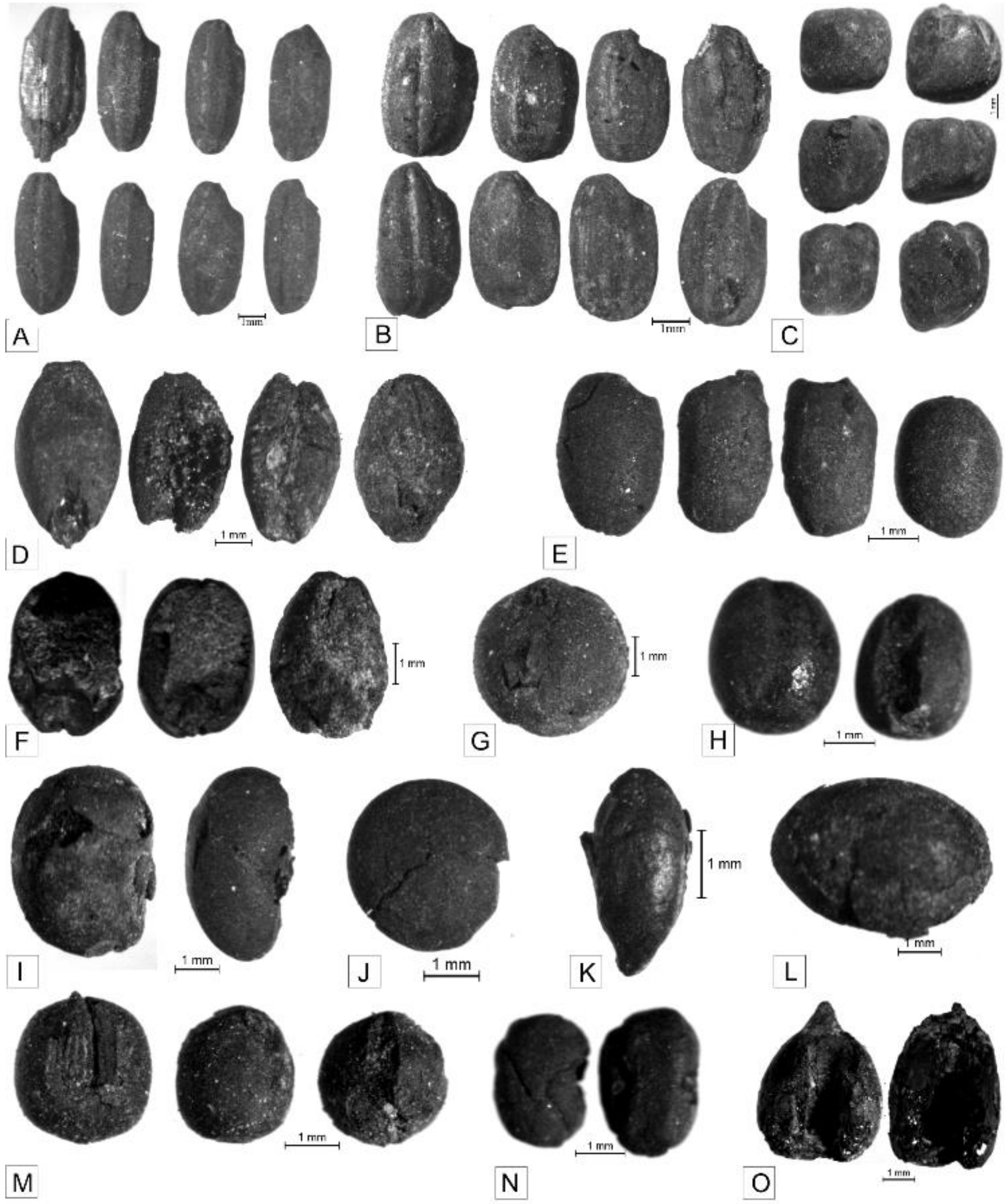

(चित्र 2) उरेन से दर्ज की गई खेती की गई फसलें और जंगली प्रजातियां: a और b. ओराइजा सैटिवा (चावल), c. लैथिरस सैटिवस खेसरी दाल), d. होर्डियम वल्गेरे (जौ), e. विग्ना रेडिएटा (मूंग), f. ट्रिटिकम एस्टिवम (गेहूं), g. पाइसम सेटाइवम (मटर), h. विग्ना मुंगो (उर्द), i. मैक्रोटिलोमा यूनिफ्लोरम (कुलथी दाल) j. लेंस कुलिनेरिस (मसूर), k. लिनम यूसिटाटिसिमम (अलसी), l. गॉसिपियम आर्बोरियम/हर्बेसियम (कपास), m. विसिया सैटिवा (कॉमन वेच), n. ट्रेडेस्कैंटिया, o. कोइक्स लैक्रिमा-जॉबी (जॉब्स टियर्स)।

URN III मुख्य सूचकांक ट्रेंच साबित हुआ (चित्र 1b) क्योंकि इसने एक पूर्ण और अखंड अनुक्रम का खुलासा किया। यह संरचनात्मक अवशेषों के साथ-साथ पुरावशेषों और मिट्टी के बर्तनों की परंपराओं दोनों में बेहद समृद्ध था। 15.35 मीटर का संपूर्ण सांस्कृतिक निक्षेप16 परतों में विभाजित किया गया था। खाई में सबसे पहला निक्षेप क्षेत्र से पता चला था क्योंकि वास्तविक खुदाई के तहत क्षेत्र ऊपरी निक्षेप में संरचनात्मक अवशेषों की उपस्थिति के कारण काफी निर्मित हो गया था। सीमित क्षेत्र के बावजूद इस सांस्कृतिक जमाव की मोटाई लगभग 2.50 मीटर थी। इससे पता चलता है कि इस समय तक उरेन में बसे लोगों ने लोहे की कारीगरी में दक्षता हासिल कर ली थी। इसके शीर्ष पर लगभग 2.0 मीटर मोटा NBPW है। इस स्तर से आगे तांबे की पहली वस्तुएँ भी पाई जाती हैं। ईंट की संरचना कुषाण काल में पहली बार दिखाई देती है। कुशाण काल के सांस्कृतिक जमावों की पहचान क्रूसिबल के साथ जले हुए फर्श के साक्ष्य से होती है। इसके ठीक ऊपर गुप्त काल का सांस्कृतिक जमाव है। गुप्त काल का आंशिक रूप से उजागर संरचनात्मक परिसर एक अन्न भंडार के रूप में कार्य करता हुआ प्रतीत होता है। एक दीवार वाले घेरे से बड़ी मात्रा में जले हुए अनाज पाए गए। पाल काल के संरचनात्मक अवशेषों के साथ खाई समाप्त हो गई।

उत्खनन के दौरान, क्षेत्र में अवधि I से अवधि VI तक कार्बनयुक्त अवशेषों के लिए जल प्लवन/गीले छलनी तकनीक द्वारा लगभग 200 तैरते नमूने एकत्र किए गए थे। जल प्लवन/गीले छलनी में, कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थों के घनत्व में अंतर का उपयोग मिट्टी के मैट्रिक्स से कार्बनिक अवशेषों को अलग करने के लिए किया जाता है, जो उत्खनन के दौरान वनस्पति सामग्री की मात्रा और सीमा दोनों को बहुत बढ़ाता है। ट्रेंच URN III से प्रारंभिक जांच के लिए नमूनों को स्टीरियो-दूरबीन माइक्रोस्कोप (Leica Z6APO) के तहत छांटा गया और फोटो-दस्तावेजीकरण किया गया। संदर्भ सामग्री और प्रकाशित डेटा का उपयोग करके रूपात्मक विशेषताओं के आधार पर कार्बनयुक्त बीजों की पहचान की गई।

प्रारंभिक जांच से अनाज (जौ, गेहूं, चावल); दालें (खेसरी दाल, मटर, हरा चना/काला चना, कुलथी, मसूर); तेल के बीज (अलसी); फाइबर देने वाले पौधे (कपास) के साथ-साथ खरपतवार और जंगली टैक्सा का मिश्रण सामने आया है (चित्र 2)। उरेन से अब तक दर्ज फसल अवशेषों से पता चलता है कि दोहरी फसल पद्धति प्रचलित थी, जो निचले गंगा के मैदान में नवपाषाण-ताम्रपाषाण काल से निरंतरता का अनुमान लगाती है। बहुविषयक अनुसंधान दृष्टिकोण जिसमें मैक्रोरेमेन, पराग और समस्थानिक विश्लेषण शामिल हैं, का उपयोग पुराजलवायु-समाज संबंध को समझने के लिए साइट पर किया जाना है। जांच का उद्देश्य विभिन्न सांस्कृतिक चरणों के दौरान पुरातात्विक रिकॉर्ड में दिखाई देने वाले पौधों की पहचान करना है ताकि निर्वाह अर्थव्यवस्था (पुरापाषाण आहार) की प्रकृति को समझा जा सके और मैक्रोरेमेन के आधार पर जलवायु परिवर्तनशीलता के जवाब में पौधों में अस्थायी विविधताओं को स्पष्ट किया जा सके। ट्रेंच प्रोफ़ाइल से प्राप्त पराग और समस्थानिक डेटा का उपयोग सांस्कृतिक विकास के विभिन्न चरणों के दौरान पुरापारिस्थितिकी, पुरावनस्पति और पुरापर्यावरण को समझने के लिए किया जाएगा। बहुविषयक दृष्टिकोण हमें सांस्कृतिक संदर्भ में जलवायु परिवर्तन के जवाब में पौधे-आधारित निर्वाह रणनीतियों पर समृद्ध करेगा। इसके अलावा, वर्तमान अध्ययन पिछले 3000 वर्षों के दौरान फसल के बारे में हमारे ज्ञान में मौजूदा अंतर को भर देगा।

संबन्धित शोध पत्र का उद्धरण - यादव, आर., श्रीवास्तव, ए., भट्टाचार्य, जी., मिश्रा, एन., और पोखरिया, ए. के. (2024)। कार्बनयुक्त बीजों से अंतर्दृष्टि: निचले गंगा मैदान में कृषि प्रणालियाँ (3000 वर्ष ईसा पूर्व)। करेंट साइंस (00113891), 127(12)।

रुचिता यादव

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

हिंदी जैसी सरल भाषा दूसरी नहीं है।

—मौलाना हसरत मोहानी

भारतीय उपमहाद्वीप में जलवायु परिवर्तन के अतीत और भविष्य परिदृश्यों के संदर्भ में *टेकोमेला अंडुलाटा* की संभावित पारिस्थितिक प्रतिक्रिया का मॉडलिंग अध्ययन

शुष्क भूमि की पारिस्थितिकी बहुत नाजुक होती है। हाल ही में, जलवायु परिवर्तन और मानवीय हस्तक्षेप के कारण इस पारिस्थितिकी में भारी बदलाव आया है। लंबे समय तक सूखा रहने और अनियमित वर्षा ने इस क्षेत्र के कृषि-पशुपालक समुदाय और जैव विविधता को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है, जिससे उनके लिए अनुकूलन करना मुश्किल हो गया है। हम *टेकोमेला अंडुलता* का चयन कर इस पारिस्थितिकी का विश्लेषण करना चाहते हैं। *टेकोमेला अंडुलता* जो एक लुप्तप्राय शुष्क भूमि का पेड़ है जिसे स्थानीय रूप से 'रेगिस्तानी सागौन', 'मारवाड़ सागौन' या 'रोहिड़ा' के नाम से जाना जाता है (चित्र 1) ।

चित्र1.राजस्थान के जालोर जिले में स्थित टेकोमेला अंडुलेटा का पेड़

यह पेड़ शुष्क भूमि पारिस्थितिकी तंत्र में एक प्रमुख प्रजाति है। यह पेड़ विभिन्न जलवायु चरम सीमाओं, जैसे कठोर तापमान, कम वर्षा और लंबे समय तक सूखे के अनुकूल हो सकता है। यह पेड़ इस क्षेत्र में सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण है और लोगों के दैनिक जीवन का हिस्सा है। महाभारत जैसे कई भारतीय महाकाव्यों में इसका उल्लेख है। यह मवेशियों के लिए चारा, जलाऊ लकड़ी, इमारती लकड़ी और औषधीय उत्पाद प्रदान करता है। यह जंगली जानवरों के लिए आश्रय और भोजन प्रदान करता है, फफूंद संघों का निर्माण करके मिट्टी की उर्वरता बनाए रखता है और रेगिस्तानीकरण को नियंत्रित करने में मदद करता है। यह पेड़, जो कभी भारत के शुष्क क्षेत्रों में आम तौर पर पाया जाता था, वर्तमान में संकटग्रस्त है। यह अब केवल उत्तर-पश्चिमी भारत, सौराष्ट्र और तमिलनाडु के दक्षिणी तट के शुष्क क्षेत्रों में है। वर्तमान में, इस प्रजाति के लिए संरक्षित क्षेत्र सीमित हैं, जिसमें भारत के राजस्थान के जालोर जिले में अकोली गाँव (25.183717 N, 72.500933 E) के पास एकमात्र संरक्षण केंद्र है। इसके वितरण में कमी से क्षेत्र की पारिस्थितिकी पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा क्योंकि यह एक प्रमुख प्रजाति है। यह रेगिस्तानी क्षेत्रों में मवेशियों के चारे, स्थानीय फर्नीचर उद्योग के लिए कच्चे माल और पारंपरिक औषधीय प्रथाओं में कमी के रूप में कृषि-पशुपालन समुदाय को भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा।

हमारे अध्ययन में, हमने विश्लेषण किया कि अतीत में पौधे का वितरण कैसे बदला और यह भविष्य में जलवायु परिवर्तन पर कैसे प्रतिक्रिया देगा। अध्ययन ने हमें इसके वितरण को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण पर्यावरणीय कारकों को समझने में मदद की। हमारे अध्ययन में प्रजाति वितरण मॉडलिंग (SDM) और जीवाश्म पराग डेटा का उपयोग किया गया। SDM पर्यावरणीय कारकों और प्रजातियों की घटना के आंकड़ों पर आधारित था। SDM का उपयोग करते हुए, हमने 22,000 साल पहले तक पेड़ के वितरण की भविष्यवाणी की, जब कोई महत्वपूर्ण मानव उपस्थिति नहीं थी। इसने दिखाया कि अतीत में प्रजातियों का वितरण सीमित था क्योंकि वर्तमान की तुलना में जलवायु अधिक स्थिर, शुष्क और ठंडी थी।

अनियमित वर्षा के साथ शुष्क भूमि का तापमान धीरे-धीरे बढ़ा, जिससे *टेकोमेला अंडुलेटा* का वितरण बढ़ गया। जीवाश्म पराग रिकॉर्ड का उपयोग करके इन भविष्यवाणियों को सत्यापित किया जाता है। भविष्य की भविष्यवाणियों से उत्तर-पश्चिमी भारत और सौराष्ट्र में इसके वितरण में वृद्धि का संकेत मिलता है। यह मानसून के दौरान बढ़े हुए तापमान और भविष्य में अनियमित वर्षा के पैटर्न के कारण होगा। यह दर्शाता है कि यदि पौधे के साथ मानवीय हस्तक्षेप को नियंत्रित किया जाता है, तो पौधा भविष्य में अनुकूल जलवायु के तहत अपने वितरण को बढ़ाएगा। इसलिए, अध्ययन से पता चलता है कि संरक्षण प्रयासों में मानवीय हस्तक्षेप को सीमित करने और प्रजातियों के जीवित रहने के लिए संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना पर अधिक ध्यान

केंद्रित किया जाना चाहिए। उत्तर-पश्चिमी भारत और सौराष्ट्र के संरक्षित क्षेत्रों को भी *टेकोमेला अंडुलेटा* के आवासों को मानवीय हस्तक्षेप से बचाने पर अधिक ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

शोध पत्र का उद्धरण व लिंक- थम्पन, जे., श्रीवास्तव, जे., सराफ, पी.एन. और सामल, पी., 2025. जलवायु परिवर्तन के तहत एक लुप्तप्राय शुष्क भूमि वृक्ष *टेकोमेला अंडुलाटा* के लिए उच्च संरक्षण मूल्य वाले क्षेत्रों की पहचान हेतु आवास वितरण मॉडलिंग। जर्नल ऑफ एरिड एनवायरनमेंट्स, 227, 105317. https://doi.org/10.1016/j.jaridenv.2025.105317

जेरीम तम्पान एवं ज्योति श्रीवास्तव

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

यदि आप किसी व्यक्ति से उसकी समझ में आने वाली भाषा में बात करते हैं, तो वह उसके दिमाग पर हावी हो जाती है। यदि आप उनसे उनकी भाषा में बात करते हैं, तो वह उनके दिल तक पहुँचती है।

— नेल्सन मंडेला

भाषा आत्मा का रक्त है जिसमें विचार प्रवाहित होते हैं और जिससे वे विकसित होते हैं।

— ओलिवर वेंडेल होम्स

लद्दाख के ऊँचाई वाले गर्म जलस्रोतों से प्राप्त औषधीय जैव सक्रिय यौगिकों का संक्षिप्त अध्ययन

गर्म जलस्रोत (Hot Springs) प्राकृतिक रूप से औषधीय गुणों से भरपूर होते हैं और पारंपरिक चिकित्सा में इनका उपयोग त्वचा रोग, गठिया, मांसपेशीय दर्द और तनाव कम करने के लिए किया जाता रहा है। भारत के लद्दाख क्षेत्र में स्थित ऊँचाई वाले गर्म जलस्रोत, अपनी भौगोलिक विशिष्टता और खनिजों के साथ-साथ जैव सक्रिय यौगिकों की उपस्थिति के कारण वैज्ञानिक रुचि का केंद्र बन रहे हैं।

अब तक हुए अधिकतर अध्ययन खनिज तत्वों (सल्फर, मैग्नीशियम, पोटैशियम, कैल्शियम आदि) पर केंद्रित रहे हैं, जबकि इन जलस्रोतों में घुले जैविक यौगिकों की औषधीय क्षमता पर कम ध्यान दिया गया है। इसी दिशा में हमने चुमाथांग, पनामिक, पुगा और चांगलुंग (चित्र 1 और चित्र 2) जैसे प्रमुख जलस्रोतों से पानी के नमूने एकत्र कर GC-MS/MS तकनीक से विश्लेषण किया। इस विश्लेषण से 27 जैव सक्रिय यौगिकों की पहचान हुई, जिनमें कई ऐसे हैं जो पहले से दवाओं और कॉस्मेटिक उत्पादों में प्रयुक्त हो रहे हैं। इन यौगिकों में सूजनरोधी, एंटीऑक्सीडेंट, तंत्रिका-संरक्षक और संक्रमण-रोधी गुण पाए गए हैं। कुछ प्रमुख यौगिकों के उदाहरण इस प्रकार हैं:

- 13-Docosenamide (Z): सूजनरोधी व न्यूरोप्रोटेक्टिव
- n-Hexadecanoic acid: त्वचा सुरक्षा और चयापचय नियंत्रण
- 2,4-Di-tert-butylphenol: एंटीऑक्सीडेंट
- Ascorbic acid ester: त्वचा स्वास्थ्य व कोलेजन उत्पादन
- Docosyl pentafluoropropionate: संक्रमण और सूजन नियंत्रण

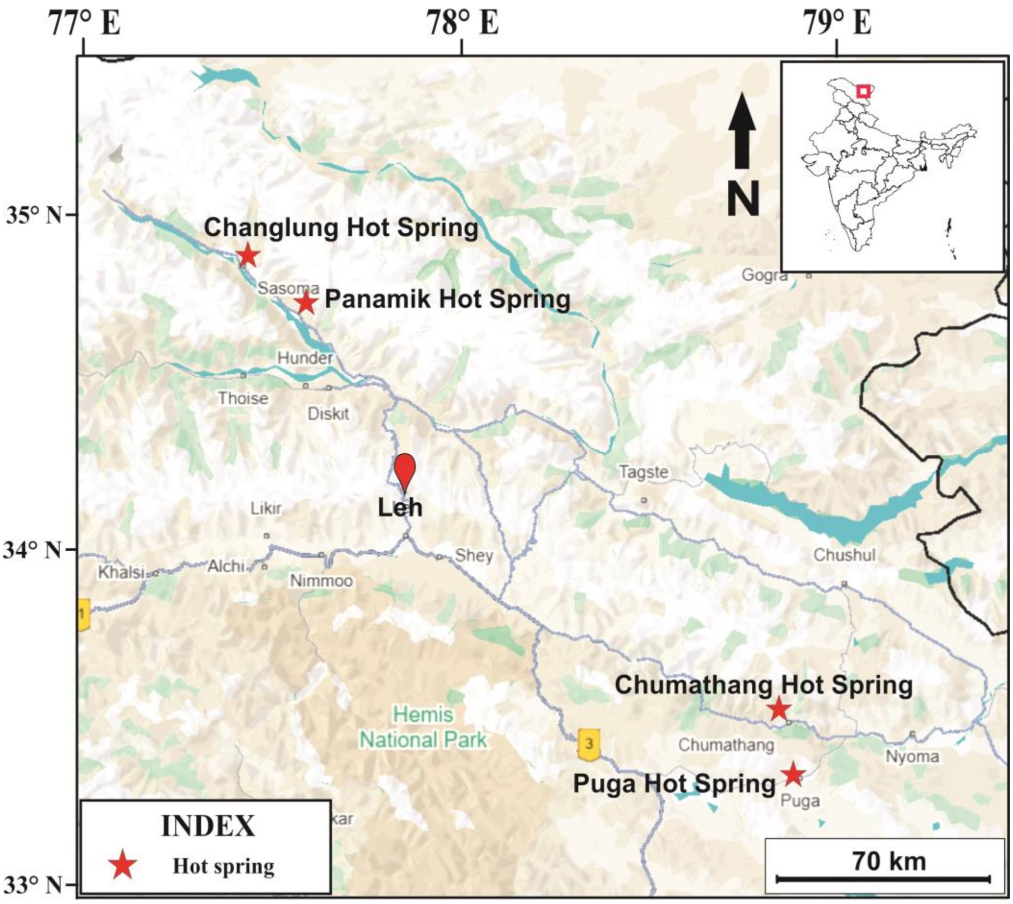

चित्र 1. भारत के लद्दाख क्षेत्र में अध्ययन किए गए गर्म जलस्रोत स्थलों को दर्शाता हुआ मानचित्र।

चित्र 2. तस्वीरें: a) चांगलुंग का गर्म जलस्रोत, b) पनामिक का गर्म जलस्रोत, c) पुगा का गर्म जलस्रोत, d) चुमाथांग का गर्म जलस्रोत।

शेष रूप से चुमाथांग और पनामिक जलस्रोतों में एस्टर, एल्कोहल और कार्बोक्सिलिक अम्ल जैसे यौगिकों की अधिक सांद्रता पाई गई, जो त्वचा रोगों और तनाव के उपचार में सहायक हो सकते हैं।

संभावित लाभ और आगे की दिशा

इन यौगिकों के चिकित्सीय प्रभावों में शामिल हैं:

- सूजन में कमी (Anti-inflammatory)
- कोशिकीय सुरक्षा (Antioxidant)
- मस्तिष्क रक्षा (Neuroprotective)
- संक्रमण नियंत्रण (Antimicrobial)
- त्वचा की मरम्मत व कोलेजन निर्माण

हालाँकि ये परिणाम आशाजनक हैं, लेकिन इन यौगिकों की वास्तविक चिकित्सीय प्रभावकारिता जानने के लिए और अनुसंधान आवश्यक हैं। विशेष ध्यान इन पहलुओं पर देना होगा:

- विषाक्तता और जैव उपलब्धता का मूल्यांकन
- कोशिकीय व पशु मॉडल पर प्रयोग
- नैदानिक परीक्षण (Clinical Trials)
- निष्कर्षण विधि व सुरक्षित खुराक निर्धारण

लद्दाख की पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली 'सोवा रिग्पा' पहले से इन जलस्रोतों का उपयोग उपचार के लिए करती आ रही है। वैज्ञानिक अध्ययन इस परंपरागत ज्ञान को आधुनिक प्रमाणों से जोड़ने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यदि यह प्रमाणित होता है कि ये यौगिक सुरक्षित व प्रभावी हैं, तो लद्दाख एक प्राकृतिक औषधीय प्रयोगशाला के रूप में उभर सकता है। इससे नई दवाओं, कॉस्मेटिक उत्पादों और स्वास्थ्य पूरकों के विकास की संभावनाएँ

बढ़ेंगी और स्थानीय समुदायों के सतत विकास को भी बल मिलेगा।

निष्कर्ष

लद्दाख के उच्च हिमालयी गर्म जलस्रोत केवल खनिज तत्वों के लिए नहीं, बल्कि औषधीय जैव यौगिकों के लिए भी महत्त्वपूर्ण हैं। यदि इन यौगिकों पर समर्पित अनुसंधान किया जाए, तो यह न केवल चिकित्सा विज्ञान में नई दिशाओं की शुरुआत करेगा, बल्कि पारंपरिक ज्ञान की वैज्ञानिक मान्यता भी सुनिश्चित करेगा। इससे न केवल नई दवाओं का विकास, बल्कि स्थानीय समुदायों का आर्थिक सशक्तिकरण, और पारंपरिक चिकित्सा की पुनर्स्थापना संभव हो सकेगी। साथ ही, यह एक उदाहरण बन सकता है कि कैसे स्थानीय जैव-संसाधनों का सतत उपयोग और वैज्ञानिक दोहन समाज के लिए लाभकारी हो सकता है।

शोध पत्र का उद्धरण व लिक - अंसारी, ए. एच., अंसारी, एन. जी., दास, ए., सोनकर, ए., और अंसारी, एम. ए. (2025)। लद्दाख के उच्च ऊँचाई वाले गर्म झरनों में औषधीय गुणों वाले घुले हुए जैवसक्रिय यौगिकों पर एक रिपोर्ट।DOI: 10.21203/rs.3.rs-7082550/v1

डॉ. आरिफ हुसैन अंसारी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

> मेरा नम्र, लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम हिदी को राष्ट्रीय दर्जा और अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज्य की सारी बातें निरर्थक हैं।
>
> — महात्मा गांधी

तकनीकी लेख

बोरिंग बिलियन (1.8 से 0.8 अरब वर्ष पूर्व) और प्रारंभिक जटिल जीवन का विकास की खोज

पूर्व-कैम्ब्रियन इतिहास में, प्रोटेरोज़ोइक युग (2500 मिलियन वर्ष पूर्व – 538.8 मिलियन वर्ष पूर्व) पृथ्वी के इतिहास का लगभग 85% हिस्सा समेटे हुए है और पृथ्वी के विकासात्मक चरण में नाटकीय परिवर्तनों को समेटे हुए है। इसमें 'महामहाद्वीपों' (सुपरकॉन्टिनेंट्स) के बार-बार जुड़ने और टूटने समुद्री और वायुमंडलीय संरचना में भारी परिवर्तन, बहुकोशिकीय जीवन के उदय, उनका जैविक विकास, फैनरोज़ोइक काल की प्लेट टेक्टोनिक्स की बढ़ती महत्ता और ऊपरी भूपर्पटी संरचना में प्रमुख परिवर्तन शामिल हैं, जो पृथ्वी पर जटिल जीवन के प्रसार से ठीक पहले हुए। लगभग एक अरब वर्ष (1.8 से 0.8 अरब वर्ष पूर्व) का यह कालखंड बोरिंग बिलियन, जिसे मध्य प्रोटेरोज़ोइक या पृथ्वी का मध्ययुग भी कहा जाता है, एक अनौपचारिक भौमिकीय कालखंड है जो 1.8 से 0.8 अरब वर्ष पूर्व (Ga) के बीच, प्रोटेरोज़ोइक महाकल्प के मध्य भाग में आता है। इस अवधि की विशेषता टेक्टोनिक स्थिरता, जलवायुगत स्थिरता और जैविक विकास की धीमी गति थी। हालाँकि यह दो अलग-अलग ऑक्सीजनीकरण घटनाओं (बृहद ऑक्सीकरण घटना (GOE) और नियोप्रोटेरोज़ोइक ऑक्सीजनीकरण घटना (NOE) और दो वैश्विक हिमयुगों (ह्यूरोनियन और क्रायोजेनियन हिमयुग) के बीच स्थित है, लेकिन बोरिंग बिलियन काल में स्वयं ऑक्सीजन का स्तर बहुत कम था और हिमयुग का कोई भौमिकीय प्रमाण नहीं मिलता है। 1995 में, भूवैज्ञानिकों रॉजर बुइक, डेविस डेस मारैस और एंड्रयू नोल ने मेसोप्रोटेरोज़ोइक युग (1.6 से 1 अरब वर्ष पूर्व) के दौरान प्रमुख जैविक, भूवैज्ञानिक और जलवायवीय घटनाओं की स्पष्ट कमी की समीक्षा की और इसे पृथ्वी के इतिहास का सबसे नीरस समय बताया।

बोरिंग बिलियन शब्द पैलियोन्टोलॉजिस्ट मार्टिन ब्रैसियर द्वारा गढ़ा गया था, जिससे लगभग 2 से 1 अरब वर्ष पूर्व के उस काल को संदर्भित किया गया जो भूरासायनिक स्थिरता और हिमाच्छादन की ठहराव जैसी विशेषता वाला था। ब्रेज़ियर और लिंडसे (1998) ने भी 2000 मिलियन वर्ष पूर्व से 1000 मिलियन वर्ष पूर्व के बीच $\delta^{13}C$ के स्थिर प्रवृत्ति को पहचाना और इस अवधि को पर्यावरणीय स्थिरता का कालांतर बताया। हाल ही में इसे बैरन बिलियन भी कहा गया है, जो प्रमुख हिमयुगों की कमी को दर्शाता है। इससे भी पहले, 1600 मिलियन वर्ष पूर्व से 1000 मिलियन वर्ष पूर्व की अवधि को डल्स्ट पीरियड कहा गया था, जो पर्यावरणीय, जैविक या भौमिकीय घटनाओं की कमी को दर्शाता है। 2013 में, भूरसायनिक ग्रांट यंग ने बैरन बिलियन शब्द का प्रयोग 1.8 से 0.8 अरब वर्ष पूर्व के उस कालखंड के लिए किया जिसमें हिमाच्छादन की ठहराव और कार्बन आइसोटोप विचलनों का अभाव था। 2014 में, भूवैज्ञानिक पीटर कावुड और क्रिस हॉक्सवर्थ ने 1.7 से 0.75 अरब वर्ष पूर्व के बीच के समय को पृथ्वी का मध्ययुग कहा क्योंकि इस दौरान टेक्टोनिक गतिविधियों के साक्ष्यों का अभाव था। यह पर्यावरणीय स्थिरता की एक अवधि द्वारा चिह्नित है, जिसमें सल्फाइडिक महासागर, महामहाद्वीप नूना का विघटन और उसके बाद महामहाद्वीप रोडिनिया का गठन, जलवायु, विकासात्मक और स्थलमंडलीय स्थिरता शामिल हैं।

इस अवधि को कभी-कभी पृथ्वी के इतिहास की सबसे नीरस अवधि भी कहा जाता है, क्योंकि उत्तर-पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के बैंगमॉल समूह के समुद्री कार्बोनेट्स में कार्बन आइसोटोप के मान बहुत कम पाए गए। मेसोप्रोटेरोज़ोइक चट्टानों के समुद्री कार्बोनेट्स से प्राप्त $\delta^{13}C$ आइसोटोप मानों में बहुत कम भिन्नता देखी गई, जिसका औसत मान –0.5‰ था। पूर्व-कैम्ब्रियन समय सारणी में 'बोरिंग बिलियन' अवधि (1800 मिलियन वर्ष पूर्व – 800 मिलियन वर्ष पूर्व) का आरेखीय चित्रण चित्र 1 में दिखाया गया है। समुद्री अवसादी चट्टानों के भू-रासायनिक अध्ययन से पता चलता है कि इस समय वायुमंडल और महासागर में ऑक्सीजन का स्तर बहुत कम (<0.1% PAL) था। हालाँकि, कुछ अनुमानों के अनुसार pO2 में 1-40% PAL तक का उतार-चढ़ाव था, जो यूकेरियोट्स के विकास के लिए पर्याप्त सांद्रता थी। रेयर अर्थ एलिमेंट्स (REE) और यिट्रियम (Y) डेटा, विशेष रूप से सेरियम एनोमली, उथले समुद्री रेडॉक्स स्थितियों को दर्ज करने का एक साधन प्रदान करते हैं। हालाँकि, मेसोप्रोटेरोज़ोइक महासागर की रेडॉक्स स्थिति पर अभी भी बहस चल रही है, क्योंकि पहले यह माना जाता था कि यह महासागर पूरी अवधि में ऑक्सीजन युक्त था, जो बैंडेड आयरन फॉर्मेशन (BIF) के गायब होने के साथ मेल खाता था। प्रोटेरोज़ोइक महासागर रसायन विज्ञान के लिए प्रस्तावित कैनफील्ड ओशन मॉडल ने प्रदर्शित किया कि महासागर स्तरीकृत था और गहरे महासागर में H2S (यूक्सिनिक स्थितियाँ) प्रभावी थी, जिससे स्थिर या अवायवीय परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई । ये स्थितियाँ हरी, सल्फर और बैंगनी प्रकाश संश्लेषक बैक्टीरिया के गहरे समुद्र में पनपने के लिए अत्यधिक अनुकूल थीं। गहरे समुद्र में सल्फाइड निर्माण की इस प्रक्रिया के कारण बोरिंग बिलियन के दौरान अधिक मात्रा में पाइराइट का निर्माण हुआ और उन रासायनिक घटनाओं को बल मिला जिन्होंने जंतुओं के विकास को संभव बनाया। उस समय का महासागर वर्तमान महासागर की तुलना में कहीं कम उत्पादक था और पोषक तत्वों (विशेषकर मोलिब्डेनम, लोहा, नाइट्रोजन और फॉस्फोरस) की कमी से जूझ रहा था। इसी दौरान, जल के भीतर जीवन में नाटकीय परिवर्तन हो रहे थे, जिसमें बहुकोशिकीयता का उदय हुआ, आदिम यूकेरियोट्स की पहली उपस्थिति दर्ज हुई लेकिन उनकी विविधता असामान्य रूप से कम थी, हालाँकि बाद के चरण में काफी विविधता दर्ज की गई।

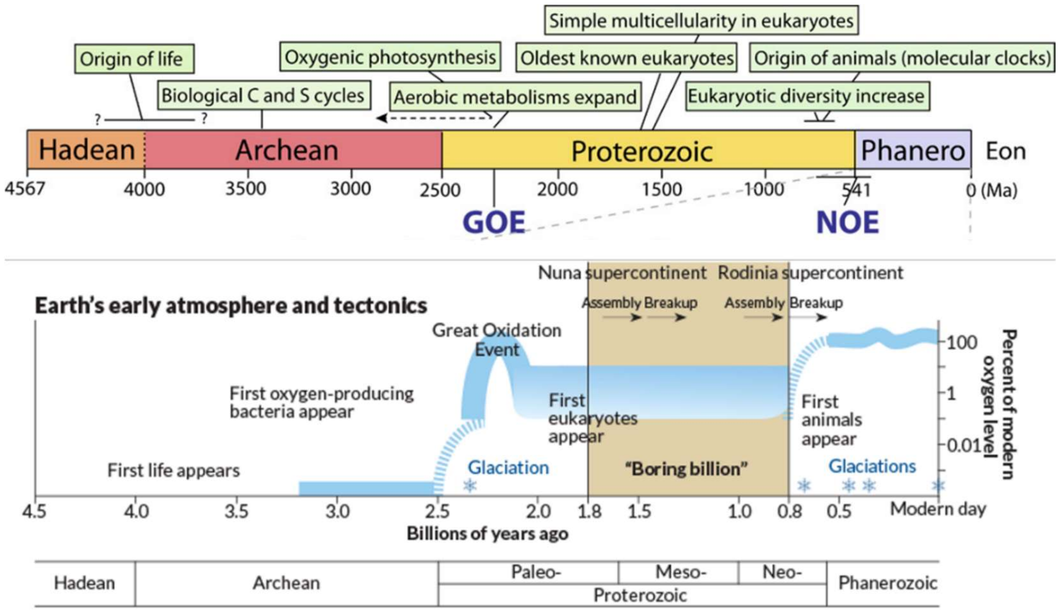

चित्र 1: प्रीकैम्ब्रियन कल्प में बोरिंग बिलियन (1.8 अरब-वर्ष से 0.8 अरब-वर्ष) काल की प्रमुख उत्थानों और अवधियों को प्रदर्शित करने वाला आरेखीय चित्रण (नॉल एट आल, २०१७, एससीआई। एडीवी।)

बाद में, प्रोटेरोज़ोइक गहरे महासागर की रेडॉक्स और जैव-भूरासायनिक स्थिरता को समझने के लिए रेनहार्ड ओशन मॉडल प्रस्तावित किया गया। इस मॉडल ने दर्शाया कि इस अवधि की अवायवीय और यूक्सिनिक स्थितियों ने पर्यावरण में विशिष्ट पोषक तत्वों और ट्रेस धातुओं की उपलब्धता को भी प्रभावित किया होगा। अवायवीय और सल्फाइडिक दोनों स्थितियों के कारण लोहे की घुलनशीलता कम हुई, जबकि सल्फाइडिक स्थितियों के कारण ट्रेस धातु मोलिब्डेनम का अवक्षेपण बढ़ गया। ये दोनों धातुएँ नाइट्रोजन के उपयोग के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि ये नाइट्रेट रिडक्टेस (जो नाइट्रेट और नाइट्राइट को अमोनिया में बदलता है) और नाइट्रोजिनेस (जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को नाइट्रेट में परिवर्तित करता है) एंजाइमों के लिए जरूरी हैं। ये स्थितियाँ यूकेरियोटिक जीवों के प्रारंभिक विकास और पारिस्थितिक विस्तार के लिए एक पृष्ठभूमि प्रदान करती थीं।

इस प्रकार, प्रोटेरोज़ोइक में जीवन नाइट्रोजन की कमी से जूझ रहा होगा, एक ऐसी स्थिति जिसने प्रोकैरियोट्स को यूकेरियोट्स पर प्रतिस्पर्धात्मक लाभ दिया होगा और संभवतः यूकेरियोटिक विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया होगा। इन पर्यावरणीय बाधाओं के बावजूद, यूकेरियोट्स ने 'बोरिंग बिलियन' के दौरान बहुकोशिकीयता विकसित की और 1.8 Ga से 0.8 Ga के बीच सुपरग्रुप स्तर पर यूकेरियोट्स का एक प्रमुख विविधीकरण हुआ। 'बोरिंग बिलियन' के दौरान प्रमुख जैविक विशेषताएँ सायनोबैक्टीरिया का प्रसार और अंतर्कोशिकीय जटिलता का विकास थीं, जैसे कोशिका विभेदन, रणनीतियों के परिवर्तन के माध्यम से लैंगिक प्रजनन, एंडोसिम्बायोसिस और जटिल कोशिका भित्ति संरचना, और यूकेरियोटिक प्रकाश संश्लेषण ने यूकेरियोट्स को जंतुओं, शैवाल और कवक में विभाजित किया।

जीवाश्म अभिलेख प्रीकैम्ब्रियन युग के दौरान जीवन के प्रारंभिक विकास और विकास की हमारी समझ में योगदान देता है। हालाँकि, इस समय के जीवाश्मों का वर्गीकरण संबंधी विश्लेषण रहस्यमय है और अधिकांशतः डोमेन स्तर तक ही सीमित है। विश्व भर में, बड़े आयामों (जो अक्सर हजारों वर्ग किमी तक फैले होते हैं) वाले सुपरक्रैटोनिक महाद्वीपीय से लेकर उथले समुद्री बेसिन और परत-केक स्ट्रैटिग्राफी वाले निक्षेप प्रोटेरोज़ोइक युग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए, मैकआर्थर और अमेडियस बेसिन (ऑस्ट्रेलिया), निचला ट्रांसवाल बेसिन (दक्षिण अफ्रीका), अथाबास्का बेसिन (कनाडा) और बेल्ट बेसिन (यूएसए); विंध्य, कुडप्पा, भीमा, छत्तीसगढ़ बेसिन (भारत) और रूसी प्लेटफॉर्म पर स्थित बेसिन प्रोटेरोज़ोइक काल के अवसादी बेसिन के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण हैं। पृथ्वी पर ये अवसादी अनुक्रम जीवमंडल में विकास के साक्ष्य का भंडार हैं। प्रकाश संश्लेषक सायनोप्रोकैरियोट्स और यूकेरियोट्स दोनों को विश्व भर में प्रोटेरोज़ोइक समुद्री अवसादी अनुक्रमों से स्पष्ट रूप से दर्ज किया गया है, जो पृथ्वी के वायुमंडलीय और जैविक विकास के पैटर्न को समझने के लिए आवश्यक भौमिकीय जानकारी का एक प्रमुख स्रोत हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप के प्रायद्वीपीय भाग में, तथाकथित 'बोरिंग बिलियन' काल (विंध्यन, छत्तीसगढ़, खरियार, अमपानी और इंद्रावती) के कम विघटित और अरूपांतरित मेसो-नियोप्रोटेरोज़ोइक अवसादी अनुक्रम (पुराण बेसिन) के व्यापक अभिलेख मौजूद हैं, जो बस्तर क्रेटन के विरूपित एवं रूपांतरित आर्कियन/पुराप्रोटेरोज़ोइक आधार पर, मुख्यतः इसकी पूर्वी सीमा पर स्थित हैं। यह संपूर्ण क्षेत्र दो क्षेत्रीय भूपर्पटीय असांतत्यों से घिरा हुआ है, जिनमें दक्षिण-दक्षिणपश्चिम में प्रन्हिता-गोदावरी रिफ्ट और उत्तर-उत्तरपूर्व में महानदी रिफ्ट शामिल हैं, तथा पूर्व-दक्षिणपूर्व में उत्तर-उत्तरपूर्व से दक्षिण-दक्षिणपश्चिम तक फैला पूर्वी घाट मोबाइल बेल्ट स्थित है।

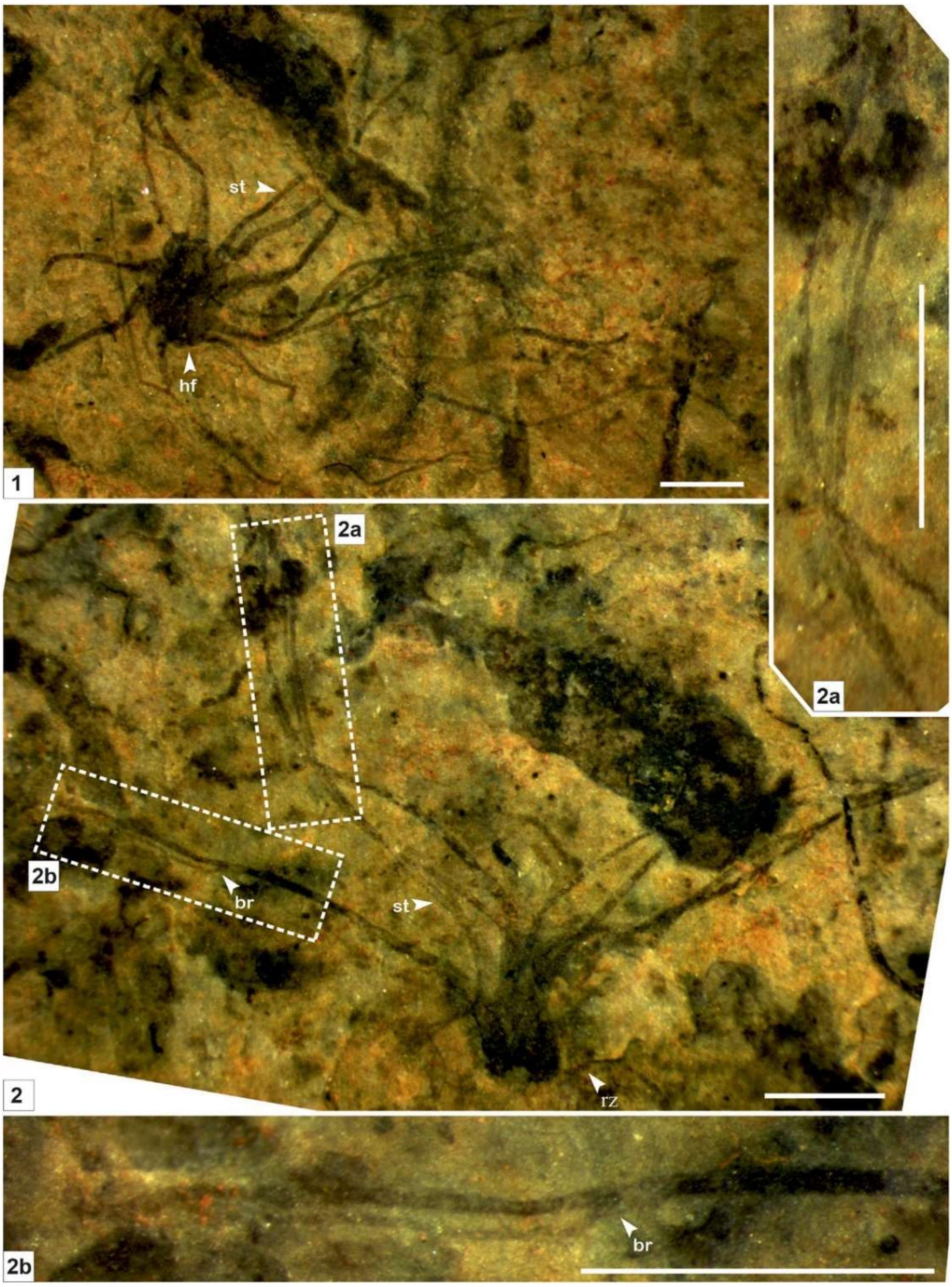

चित्र 2: सरायपाली संरचना से प्राप्त सूक्ष्मजीवाश्म पैलियोसाइटोसाइफॉन शुक्लाई (तीर द्वारा प्रमुख विशेषताएँ दर्शाई गई हैं: st. डंठल; br. शाखाएँ; hf. आधार; rz. मूलाभास।) (1–2) ।टाइप नमूना जिसमें संपीडित थैलस (वनस्पति काय) शामिल है, जिसमें लंबे बहु-नलिकाकार डंठल हैं जो आधार पर एक चक्राकार आधार (discoidal holdfast) से जुड़े हुए हैं। पैलियोसाइटोसाइफॉन शुक्लाई का अनुदैर्ध्य संरक्षण;2.a, 2.b. पैनल 2 का विस्तृत दृश्य, जो डंठलों में द्वितीयक शाखाओं को दर्शाता है। (सिंह एवं शर्मा, 2022), स्केल बार प्रत्येक नमूने के लिए 2 मिमी है।

पूर्वी घाट मोबाइल बेल्ट और बस्तर क्रेटन के बीच की सीमा एक संकीर्ण परंतु क्षेत्रीय टेरेन बाउंडरी शियर ज़ोन की उपस्थिति से चिह्नित है। छत्तीसगढ़ सुपरग्रुप को विश्व के सबसे बड़े और सबसे मोटे अवसादी अनुक्रमों में से एक माना जाता है। यह अध्यारोपण के क्रम में (in order of superposition) चार समूहों में विभाजित है, जिन्हें सिंघोरा समूह, चंदरपुर समूह, रायपुर समूह और खरसिया समूह के नाम से जाना जाता है। शैलीय विसंगतियों के कारण, इस बेसिन को आगे दो उप-बेसिनों में विभाजित किया गया है - हिर्री उप-बेसिन और बारद्वार उप-बेसिन। छत्तीसगढ़ सुपरग्रुप का सर्वोत्तम अनुक्रम बारद्वार उप-बेसिन में पाया जाता है, जो छत्तीसगढ़ राज्य के महासमुंद, रायगढ़, जांजगीर-चांपा जिलों और ओडिशा राज्य के बरगढ़ जिले के कुछ हिस्सों में व्यापक रूप से उजागर है। सिंघोरा समूह की चट्टानें बेसिन के दक्षिण-पूर्वी और पश्चिमी भाग में स्थित हैं, जो छत्तीसगढ़ बेसिन में

सबसे पुराने अनुक्रम का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह छत्तीसगढ़ राज्य के महासमुंद जिले के कुछ हिस्सों में स्थित सिंघोरा टाउनशिप और ओडिशा के बरगढ़ जिले के बारापहार क्षेत्र में अच्छी तरह से उजागर है।

लगभग 400 मीटर मोटाई वाले सिंघोरा समूह के शैल समूह (जिसका विस्तार 200 वर्ग किमी क्षेत्र में है) को अध्यारोपण के क्रम में आगे चार संरचनाओं में विभाजित किया गया है, यथा - रेहाटीखोल, सरायपाली, भालुकोना और छुइपाली। इस अध्ययन में, हम मध्यप्रोटेरोज़ोइक (लगभग ~1,500–1,300 मिलियन वर्ष पूर्व) छत्तीसगढ़ सुपरग्रुप के सिंघोरा समूह की शेल परतों में संरक्षित कार्बोनेसियस संपीड़न जीवाश्मों का एक नया संग्रह प्रस्तुत करते हैं। यहाँ वर्णित जीवाश्म भारत के छत्तीसगढ़ राज्य के महासमुंद जिले में स्थित सिंघोरा समूह की सरायपाली संरचना और छुइपाली संरचना के सिलिसिक्लास्टिक इकाई से एकत्र किए गए हैं। सुरंगी नदी खंड महासमुंद जिले में सरायपाली टाउनशिप से 25 किमी दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। इस खंड की अवसादी अनुक्रम की विशेषता 2.0 मीटर तक मोटी कम ढलान वाली गहरे भूरे से काले रंग की महीन दाने वाली पोर्सेलेनाइट/टफ्स (चूना पत्थर/ज्वालामुखीय राख) की परतें हैं, जिसके बाद लगभग 20 मीटर मोटी काले और भूरे रंग की शेल (पतली परतदार चट्टान) मिलती है, जिसमें कुछ स्थानों पर रेतीली मध्यवर्ती परतें पाई जाती हैं। कम ढलान वाली शेल इस संरचना की प्रमुख शैल विशेषता है। इस इकाई की अधिकांश शेल परतों में सरायपाली जीवाश्म कार्बोनेसियस संपीड़न (कार्बनयुक्त दबाव चिह्न) के रूप में चट्टानों के अंदर और सतह पर संरक्षित पाए जाते हैं। जिनमें एक नया टैक्सन एवं स्पीशीज़, *पैलियोसाइटोसाइफॉन शुक्लाई*, और एक नई स्पीशीज़, *जियूकुनाओएला सर्गेवी*, नई स्पीशीज़ स्थापित किए गए हैं। आकृति विज्ञान के अनुसार, ये कार्बोनेसियस जीवाश्म पंखे के आकार के, हथेली जैसे, लंबे, पत्ती जैसे शैवाल थैलस (जिनके आधार पर होल्डफास्ट हो भी सकता है और नहीं भी), अलग-थलग या द्विशाखित लंबे तंतु, और बहुकोशिकीय प्रजनन संरचनाओं के रूप में पाए गए हैं।

संरक्षण के प्रकार से पता चलता है कि *पैलियोसाइटोसाइफॉन शुक्लाई* को फेओफाइसी (भूरे शैवाल) वर्ग के अंतर्गत साइटोसाइफोनेसी परिवार के बेंथिक बहुकोशिकीय शैवाल साइटोसाइफोन लोमेन्टेरिया से जोड़ा जाता है (चित्र 2)। साइटोसाइफोन लोमेन्टेरिया एक पीले-भूरे या गहरे भूरे रंग का शैवाल है, जिसमें खोखले, अशाखित बेलनाकार डंठल होते हैं, जो 400 मिमी तक लंबे और 3-10 मिमी चौड़े हो सकते हैं। डंठल अंत में संकरे होते हैं, जिनका आधार चौड़ा होता है और यह राइजॉइड-जैसे छोटे होल्डफास्ट द्वारा जुड़ा होता है। साइटोसाइफोन लोमेन्टेरिया आमतौर पर ऊपरी तटीय पूल में पाया जाता है और यह लिम्पेट्स, चट्टानों और लहरों के संपर्क वाले तटों पर उगता है। इसे भूरे शैवाल के जीवन इतिहास और आणविक अध्ययनों के लिए एक मॉडल प्रजाति माना जाता है। प्रीकैम्ब्रियन अनुक्रमों में फियोफाइटा (भूरे शैवाल) के विकास के जीवाश्म अभिलेख अच्छी तरह स्थापित नहीं हैं। इसका कारण इनका आमतौर पर मुलायम शरीर वाला स्वभाव और कैल्सीफाइड टैक्सा की कम घटना है। एडियाकारन अनुक्रमों से कुछ मिलीमीटर लंबे कार्बोनेसियस संपीड़नों का वर्णन किया गया है, जो आमतौर पर चपटी रूपरेखाओं या टुकड़ों के रूप में संरक्षित होते हैं, और इन्हें फियोफाइटा से संबंधित होने का दावा किया गया है।

कार्बोनेसियस मैक्रोएल्गा *इओहोलिनिया* — एक रस्सी या रिबन जैसा शाखित थैलस, जो रूस में वेन्डियन निक्षेपों से ज्ञात है, को यूकेरियोटिक शैवाल अवशेष माना गया था। इसका संभावित संबंध फियोफाइटा या रोडोफाइटा के रूप में निर्धारित किया गया था। इसी प्रकार, मियाओहेफाइटन बाइफर्केटम कार्बोनेसियस संपीड़नों — द्विशाखित बहुकोशिकीय थैली, जो चीन के एडियाकारन डौशान्तुओ संरचना से ज्ञात हैं — के आकारिकी और टैफोनोमिक मूल्यांकन के आधार पर स्टीनर ने उन्हें भूरे शैवाल में शामिल किया। उपलब्ध अभिलेख बताते हैं कि लाल और हरे शैवालों की तुलना में फियोफाइट्स का विचलन भौमिकीय अतीत में बहुत बाद में (मेसोज़ोइक) हुआ होगा। पूर्व प्रकाशनों में, मेसोज़ोइक, पैलियोज़ोइक और एडियाकारन अनुक्रमों से दस्तावेज किए गए कई कार्बोनेसियस संपीड़नों को फियोफाइटा के रूप में दावा किया गया है। हालांकि, इन छाप जीवाश्मों की वर्गिकीय संबद्धता निश्चित नहीं है और प्रमुख आकारिकी विशेषताओं की अनुपस्थिति में इन्हें खारिज कर दिया गया है भौमिकीय अतीत में बेंथिक समुद्री शैवालों (बहुकोशिकीय शैवाल) की उत्पत्ति, प्राचीनता और संबंधधर्मिता उनके संरक्षण में पक्षपात के कारण रहस्यों में घिरी हुई हैं। यदि हमारी व्याख्याएँ सही हैं, तो दोनों रूप प्रारंभिक मेसोप्रोटेरोज़ोइक युग (~1,500 मिलियन वर्ष पूर्व) में फियोफाइटा (Phaeophyta) की प्राचीनता से भी पहले के हो सकते हैं।

जीवाश्मयुक्त सामग्री का लेजर रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी (LRS) और एनर्जी डिस्पर्सिव एक्स-रे स्पेक्ट्रोस्कोपी (EDX) द्वारा विश्लेषण से पता चलता है कि सिंघोरा के मैक्रोएल्गी (बृहद् शैवाल) के कार्बोनेसियस संपीडन आमतौर पर कार्बनिक कार्बन से बने होते हैं। इसके अलावा, कार्बोनेसियस संपीडन में एल्युमिनियम (Al), सिलिकॉन (Si), पोटैशियम (K), और ऑक्सीजन (O) की कमी और कार्बन की उच्च सांद्रता, तथा शेल मैट्रिक्स में एल्युमिनियम (Al), सिलिकॉन (Si), आयरन (Fe), ऑक्सीजन (O), और पोटैशियम (K) की उच्च सांद्रता और कार्बन की निम्न मात्रा, अध्ययन किए गए कार्बोनेसियस अवशेषों के लिए बर्जेस शेल-प्रकार के संरक्षण को दर्शाती है। इसके अतिरिक्त, सिंघोरा समूह की चट्टानों से प्राप्त कार्बोनेसियस मैक्रोफॉसिल्स (बृहद् जीवाश्म) मेसोप्रोटेरोज़ोइक महासागर के कम ऑक्सीजन वाले उथले जल में निवास करने वाले बेंथिक मैक्रोएल्गी (बेंथिक बृहद् शैवाल) के साक्ष्य प्रदान करते हैं। संयुक्त रूप से, सिंघोरा के कार्बोनेसियस जीवाश्मों के संरक्षण प्रकार से बहुकोशिकीय शैवाल संबंधिता का पता चलता है और यह प्री-एडियाकरन जीवमंडल में बर्जेस शेल-प्रकार के टैफोनॉमिक विंडो को जोड़ता है।

डॉ. वीरू कान्त सिंह

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

महासागरीय एनॉक्सिक इवेंट्स (OAEs): भारतीय अभिलेख और भविष्य की संभावनाएं

मेसोज़ोइक काल के दौरान, वैश्विक महासागरों ने कई विनाशकारी घटनाओं का अनुभव किया, जिसने महासागरों एवं पर्यावरण के मुख्य रासायनिक संघटकों पर गहरा प्रभाव पड़ा। वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड की बढ़ी हुई माता समुद्र और पर्यावरण की संरचना को प्रभावित करती है, जो कि अवसादीय द्रोणियों में अवसाद गतिकी स्वरूप, पुरा-अपचयोपचय, समुद्र का पीएच, पोषक तत्वों की आपूर्ति आदि में परिवर्तन के रूप में परिलक्षित होते हैं। इन घटनाओं को अनुक्रमों में गहरे रंग की परतदार शेल के जमाव के रूप में पहचाना जाता है, जो कार्बनिक कार्बन सामग्री और सल्फाइड से अत्यधिक समृद्ध होती हैं। इन घटनाओं को महासागरीय एनॉक्सिक घटनाओं (Oceanic Anoxic Event: OAEs) के रूप में जाना जाता है और इन्हें एक अलग द्रोणी से लेकर अर्ध-वैश्विक पैमाने तक और उथले तटीय क्षेत्रों से लेकर खुले महासागर के सबसे गहरे हिस्सों तक व्यापक रूप से उल्लेखित किया गया है। पेलाजिक (pelagic) और नेरिटिक (neritic) आवासों में, अत्यधिक ग्रीनहाउस तापमान की अवधि के दौरान, तीन वैश्विक महासागरीय एनॉक्सिक घटनाएं (टोर्सियन-OAE, OAE1A और OAE2) कार्बोनेट संकट से चिह्नित हैं। वर्तमान आबादी की तुलना में, OAE के दौरान ज्वालामुखियों से जारी अतिरिक्त कार्बन डाई ऑक्साइड ने प्लवक फोरामिनिफ़र्स और चूनायुक्त अतिसूक्ष्म प्लवकों (कैल्केरियस नैनोप्लैंकटन) के साथ-साथ रीफ़ समुदायों में बायोकैल्सीफिकेशन को रोका।

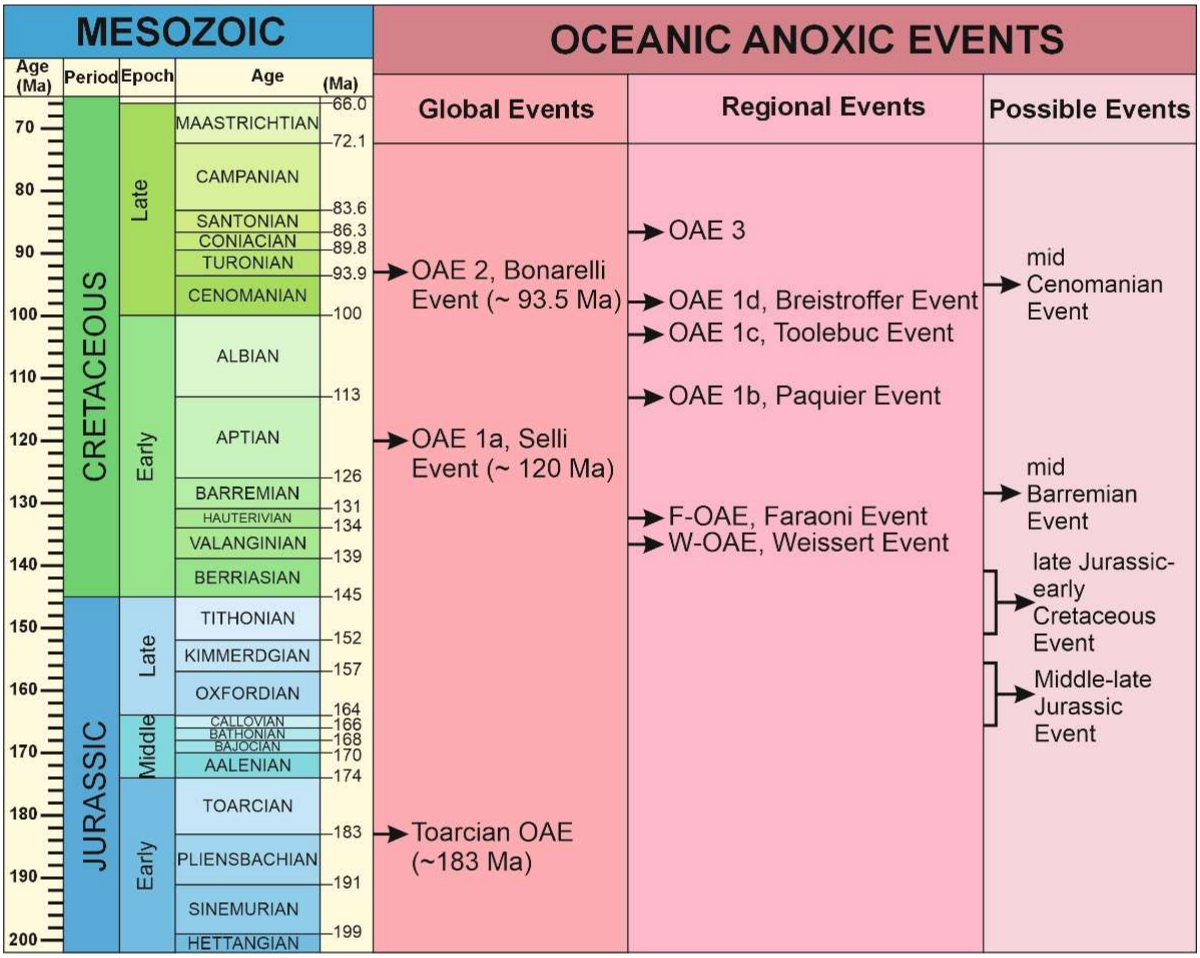

चित्र 1. भूगर्भीय समय के पैमाने पर महसागरीय अनाक्सिक घटनाओं का विवरण

महासागरीय एनॉक्सिक घटना की अवधारणा को सबसे पहले श्लेंजर और जेनकिन्स (1976) और जेनकिन्स (1980) द्वारा पेश किया गया था। मेसोज़ोइक युग के दौरान वैश्विक और क्षेत्रीय ओएई के कुल नौ प्रकरण दर्ज किए गए थे (चित्र 1)। वैश्विक महासागरों पर जलवायु परिवर्तन के तीव्र प्रभाव का अध्ययन कार्बन-समृद्ध गहरे काले शेल अनुक्रमों में भू-रासायनिक चिह्नकों से किया गया है, जो एनोक्सिक (ऑक्सीजन- विहीन) स्थिति के दौरान जमा हुए थे और निम्न आक्सिजन वाले वातावरण का प्रतिनिधित्व करते थे । भूगर्भीय-समय-सीमा में इन OAE घटनाओं का अंतराल 100-1000 वर्षों तक का था।

एक व्यापक ज्वालामुखी विस्फोट के दौरान, वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की उच्च सांद्रता के कारण तापमान में अत्यधिक वृद्धि हुई जिससे महासागरों में ऑक्सीजन की दीर्घकालिक कमी और कार्बन डाइऑक्साइड की उच्च सांद्रता के कारण चूनायुक्त सूक्ष्म जीवों का विलुप्तिकरण प्रारंभ हुआ, जिसके कारण भूगर्भीय अतीत में कैल्केरियस पादपप्लवकों और जीवप्लवकों के बड़े पैमाने पर विलुप्त होने की घटनाएँ हुईं, उधारण की लिए क्रिटेशियस /पेलिओसीन सीमा के दौरान 10% पादपप्लवकों और जीवप्लवकों का विलुप्तिकरण। अतः, OAE अध्ययनों से जलवायु और महासागरों के भविष्य की चेतावनी के साथ अतीत की तबाही की बेहतर समझ हासिल की जा सकती है।

मेसोज़ोइक समय के दौरान तीन वैश्विक OAE (i) टॉरशियन ओएई या जेनकिन्स घटना, (ii) OAE 1a या सेली घटना, (iii) OAE 2 या बोनेरेली घटना) और छह क्षेत्रीय OAE (W– OAE या वाइसेर्ट घटना, F– OAE या फ़ारोनी घटना, OAE 1b या पैक्यिर घटना, OAE 1c या टूलबुक घटना, OAE 1d या ब्रेइस्ट्रोफ़र घटना और OAE 3 कोनियासियन-सैंटोनियन) दर्ज किए गए हैं (चित्र 1)। वैश्विक OAE विभिन्न ज्वालामुखी गतिविधियों से संबंधित उच्च कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर के कारण गर्म परिस्थितियों से जुड़े हैं, जबकि क्षेत्रीय OAE के कारण तंत्रों का तुलनात्मक रूप से कम अध्ययन किया गया है।

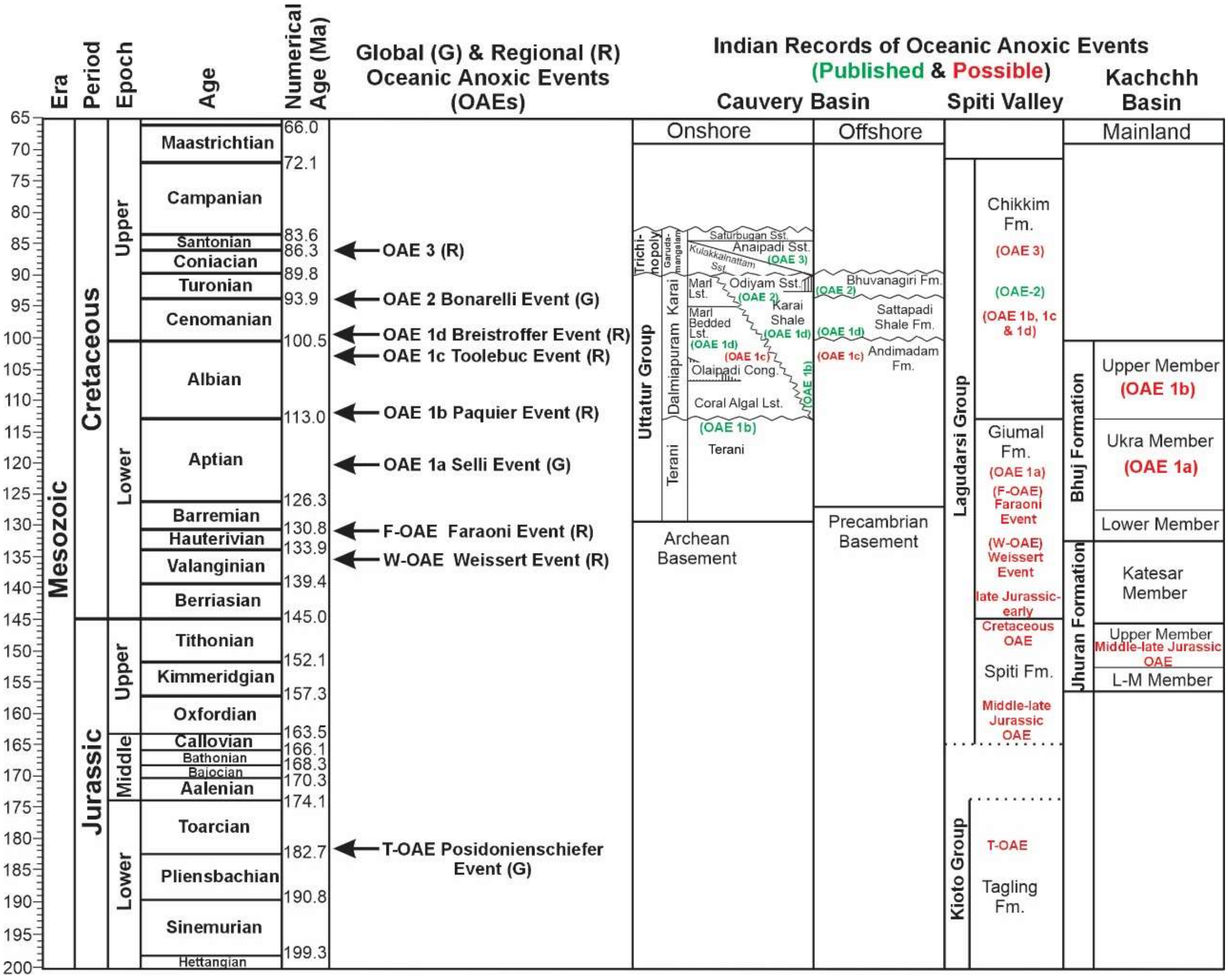

चित्र 2. स्थापित वैश्विक और क्षेत्रीय महासागरीय एनोक्सिक घटनाएँ (OAE) और भारतीय द्रोणियों से अभिलेख (प्रकाशित घटनाएँ-हरा रंग; संभावित घटनाएँ-लाल रंग)

भारतीय मेसोज़ोइक अनुक्रम और ओएई रिकॉर्ड

भारत में, मेसोज़ोइक अनुक्रम अच्छी तरह से विकसित हैं। भारतीय अनुक्रम उत्तरी (लद्दाख, स्पीति, उत्तराखंड); पश्चिमी (जैसलमेर, कच्छ); पूर्वी (राजमहल बेसिन और असम-अराकान); मध्य (नर्मदा सोन, सतपुड़ा और रीवा द्रोणी); और दक्षिणी भागों (कावेरी, कृष्णा-गोदावरी, पलार, महानदी और प्राणहिता-गोदावरी द्रोणी) में उजागर हुए हैं। हालाँकि, OAE से युक्त समुद्री अवसाद केवल लद्दाख और स्पीति हिमालय, कच्छ, जैसलमेर और कावेरी द्रोणी में पाए जा सकते हैं। इनमें से कुछ ही क्षेत्रों से OAE अध्ययन उपलब्ध हैं और इन अध्ययनों के लिए अन्य संभावित क्षेत्रों को नीचे चित्र में संकलित किया गया है.

भारत से वैश्विक और क्षेत्रीय OAE रिकॉर्ड बहुत सीमित हैं। भारतीय अवसाद अनुक्रमों से केवल एक वैश्विक महासागरीय एनॉक्सिक घटना OAE 2 दर्ज की गई है। इसे दो क्षेत्रों से दर्ज किया गया है,

(i) चिक्किम फॉर्मेशन, स्पीति घाटी,

(ii) कराई शेल फॉर्मेशन और भुवनगिरी फॉर्मेशन, कावेरी द्रोणी ।

भारत में क्षेत्रीय OAE (OAE 1b, OAE 1d और OAE 3) पर प्रकाशित रिकॉर्ड केवल कावेरी द्रोणी के क्रिटेशियस अनुक्रमों से उपलब्ध हैं (चित्र 2)।

भारत में संभावित OAE अभिलेख और अध्ययन के संभावित क्षेत्र

मध्य-सेनोमेनियन में संभावित OAE के अभिलेख टेथिस सागर से मिले हैं, जो सकारात्मक कार्बन उन्नयन (~ 1%), समुद्री कार्बनिक पदार्थों के जमाव और रेडियोलेरियन के विलुप्त होने की घटना से जुड़ा हुआ है। उसी समयावधि के भीतर, बेंथिक चूनायुक्त सूक्ष्म जीव प्रजातियों की विविधता और जीव घनत्व दोनों में लगातार कमी प्रदर्शित होती है। उपरोक्त OAE के अलावा, एक मध्य बैरेमियन एनॉक्सिक घटना, एक अंत जुरासिक-प्रारंभिक क्रिटेशियस एनॉक्सिक घटना और एक मध्य-अंत जुरासिक ओएई घटना भी संभव है (चित्र 2)। उनकी क्षेत्रीय या वैश्विक सीमा का पता लगाने के लिए, दुनिया भर में उपयुक्त अनुक्रमों से अधिक अध्ययनों की आवश्यकता है।

भारतीय तलछटी अनुक्रमों से अतिरिक्त संभावित OAE के अभिलेख, मुख्य रूप से स्पीति, कच्छ और कावेरी द्रोणियों से प्राप्त किए जा सकते हैं। कच्छ द्रोणी से, पांडे और पाठक (2016) ने भुज संरचना के उक्रा मेम्बर से *देशायसाइट्स* और *ऑस्ट्रेलिसेरास* अमोनॉइड के आधार पर प्रारंभिक एप्टियन अवसादों की संभावित उपस्थिति को दर्शाया है। इन अमोनॉइड्स को हरे शेल में से दर्ज किया गया है जो उथली गहराइयों में ओएई का संकेतक हो सकता है। उक्रा मेम्बर में ओएई 1a की उपस्थिति का पता लगाने के लिए, हरे शेल से भू-रासायनिक अध्ययन और अन्य समुद्री जीवाश्म समूह अध्ययन की आवश्यकता है, मुख्य रूप से, झुरान फॉर्मेशन के सदस्य रुद्रमाता शेल में गहरे भूरे से काले रंग के शेल होते हैं, जो कि अंत जुरासिक OAE के अध्ययन के लिए एक संभावित क्षेत्र हो सकते हैं।

स्पीति घाटी के कियोटो समूह के टैग्लिंग फॉर्मेशन में मुख्य रूप से काली शेल परतों के साथ चूना पत्थर है और इसकी आयु अंतिम ट्राइसिक से लेकर प्रारम्भिक जुरासिक तक है। इस दृष्टिकोण से टैग्लिंग फॉर्मेशन में टॉरशियन- OAE की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। स्पीति फॉर्मेशन (कैलोवियन-टिथोनियन) में मुख्य रूप से काली शेल शामिल है और अंतिम जुरासिक OAE की संभावना को दर्शाता है। ऊपर स्थित गुइमल फॉर्मेशन (बरेसीअन-एप्टियन) में मुख्य रूप से काली शेल के अंतर्संबंधों के साथ बलुआ पत्थर शामिल है और ये काली शेल वेइसर्ट घटना, फराओनी घटना और ओएई 1a के संकेत दे सकती हैं।

इसके अलावा, OAE 1b, ओ OAE 1c, OAE 1d, OAE 2 और OAE 3 को चिक्किम फॉर्मेशन (सेनोमेनियन-प्रारम्भिक मास्ट्रिसियन) में देखा जा सकता है। कावेरी बेसिन से, OAE 1b, OAE 1d, OAE 2 और OAE 3 का अध्ययन पहले ही किया जा चुका है, लेकिन तटवर्ती और समुद्रवर्ती कार्बनिक समृद्ध शेल अनुक्रमों से OAE 1c की संभावना अभी भी मौजूद है और इसे तटवर्ती उत्तातुर समूह के कराई फॉर्मेशन (अल्बियन से मध्य ट्यूरोनियन) और समुद्रवर्ती अंडीमादम फॉर्मेशन से अभिलेखित किया जा सकता है। कावेरी बेसिन से पहले दर्ज की गई महासागरीय एनोक्सिक घटनाओं का अभी भी विस्तृत अध्ययन आवश्यक है।

आभा सिंह एवं प्रेम राज उद्दंडम

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

होलोसीन युग: जलवायु, महत्व एवं आवश्यकता

होलोसीन युग : परिभाषा, नामकरण और विभाजन

होलोसीन भूवैज्ञानिक अभिलेख में सबसे हालिया स्तरीय इकाई (stratigraphic unit) है, जो लगभग 11,700 वर्ष पूर्व (BP) से वर्तमान तक की समयावधि को आच्छादित करती है। **होलोसीन** शब्द का अर्थ है 'पूरी तरह से नवीन', और इसे सबसे पहले गर्वे (1867–1869) ने उस गर्म अवधि के लिए प्रयोग किया था जो अंतिम हिमयुग के अंत के साथ शुरू हुई थी। इससे पहले इसे 'Recent' (लायल, 1839) या 'Post-Glacial' (फोर्ब्स, 1846) कहा जाता था। वर्ष 1885 में अंतर्राष्ट्रीय भूवैज्ञानिक कांग्रेस (International Geological Congress- IGC) ने इसे एक पृथक इकाई के रूप में औपचारिक मान्यता प्रदान की।

होलोसीन युग को अब उसके पूर्ववर्ती प्लीस्टोसीन (Pleistocene) युग के साथ मिलाकर चतुर्धातु प्रणाली/अवधि (Quaternary System/Period) के अंतर्गत एक औपचारिक श्रृंखला/युग (Series/Epoch) के रूप में मान्यता दी गई है।

होलोसीन की आधाररेखा (base) को ग्रीनलैंड के NGRIP2 बर्फ कोर में 11,700 वर्ष BP की उम्र पर निर्धारित किया गया है। इस युग को तीन उपखंडों में विभाजित किया गया है: **प्रारंभिक** (Early), **मध्य** (Middle), और **उत्तरकालीन** (Late) होलोसीन, जिनके लिए क्रमशः **ग्रीनलैंडियन** (Greenlandian), **नॉर्थग्रिपियन** (Northgrippian) और **मेघालयन** (Meghalayan) चरण निर्धारित किए गए हैं।

- ग्रीनलैंडियन चरण: 11.7 हजार वर्ष BP से 8.2 हजार वर्ष BP तक
- नॉर्थग्रिपियन चरण: 8.2 हजार वर्ष BP से 4.2 हजार वर्ष BP तक
- मेघालयन चरण: 4.2 हजार वर्ष BP से वर्तमान तक

इन चरणों की वैश्विक सीमा स्तरीय बिंदु (GSSP) के रूप में पहचान की गई है, जिनमें से:

- नॉर्थग्रिपियन चरण को NGRIP1 बर्फ कोर (ग्रीनलैंड) में परिभाषित किया गया है।
- मेघालयन चरण को भारत के मेघालय राज्य की एक गुफा में पाए गए स्पेलियोथेम के आधार पर परिभाषित किया गया है।

ये दो ही GSSP हैं जिन्हें ग्लेशियल आइस कोर और स्पेलियोथेम में भौतिक रूप पहचाना और परिभाषित किया गया है। जुलाई 2018 में, अंतर्राष्ट्रीय भूवैज्ञानिक विज्ञान संघ (IUGS) ने अंतर्राष्ट्रीय स्तरीकरण आयोग (ICS) के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए होलोसीन युग को औपचारिक रूप से तीन उपखंडों (ages) में विभाजित किया: **ग्रीनलैंडियन**, **नॉर्थग्रिपियन**, और **मेघालयन**, जिन्हें क्रमशः **प्रारंभिक**, **मध्य** और **उत्तरकालीन होलोसीन** भी कहा जाता है।

होलोसीन के दौरान जलवायु परिवर्तन

होलोसीन काल को वैश्विक तापमान वृद्धि की अवधि माना जाता है, जिसमें महाद्वीपीय हिमपत्नों और घाटी हिमनदों का पिघलना तथा औसत समुद्र तल का बढ़ना प्रमुख लक्षण हैं। हालांकि, इस गर्म अवधि के बीच कई दशकीय और शताब्दीय लंबी ठंडी स्थितियाँ भी दर्ज की गई हैं, जिन्होंने इस स्थिर गर्म जलवायु को बाधित किया। इन अल्पकालिक जलवायु परिवर्तनों में बॉन्ड इवेंट्स (Bond Events), डार्क एजेस कोल्ड पीरियड (Dark Ages Cold Period –DACP), और लिटिल आइस एज (LIA) जैसे प्रमुख घटनाक्रम शामिल हैं। इन उतार-चढ़ावों के पीछे कम सौर विकिरण, महासागरीय धाराओं (जैसे थर्मोहैलाइन सर्कुलेशन) की मंदी, और ज्वालामुखीय विस्फोटों की भूमिका मानी जाती है।

होलोसीन के प्रमुख जलवायु घटनाक्रम में 8.2 हजार वर्ष पूर्व की ठंडी अवधि, होलोसीन क्लाइमेटिक ऑप्टिमम (9000–5000 वर्ष पूर्व), 4.2 हजार वर्ष पूर्व का शुष्कीकरण, रोमन गर्म अवधि (2500–1600 वर्ष पूर्व), डार्क एजेस कोल्ड पीरियड (1600–950 वर्ष पूर्व), मध्यकालीन जलवायु असामान्यता (740–1150 ई.), लिटिल आइस एज (1440–1850 ई.), और वर्तमान गर्म अवधि (1800 ई. से वर्तमान) शामिल हैं।

8.2 हजार वर्ष पूर्व की घटना (8.2 ka Event) जब एक तीव्र और अल्पकालिक ठंडी अवधि थी जिसे ग्रीनलैंड की बर्फ कोर में दर्ज किया गया है और यह नॉर्थग्रिपियन युग की शुरुआत मानी जाती है। इसके बाद, होलोसीन क्लाइमेटिक ऑप्टिमम में वैश्विक स्तर पर गर्म और आर्द्र जलवायु रही। इसके उपरांत 4.2 हजार वर्ष पूर्व की घटना, जो वर्तमान मेघालयन युग की प्रारम्भिक सीमा को दर्शाता है, यह एक वैश्विक शुष्कीकरण का समय था, जिसने हड़प्पा, मेसोपोटामिया और मिस्र जैसी प्राचीन सभ्यताओं पर नकारात्मक प्रभाव डाला।

DACP के दौरान उत्तर अटलांटिक क्षेत्र में समुद्री बर्फ के विस्तार (बॉन्ड इवेंट) और सौर गतिविधि में गिरावट को जलवायु से जोड़ा गया है। इसके बाद, मध्यकालीन गर्म अवधि में वैश्विक स्तर पर गर्म और आर्द्र जलवायु देखी गई। लिटिल आइस एज में विश्व भर में ठंडे और शुष्क हालात रहे, विशेषकर यूरोप और हिमालयी क्षेत्रों में।

वर्तमान गर्म अवधि (अंतिम 160 वर्षों) को मानवजनित जलवायु परिवर्तन से जोड़ा गया है, जिसमें ग्रीनहाउस गैसों की भूमिका प्रमुख रही है।

पिछली जलवायु घटनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि होलोसीन काल में जलवायु परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक और लगातार रहे हैं। इनका अध्ययन बर्फ कोर, झील तलछट, हिमनद अभिलेख और समुद्री तलछटों के माध्यम से किया गया है। इन अध्ययनों से वर्तमान जलवायु परिवर्तन की व्याख्या और भविष्य की भविष्यवाणी के लिए महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

होलोसीन जलवायु का अध्ययन करने की आवश्यकता

होलोसीन जलवायु का विशेष महत्व है क्योंकि यह पिछले लगभग 11,700 वर्षों की अपेक्षाकृत स्थिर और गर्म जलवायु अवधि को दर्शाता है, जो प्राकृतिक जलवायु परिवर्तनों को समझने और हालिया मानवजनित (anthropogenic) प्रभावों से उन्हें अलग करने में सहायक है। इस स्थिर जलवायु ने कृषि के विकास, मानव सभ्यताओं के उदय और सांस्कृतिक परिवर्तन को संभव बनाया। होलोसीन काल की जलवायु का अध्ययन करके हम बीते समय की पारिस्थितिकीय व्यवस्थाओं, वनस्पति परिवर्तनों और जलवायु के प्राकृतिक उतार-चढ़ावों को समझ सकते हैं । यह काल भविष्य की जलवायु भविष्यवाणियों के लिए जलवायु मॉडल की पुष्टि करने में भी उपयोगी है। पश्चिमी हिमालय जैसे क्षेत्रों में, होलोसीन जलवायु अभिलेख मानसूनी प्रवृत्तियों और हिमनद व्यवहार में बदलावों को उजागर करते हैं, जिससे वर्तमान पर्यावरणीय परिवर्तनों और मानव प्रभावों को दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में समझने में सहायता मिलती है।

होलोसीन अभिलेखों में विविध भू-आकृतिक, जैविक, रासायनिक, जलवायवीय तथा पुरातात्विक प्रमाण मिलते हैं, जो सहस्राब्दीय, शताब्दीय, दशकीय, वार्षिक, यहाँ तक कि मौसमी स्तरों पर निरंतर और अत्यंत अच्छी तरह से संरक्षित पाए जाते हैं। ये प्रमाण न केवल इस युग में घटित जलवायु-प्रेरित परिवर्तनों को समझने में सहायक है , बल्कि मानवजनित जलवायु परिवर्तनों के परिदृश्य और पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़े प्रभावों को भी स्पष्ट करते हैं। होलोसीन स्तरीकरण अभिलेख जलवायु एवं समुद्र-स्तर परिवर्तनों, भू-आकृतिक और जल-प्रक्रियाओं, वनस्पति की गतिकी, मानव और प्राणी प्रवासों के प्रमाण प्रदान करते हैं। इसके साथ ही, ये अभिलेख व्यापक और विविध पुरातात्विक साक्ष्य भी प्रदान करते हैं, जो सभ्यताओं के विकास और हाल के भूतकाल में मानव-पर्यावरण संबंधों को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः होलोसीन जलवायु की विस्तृत और बहुआयामी जांच भविष्य में जलवायु परिवर्तन की बेहतर समझ और प्रबंधन के लिए आवश्यक है।

डॉ अमित कुमार मिश्र

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

मेरी आँखें उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक ही भाषा को समझने और बोलने लगेंगे।

—स्वामी दयानंद सरस्वती

कविताएँ

अतीत की गहराईयां

जहाँ सागर थे, वहाँ अब मिट्टी,
जहाँ हरियाली, वहाँ अब चुप्पी,
पत्थरों के नीचे दबी कहानी,
समय ने छोड़ी पुरानी निशानी।

पत्तों की छाँव, सूक्ष्म से जीव,
ओढ़े हुए हैं मिट्टी का सीव,
दबाव, तपन, युगों की चाल,
हारा हुआ जीवन, बना ईंधन माल।

न जल से, न आग से जली,
धरती की कोख में धीमे-धीमे पली,
तेल बना, गैस बनी,
मौन में प्रकृति की राज़ बनी।

हमने खोजा, हमने पाया,
अतीत का दीप फिर जलाया,
पर हर बूंद कहती है बात,
"मैं हूँ अतीत-मत करो मेरी मात।"

युगों की देन, पल में जलती,
भविष्य की राहें खुद ही बदलती,
पेलिओजीन युग का खज़ाना,
महासागरों में सोया पुराना।

सेडिमेंट की परतों में छुपा,
ताप-दबाव से धीरे-धीरे पकता,
जीवन था जो ईंधन बना,
समय की भट्टी में भविष्य बुना।

हर बूंद में है आत्मा की पुकार—
"मुझे समझो, मैं हूँ प्रकृति का उपहार।"
पर हमने जलाया, धुआँ उड़ाया,
नीला आकाश काला बनाया।

करोड़ों वर्षों का सपना टूटा,
धरती का हृदय कहीं छूटा,
क्या यही है प्रकृति की राह?
या हम खो बैठे अपनी चाह?

युग का आरंभ

धीरे थमा प्रलय का शोर,
डाइनासोर की टूटी साँस,
पृथ्वी ने ओढ़ ली नीली चुप्पी,
राख में सो गया एक युग ख़ास।

सागर की थाली में बिखरी किरणें,
द्वीप खिले बसंती फूल-से,
नमी घुली गगन की गोद में,
धुंधला सूरज हँसा धूल-से।

धरती की देह में जीवन काँपा,
कोमल, सूक्ष्म, फिर भी अडिग,
वनस्पति, पंख, और नन्हे जीव—
समय के बीज, भविष्य के सर्जक।

हिमालय उठे, नदियाँ भागीं,
पत्थरों की पीठें तनीं,
धीमे चमत्कार को कोई न देख सका,
प्रकृति बस करवट में थी जमीं।

हर पत्ता, हर सांस, हर जीव
भविष्य का सपना बुन रहा था,
तेल और अग्नि के बीज
मौन मिट्टी में चुन रहा था।

साक्षी सिंह

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

ज्ञान और विज्ञान

विज्ञान है ज्ञान महान,
सदियों को पल में दर्शाये,
सोच हमारी परे ले जाये,
अन्धकार में फैला,
दिव्य है प्रकाश,
विज्ञान है ज्ञान महान।

अग्नि से शुरू,
अन्तरिक्ष में बढ़ता,
मानव कदमों से,
चलता-फिरता,
नये नियम, खोज अपार,
विज्ञान है ज्ञान महान।

सतरंगो में रंग दिखाये,
प्रकृति का श्रृंगार कराये,
समय कम लक्ष्य विशाल,
विज्ञान है ज्ञान महान।

हवा में तैरे,
जल पर दौड़े,
अनन्त है इसका सार,
विज्ञान है ज्ञान महान।

कृति में गरजे,
बिन मेघ के बरसे,
हम मिट्टी,
ये हमारा कुम्हार,
विज्ञान है ज्ञान महान।

रूप अनेक, स्रोत है एक,
कलाओं में निपुण,
दैवीय ज्ञान,
विज्ञान है ज्ञान महान।

उज्ज्वल त्रिपाठी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

वृक्ष की कहानी पुराविज्ञान की जुबानी !

हर वृक्ष की एक कहानी है,
वो कहता हमको सुनानी है।
उसकी हर परत, हर वृत्त में,
इतिहास बहता जैसे पानी है।

अल्प ज्ञानी मनुष्य है,
प्रकृति की भाषा रहस्य है।
तुम बैठो उसकी छाया में,
दादा बन कहते वो किस्से सत्य है।

हर वृत्त एक वर्ष का किस्सा,
हर धूप हर छाव है उसका हिस्सा ।
सूखा, बाढ़, वर्षा की छाया,
हर ऋतु ने छोड़ी अपनी माया।

सूखा पड़ा तो छल्ला पतला,
वर्षा हुई तो चौड़ा बनता ।
कभी मोटा, कभी पतला हो जाता,
वृक्ष हर मौसम का हिसाब बताता।

प्रकृति के परिश्रम को दर्शाता,
हर वृक्ष एक आपबीती सुनाता।
आओ पढ़े छल्लों की भाषा,
समझे प्रकृति की हर अभिलाषा
वृक्ष नहीं सिर्फ छाया देते,
समय के साथी बन संदेशा देते॥

दीक्षा

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

दादी

घर के हर कोने पर नजर है उसकी रहती,
कोई कुछ गलती करे तो वो सबसे पहले है कहती।

खाना खाया, नहाया, लौट कर घर कब आएगा, ये सबसे पूछा करती,
माँ को भी कभी-कभी गलतियों पर समझाया करती।

दादा जी की सेहत का विशेष खयाल वो करती,
पिता जी के आराम का ध्यान भी वो रखती।

चाचा-चाची, काका-काकी, भैया-भाभी , सब उसकी दुआओं में रहते,
सुबह शाम ईश्वर की आराधना है वो करती,
प्रसाद सबको मिले, इसका खयाल वो रखती।

शाम की चाय में सबकी बातें गुनगुनाती,
बच्चों की हंसी में, वो अपने सपने संजोती।

सर्दी-गर्मी की धार में, वो कभी नहीं थकती,
हर आहट पर उसकी नज़र, उसकी प्रेम की पराकाष्ठा दर्शाती।

उसकी गोद में है दुनिया, उसकी बाँहों में सुख,
हर दर्द की दवा, हर किसी का साथी।

घर की हर दीवार पर है उसकी ममता की छाप,
हर खुशी में छुपा है उसका सच्चा जवाब।

आज भी दादी सपनों में है आती, हाल-चाल पूछती बताती
घर का चंदन है दादी, वंदन है, अभिनंदन है दादी
तेरे बहुत दूर चले जाने के बाद, दादी मुझे तेरी बहुत याद है आती.......

अमित कुमार मिश्र

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

हमारा संस्थान

ये हमारा संस्थान है, बहुत ही महान है।
साहनी सर की प्रेरणा, साविली जी का मान है।
वैज्ञानिकों का स्वप्न ये, विज्ञान की शान है।
पुराविज्ञान का गौरव, विश्व में पहचान है।
ये हमारी जान है, हमारा संस्थान है।

ओ आसमां वाले

ओ आसमां वाले, आ जमीं पर आ।
ओ आसमां वाले, आ जमीं पर आ।

भटके हैं मार्ग से,न सूझे राह कोई, तू रास्ता दिखा जा।
ओ आसमां वाले, आ जमीं पर आ।

अभिमान ने घेरा, घनघोर है अंधेरा, तू रोशनी जला जा।
ओ आसमां वाले, आ जमीं पर आ।

अपनेपन का स्वांग रचा, कुकर्मों का जाल बुना, तू इस कुचक्र से बचा।
ओ आसमां वाले, आ जमीं पर आ।

समझ खो गई है, मानवता मर रही है, तू इंसानियत जगा जा।
ओ आसमां वाले, आ जमीं पर आ।

भ्रष्ट हुआ मानव, बन गया है दानव, तू इसे फिर से आदमी बना जा।
ओ आसमां वाले, आ जमीं पर आ।

आभा सिंह

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

राजभाषा हिन्दी कार्यान्वयन की गतिविधियाँ

संस्थान गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों का नियमित रूप से पालन करता है तथा अपनी प्रतिवेदन नियमित रूप से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली एवं राजभाषा विभाग गृह मंत्रालय को प्रेषित करता है। संस्थान ने भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ में आयोजित नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (टोलिक-3) की दोनों अर्धवार्षिक बैठकों में सक्रिय रूप से भाग लिया। बीएसआईपी की राजभाषा कार्यान्वयन समिति संस्थान में हिंदी के कार्यालयी उपयोग एवं संवर्धन में प्रयसरत रहती है। अपनी त्रैमासिक बैठको के माध्यम से, कार्यों की प्रगति की निगरानी करती है तथा हिंदी पखवाड़ा, तकनीकी/वैज्ञानिक व्याख्यान, हिंदी आउटरीच गतिविधियाँ, और क्षेत्रीय कार्य, कार्यशालाओं एवं प्रदर्शनियों के दौरान संवाद जैसे विविध कार्यक्रमों का आयोजन करती है।

प्रशासनिक एवं वैज्ञानिक संप्रेषण में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने हेतु वर्ष के दौरान अनेक पहल की गईं। द्विभाषी वेबसाइट सुचारू रूप से संचालित रही, जिससे हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में वैश्विक स्तर पर सूचना की सहज उपलब्धता बनी रही। सभी आवश्यक प्रपत्रों को द्विभाषी प्रा रूप में उपलब्ध कराया गया, जिससे प्रशासनिक प्रक्रियाओं में राजभाषा की समावेशिता सुनिश्चित हो सकी। बीएसआईपी पुस्तकालय ने प्रतिवर्ष नई पुस्तकों की उपलब्धता के माध्यम से अपने हिंदी पुस्तक अनुभाग को निरंतर समृद्ध किया। वार्षिक रिपोर्ट 2024-25 अंग्रेजी के साथ हिंदी में भी प्रकाशित की जा रही है। संस्थान की अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका, 'जर्नल ऑफ पैलियोसाइंसेज' में सभी शोध लेखों के लिए हिंदी सारांश भी सम्मिलित किए जा रहे हैं। वैज्ञानिकों, तकनीकी अधिकारियों और कर्मचारियों ने वैज्ञानिक, प्रशासनिक एवं तकनीकी संप्रेषण हेतु हिंदी के प्रयोग में उत्साहपूर्वक सहभागिता दिखाई है, जिससे राजभाषा नीति के प्रति संस्थान की प्रतिबद्धता और सुदृढ़ हुई है।

बीएसआईपी की राजभाषा कार्यान्वयन समिति

हिंदी पखवाड़ा 2024

संस्थान ने राजभाषा कार्यान्वयन समिति के तत्वावधान में 10 से 27 सितंबर, 2024 तक हिंदी पखवाड़ा 2024 का सफलतापूर्वक आयोजन किया। यह पखवाड़ा 10 सितंबर, 2024 को बीएसआईपी के स्थापना दिवस के अवसर पर औपचारिक उद्घाटन के साथ प्रारम्भ हुआ। कार्यक्रम का उद्देश्य हिन्दी को राजभाषा के रूप में प्रोत्साहित करना तथा और इसकी सांस्कृतिक एवं भाषाई विरासत के प्रति व्यापक सराहना और जागरूकता को बढ़ावा देना

था । इस दौरान साहित्यिक और रचनात्मक दोनों क्षेत्रों से जुड़े कार्यक्रमों की एक श्रृंखला आयोजित की गई। प्रतियोगिताओं में कर्मचारियों और छात्रों की सक्रिय सहभागिता देखी गई। प्रतिभागियों द्वारा प्रदर्शित उत्साह और रुचि ने हिंदी पखवाड़ा के उद्देश्यों के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता को दर्शाया।

14 नवंबर 2024 को संस्थापक दिवस समारोह में विजेताओं को प्रमाण पत्र और पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया। इस कार्यक्रम में विभिन्न प्रतियोगिताओं में प्रतिभागियों ने अपनी प्रतिभा और उत्साह का प्रदर्शन किया। कार्यक्रमों का विवरण और विजेताओं की सूची इस प्रकार है-

कार्यक्रम	प्रतिभागियों की संख्या	प्रथम पुरस्कार	द्वितीय पुरस्कार	तृतीय पुरस्कार	प्रोत्साहन - I	प्रोत्साहन - II
हिंदी टंकण	7	श्री पूर्णेश्वर प्रकाश मिश्र	श्री उज्ज्वल त्रिपाठी	श्री अभय शुक्ल	श्रीमती सुधा कुरील	—
हिंदी टिप्पणियाँ	8	श्री अभिषेक सचान	श्रीमती संध्या सिह	डॉ. संध्या मिश्रा	श्रीमती सुधा कुरील, श्री पूर्णेश्वर प्रकाश मिश्र	—
वाद-विवाद प्रतियोगिता	8	श्री प्रशांत मोहन त्रिवेदी	सुश्री स्नेह त्रिवेदी	श्री उज्ज्वल त्रिपाठी	श्री शिवांश सक्सेना	डॉ.निवेदिता मेहरोत्रा
श्रुतलेख (एमटीएस के लिए)	7	श्री प्रभात मिश्रा	श्री लवकुश पांडे	श्रीमती संध्या सिह	—	श्रीमती भावना अवस्थी
निबंध लेखन	8	डॉ संध्या मिश्रा	श्री पूर्णेश्वर प्रकाश मिश्र	श्री ब्रजेश कुमार यादव	सुश्री वर्षा शाह	श्री अभिषेक सचान
पोस्टर मेकिंग	11	डॉ. संध्या मिश्रा	सुश्री नाजिम देवरी	सुश्री अर्चना सोनकर	श्री आर्या पांडे, श्री कुमैल अहमद	सुश्री मानसी स्वरूप, श्री शिवांश सक्सेना, सुश्री ममता
अंत्याक्षरी प्रतियोगिता	15	सुश्री आर्या पांडे, सुश्री वर्तिका सिह, श्री विश्वनाथ गायकवाड़	डॉ. संध्या मिश्रा, सुश्री बीना, डॉ. मयंक शेखर	डॉ. संजय सिह, श्री आलोक मिश्रा, श्री अरविद तिवारी	श्रीमती संध्या सिह, सुश्री अर्चना सोनकर, श्री शिवांश सक्सेना	—

हिंदी पखवाड़ा-2024 के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगितायें

हिंदी पखवाड़ा-2024 के दौरान आयोजित पोस्टर प्रतियोगिता की प्रविष्टियाँ

आधिकारिक एवं वैज्ञानिक संप्रेषण में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के निरंतर प्रयासों के तहत , संस्थान ने वर्ष भर हिंदी कार्यशालाओं और लोकप्रिय व्याख्यानों की एक श्रृंखला आयोजित की। इन सत्रों का उद्देश्य राजभाषा नीतियों के प्रति जागरूकता बढ़ाना, विषय-विशिष्ट हिंदी शब्दावली को समृद्ध करना तथा हिंदी में विद्वत्तापूर्ण संवाद को प्रोत्साहित करना था। प्रत्येक कार्यशाला के पश्चात एक संवादात्मक चर्चा आयोजित की गई, जिसमें प्रतिभागियों ने वक्ताओं द्वारा प्रस्तुत विषय-वस्तु एवं तकनीकी शब्दावली से संबंधित विचार-विमर्श में सक्रिय रूप से भाग लिया। कार्यशालाओं एवं व्याख्यानों का विवरण इस प्रकार है:

1. "आईटी उपकरणों और राजभाषा नीति एवं नियमों के माध्यम से राजभाषा कार्यान्वयन" पर कार्यशाला
   वक्ता: **श्री आदर्श गुप्ता**, प्रबंधक (राजभाषा), इंडियन ओवरसीज बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ
   दिनांक: 24 जून 2024

सत्र में राजभाषा नीति के प्रभावी क्रियान्वयन में डिजिटल उपकरणों की भूमिका को रेखांकित किया गया , तथा प्रशासनिक परिप्रेक्ष्य में उनके व्यावहारिक अनुप्रयोगों पर विशेष बल दिया गया।

2. "हिंदी नीति एवं निर्देश" पर कार्यशाला
   वक्ता: **श्री अभिषेक कुमार सिह**, राजभाषा अधिकारी, भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
   दिनांक: 12 सितंबर 2024

इस वार्ता में सरकारी कार्यों में हिंदी के प्रचार-प्रसार और प्रयोग से संबंधित नवीनतम सरकारी दिशानिर्देशों तथा संस्थागत दायित्वों का व्यापक अवलोकन प्रस्तुत किया गया।

3. "पुरापारिस्थितिकी तथा पुराशाकाहारी विश्लेषण के वैकल्पिक तरीके" पर व्याख्यान
   वक्ता: **डॉ. साधन के. बसुमतारी**, विज्ञानी 'ई', बीएसआईपी, लखनऊ
   दिनांक: 13 सितंबर 2024

एक हिंदीतर भाषी क्षेत्र से आने वाले वैज्ञानिक द्वारा प्रस्तुत इस वैज्ञानिक व्याख्यान ने वैज्ञानिक संवाद में हिंदी भाषा की समावेशिता और सुलभता को प्रभावशाली रूप से उजागर किया। उनके व्याख्यान में भारत के सुदूर पूर्वोत्तर क्षेत्रों में किए गए क्षेत्रीय कार्यों की रणनीतियों और उनसे जुड़ी चुनौतियों की गहन अंतर्दृष्टि प्रदान की गयी।

4. "स्पीति घाटी: एक उच्च हिमालयी पर्वत श्रृंखला जो कभी समुद्र थी - प्राकृतिक जीवाश्म संग्रहालय की उत्पत्ति और महत्व" विषय पर व्याख्यान
   वक्ता: **डॉ. अंजू सक्सेना**, विज्ञानी 'ई', बीएसआईपी, लखनऊ
   दिनांक: 30 दिसंबर 2024

इस वैज्ञानिक व्याख्यान में उच्च-उन्नतांश वाली स्पीति घाटी में क्षेत्रीय कार्य की रणनीतियों और चुनौतियों तथा स्थानीय भंडारों में संरक्षित जीवाश्मों के महत्व पर विस्तृत जानकारी प्रदान की गई। इस चर्चा के दौरान भूवैज्ञानिक और जीवाश्म विज्ञान से संबंधित अवधारणाओं के लिए प्रासंगिक हिंदी शब्दावली का भी परिचय दिया गया।

5. "वैश्विक भाषा के रूप में हिंदी की स्थिति और संभावनाएं" पर कार्यशाला
   वक्ता: **प्रो. हिमांशु सेन**, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
   दिनांक: 10 जनवरी 2025

'विश्व हिंदी दिवस' के अवसर पर विशेष रूप से आयोजित इस कार्यशाला में हिंदी की बढ़ती वैश्विक प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया। इसमें हिन्दी के सांस्कृतिक प्रभाव, शैक्षणिक पहुंच और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर इसके विस्तार की संभावनाओं पर विस्तृत चर्चा की गई।

बीएसआईपी में आयोजित विभिन्न हिंदी व्याख्यान और कार्यशालाएं

वार्षिक हिन्दी ई-पत्रिका *पुराविज्ञान स्मारिका*

वैज्ञानिक संप्रेषण में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने तथा सुलभ विज्ञान साहित्य के सृजन को प्रोत्साहित करने के निरंतर प्रयासो के अंतर्गत, संस्थान ने वर्ष के दौरान अपनी वार्षिक हिंदी पत्रिका *'पुराविज्ञान स्मारिका'* का तीसरा अंक प्रकाशित किया। पत्रिका में विभिन्न संस्थाओं के लेखकों तथा बीएसआईपी के कर्मचारियों द्वारा प्रेषित विज्ञान एवं सामान्य विषयों पर आधारित लेखों का संग्रह प्रस्तुत किया गया। इसकी विषय -वस्तु विविधतापूर्ण, जानकारीपरक और सराहनीय रही, जो शैक्षणिक एवं सार्वजनिक संवाद में हिंदी के प्रचार–प्रसार के प्रति लेखकों की प्रतिबद्धता को दर्शाती है।

संस्थान की आंतरिक राजभाषा पत्रिका "पुराविज्ञान स्मारिका" को उसकी गुणवत्ता और प्रभाव के लिए नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति-3), लखनऊ द्वारा **प्रथम पुरस्कार** प्रदान किया गया। यह उपलब्धि रचनात्मक पहलों के माध्यम से वैज्ञानिक साक्षरता एवं राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने में संस्थान की अग्रणी भूमिका को स्पष्ट रूप से रेखांकित करती है।

वार्षिक हिन्दी पत्रिका पुराविज्ञान स्मारिका का विमोचन एवं पुरस्कार समारोह

इसके अतिरिक्त, संस्थान राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार से संबंधित राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से संलग्न है:

- श्री अशोक कुमार, हिंदी अनुवादक, ने चतुर्थ अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन (14-15 सितम्बर 2024, भारत मंडपम, नई दिल्ली) में सहभागिता की।
- डॉ. पूनम वर्मा, डॉ. गौरव श्रीवास्तव (दोनों विज्ञानी ई) तथा श्री अशोक कुमार ने 20-21 नवंबर 2024, एरीज, नैनीताल में आयोजित हिंदी में दो दिवसीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक कार्यशाला में भाग लिया। वैज्ञानिक दल द्वारा इस अवसर पर वैज्ञानिक व्याख्यान प्रस्तुत किए एवं सत्रों की अध्यक्षता की।
- डॉ. नीलम दास, विज्ञानी ई, ने 17 फरवरी 2025, जयपुर, राजस्थान में आयोजित संयुक्त क्षेत्रीय राजभाषा सम्मेलन 2025 में सहभागिता की।
- डॉ. अनुपम शर्मा, विज्ञानी जी, एवं श्री अशोक कुमार ने 20 दिसंबर 2024, डीएसटी, नई दिल्ली में आयोजित संसदीय प्रश्नावली कार्यशाला में सहभागिता की।
- डॉ. पूनम वर्मा और श्री अशोक कुमार ने 31 दिसंबर 2024, आईसीएआर-एनबीएफजीआर, लखनऊ में आयोजित नगर स्तरीय हिंदी कार्यशाला में सहभागिता की।

ये प्रयास राष्ट्रीय भाषा नीति के लक्ष्यों के अनुरूप हिंदी को एक आधिकारिक एवं वैज्ञानिक भाषा के रूप में सशक्त बनाने की दिशा में संस्थान के सक्रिय और निरंतर प्रयासों को दर्शाती हैं।

राजभाषा कार्यक्रमों और कार्यशालाओं में बीएसआईपी स्टाफ की सहभागिता

क्षेत्रीय अभियान की झलकियां

गढ़वाल हिमालय (चमोली), उत्तराखंड की धौलीगंगा एवं गिर्थिगंगा घाटियों में बी.एस.आई.पी. द्वारा पहला भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण

डॉ. हुकम सिह एवं डॉ. रणवीर सिह नेगी

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (BSIP) ने धौलीगंगा व गिर्थिगंगा घाटियो (चमोली, उत्तराखंड) में पहला उच्च हिमालयी भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण किया। इस सर्वेक्षण का उद्देश्य निति घाटी क्षेत्र में कैम्ब्रियन–ऑर्डोविसियन शृंखला तथा लप्थल–संगचामल्ला क्षेत्रों में लेट पैलियोज़ोइक से मेसोज़ोइक एवं संभावित प्रारम्भिक पेलियोजीन शृंखलाओं के भूस्तरीय खंडों की पहचान करना था। वर्तमान में गढ़वाल–कुमाऊँ क्षेत्र के टेथ्यन हिमालय में प्रारम्भिक पेलियोज़ोइक शृंखला पर सीमित जानकारी उपलब्ध है।

चित्रों का विवरण

1. गूगल अर्थ चित्र, जिसमें अध्ययन स्थल (लाल बॉक्स में दर्शाया गया), तथा धौलीगंगा व गिर्थिगंगा घाटियों के प्रमुख स्थलों (गढ़वाल हिमालय, चमोली) के साथ दिखाया गया है।
2. लेट ट्रायसिक कीओटो संरचना के तीव्र झुके हुए चूना पत्थर रेवालिबागर (चमोली, उत्तराखंड) के पास कुती शेल के ऊपर अध्यारोपित हैं। टेथ्यन हिमालय में ये गढ़वाल हिमालय के पार फैले विशाल, चर्टयुक्त कार्बोनेट के पार्श्व रूप से स्थायी पर्वतमालाओं का निर्माण करते हैं। *(माप के लिए, नीचे बाईं ओर दिख रहे जीप और व्यक्ति को देखें)*
3. खरवासिया क्षेत्र (धौलीगंगा घाटी) के गारब्यांग/रालम संरचना के पतली परतों वाले ऑर्डोविसियन रूपांतरित अवसादी शैल, जिनमें धूसर सिलिशियस से कैल्केरियस फिल्लाइट तथा महीन क्वार्ट्जाइट सम्मिलित हैं, तृतीयक हिमालयी पर्वतन (Himalayan orogeny) के दौरान हुई तन्य (डक्टाइल) विकृति से विकसित सघन मोड़ (tight folding) और व्याप्त परतच्छेदन (penetrative cleavage) प्रदर्शित करते हैं।
4. खरवासिया क्षेत्र (धौलीगंगा घाटी) में दिखाई देने वाला फिल्लाइट के ऊपर स्थित क्वार्ट्जाइट का अनुक्रम, जो सम्भवतः कैम्ब्रियन–ऑर्डोविसियन आयु का है। अग्रभाग में स्पष्ट परतबद्धता और रूपांतरण के लक्षण परिलक्षित होते हैं। शीर्ष पर पहाड़ी ढलान पर जंगली पर्वतीय बकरियों (बड़े किए गए चित्र में संभवतः आइबेक्स या ब्लू शीप/भारल) का समूह हिमालयी उच्च पर्वतीय जैवविविधता का प्रतीक है, जो भूविज्ञान और वन्यजीवन—दोनों की सहअस्तित्व वाली इस अनूठी परिदृश्य की विशेषता को दर्शाता है।
5. डॉ. हुकम सिह लप्थल क्षेत्र (गिर्थिगंगा घाटी) की स्पीति शेल संरचना से प्राप्त एक संरक्षित अमोनाइट जीवाश्म को प्रदर्शित करते हुए। यह, मजबूत वक्रित (ribbed, planispiral) खोल दर्शता हुआ जीवाश्म मध्य–उच्च जुरासिक आयु का है, जो खुले समुद्री परिवेश में निक्षेपित टेथ्यन हिमालयी अनुक्रम को दर्शाता है। पृष्ठभूमि में स्पष्ट रूप से दिखाई देती परतदार, गहरे रंग की शेल समुद्री तलछट के धीमे निक्षेपण का संकेत देती है।
6. डॉ. हुकम सिह भारत–चीन की भौगोलिक सीमा की ओर संकेत करते हुए, उनकी उंगली ठीक उस स्थान को स्पर्श करती प्रतीत हो रही है जहाँ स्पीति शेल (मध्य–उच्च जुरासिक) के ऊपर ग्यूमल सैंडस्टोन (निचला क्रिटेशस) की आधार परत विद्यमान है। इसके ऊपर बाईं ओर संगचामल्ला संरचना की लालिमा लिए रेडियोलेरियन चर्ट (पैलियोसीन–ईओसिन), बलछादुर्रा ज्वालामुखी, और "मल्ला जोहार" का परक चूना पत्थर खंड (exotic block) क्रमशः स्थित हैं, जो मिलकर हिमालयी टकराव का एक प्रभावशाली भू-साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।
7. मध्य से उच्च जुरासिक आयु की स्पीति शेल संरचना (लप्थल क्षेत्र, गिर्थिगंगा घाटी) से प्राप्त एक समतल-सर्पिल (planispiral), पंक्तिबद्ध (ribbed) अमोनाइट जीवाश्म खुले समुद्री निक्षेपण को दर्शाता है।

इस अभियान के अंतर्गत धौलीगंगा घाटी में निति, गोटिंग, खरवासिया तथा गिर्थिगंगा की सहायक कीओगढ़ घाटी में रूलीबागर, लप्थल, छोजान और संगचामल्ला जैसे महत्त्वपूर्ण स्थलों पर कार्य किया गया। निति घाटी से पहली बार कई प्रकार के कैम्ब्रियन-सम्बद्ध के ट्रैस-फॉसिल, सूक्ष्मजीव-जनित तलछटी संरचनाएँ (MISS) मिले हैं। इसी प्रकार कीओगढ़ घाटी में लेट-ट्रायसिक से लेट-क्रीटेशस और सम्भवतः प्रारम्भिक पेलियोजीन आयु के शैल खंड मिले, जिनमें स्पीति संरचना के जीवाश्मयुक्त काले शेल (अमोनाइट, बेलीमनाइट, गैस्ट्रोपोड) तथा संगचामल्ला संरचना के ग्लॉकोनाइटिक बलुआ पत्थर व रेडिओलारियन चर्ट शामिल हैं। संगचामल्ला से प्राप्त रेडिओलारियन चर्ट सम्भवतः टेथ्यन हिमालय में प्रारम्भिक पेलियोजीन का पहला अभिलेख हो सकता। सभी महत्त्वपूर्ण स्थलों के भू-अक्षांश–देशांतर, शैलविज्ञान, जीवाश्म एवं भूस्तरीय विशेषताओं का छायाचित्रण और अभिलेखन किया गया है, जो आगे के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए आधार प्रदान करेगा।

राजगीर के कालातीत रहस्यों की खोज: अजातशत्रु किले की एक अद्भुत यात्रा

अंजलि त्रिवेदी [1,2], सुजीत नयन [3,4], राहुल कुमार [3], अनुपम नाग [1], कुंदन कुमार [3]

1: बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, 53, विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ

2: वैज्ञानिक और प्रवर्तित अनुसंधान अकादमी, ग़ाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश

3: भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, पटना इकाई, बिहार

4: बिहार विरासत विकास समिति, बुद्धा मार्ग, पटना, बिहार

बिहार राज्य में स्थित राजगीर एक ऐसा शहर है, जहाँ प्राचीन खंडहर और प्राकृतिक दृश्य भारत के जीवंत इतिहास की गवाही देते हैं। 'राजगृह' के नाम से प्रसिद्ध यह शहर मगध राज्य की पहली राजधानी थी, जहां आगे चलकर मौर्य साम्राज्य का उदय हुआ। राजगीर केवल ऐतिहासिक धरोहर नहीं है; यह भारत की समृद्ध और विविध सांस्कृतिक धरोहर का जीवंत प्रमाण है, जो बौद्ध, जैन और हिंदू धर्म की छाप को दर्शाता है। यह यात्रा विवरण राजगीर के अनसुलझे रहस्यों और इसके ऐतिहासिक महत्व को उजागर करते हुए, इसके गौरवशाली अतीत की यात्रा को समझाने का प्रयास कराती है।

चित्र 1: राजगीर पुरातात्विक स्थल (अजातशत्रु का किला) का आकाशीय छायाचित्र, जिसमें विशालकाय साइक्लोपियन दीवार एवं उत्खनित पुरातात्विक संरचनाएँ दर्शाई गई हैं ।

पुराविदों के अनुसार, राजगीर का इतिहास 3000 वर्षों से भी अधिक पुराना है। यह भारत के लगातार बसे हुए सबसे प्राचीन शहरों में से एक माना जाता है। हिंदू पौराणिक कथाओं के अनुसार, राजगीर महाभारत महाकाव्य के एक महत्वपूर्ण पात्र राजा जरासंध का राज्य था। प्राचीन ग्रंथों में 'गिरिव्रज' के नाम से जाना जाने वाला यह शहर पांच पहाड़ियों- वैभारा, रत्ना, शैला, सोना और उदय से घिरा हुआ है, जो न केवल इसकी रहस्यमयता को बल्कि इसकी प्राकृतिक रक्षा को भी बढ़ाते हैं। अजातशत्रु का किला, जो राजा बिंबिसार के पुत्र अजातशत्रु द्वारा निर्मित किया गया था , उसके अवशेष प्राचीन काल में शहर की रणनीतिक महत्ता को दर्शाते हैं। विशाल पत्थरों की दीवारों और बुर्जों वाला यह किला उस युग की वास्तुकला के कौशल को दर्शाता है और प्राचीन भारतीय राज्यों की सैन्य रणनीतियों की झलक देता है।

वर्ष 2024 की पुरातात्विक उत्खनन के पाश्चात्य स्नानघर, बावड़ी, लोहा पिघलाने का कारखाना, रसोईघर, वगैरह महत्वपूर्ण स्थानों के बारे मे जानकारी प्राप्त हुई है। इसके साथ-साथ खुदाई मे साइक्लोपियन दीवारे भी मिली है (चित्र 1), जो राजगीर की सबसे दिलचस्प विशेषताओं में से एक हैं और प्राचीन नगर को चारों ओर से घेरे हुए हैं। यह दीवारें , विशाल अव्यवस्थित पत्थरों से बनी हैं, और लगभग 2500 साल पुरानी मानी जाती हैं। 40 किलोमीटर से अधिक तक फैली यह दीवारें एक मजबूत रक्षा तंत्र के रूप में कार्य करती होंगी, जो प्राचीन इंजीनियरिग की प्रवीणता को दर्शाती हैं।

चित्र 2: राजगीर के अजातशत्रु का किला (अजातशत्रु दुर्ग) स्थित पुरातात्विक उत्खनन स्थल से मृदा एवं पुरावानस्पतिक नमूनों के संग्रह का क्षेत्रीय छायाचित्र ।

मृदा एवं पुरावानस्पतिक नमूनों को सभी स्थानों से एकत्र किया गया है (चित्र 2), जो वहाँ पर रहने वाली प्राचीन सभ्यता के खान-पान और रहन-सहन के तौर तरीकों पर रोशनी डालेगी। राजगीर, जैन और बौद्ध परंपराओं में एक विशेष स्थान रखता है। गृद्धकूट पर्वत, या गिद्ध की चोटी, वह स्थान था जहाँ बुद्ध ने अपने कई महत्वपूर्ण उपदेश दिए, जिनमें प्रसिद्ध 'कमल सूत्र' भी शामिल है। वास्तुकला के अद्वितीय और प्राचीन खंडहर वेणुवन विहार राजगीर के महत्वपूर्ण स्थलों में से एक है, जो राजा बिंबिसार द्वारा बुद्ध को उपहार स्वरूप दिया गया एक बाँस का उपवन है।

राजगीर भारत की समृद्ध ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर का एक कालातीत प्रमाण है। इसके प्राचीन खंडहर, आध्यात्मिक महत्व और प्राकृतिक सौंदर्य इतिहासकारों, पुरातत्वविदों को मंत्रमुग्ध करते हैं। जब हम राजगीर के रहस्यों का अन्वेषण करते हैं, तो हम न केवल इसके अतीत की परतों को उजागर करते हैं, बल्कि उस सांस्कृतिक और आध्यात्मिक ताने-बाने की भी गहरी समझ प्राप्त करते हैं जिसने भारत को सहस्राब्दियों से आकार दिया है। राजगीर, अपने इतिहास, पौराणिक कथाओं और प्राकृतिक वैभव के मेल के साथ, भारत की स्थायी धरोहर का एक प्रकाशस्तंभ बना हुआ है और हमें इसके कालातीत इतिहास की यात्रा में भाग लेने के लिए आमंत्रित करता है।

पराग विश्लेषण के माध्यम से पुरावनस्पति का मात्रात्मक पुनर्निर्माण: पुरापारिस्थितिकी और पर्यावरणीय परिवर्तन का आकलन

डॉ. ज्योति श्रीवास्तव एवं श्री सौरव हाजरा

पराग-आधारित मात्रात्मक पुनर्निर्माण, पुरापारिस्थितिकी विज्ञान में ऐतिहासिक भूदृश्यों और पारिस्थितिक तंत्रों का निर्धारण करने के लिए प्रयुक्त एक विधि है। इस तकनीक में तलछट के कोर से संरक्षित परागकणों का परीक्षण करके लंबी अवधि में वनस्पति की गतिशीलता को समझा जाता है। इन अध्ययनों से प्राप्त जानकारी जलवायु परिवर्तनशीलता, पारिस्थितिक परिवर्तनों और पर्यावरण पर मानवीय प्रभावों के बारे में अंतर्दृष्टि प्रदान करती है।

भारत के दक्षिण-पश्चिमी घाटों में वनाच्छादित परिदृश्य

परागकण सूक्ष्म जीव होते हैं जो बीजधारी पौधों द्वारा प्रजनन के उद्देश्य से उत्पन्न होते हैं। ये कण पौधों के नर आनुवंशिक पदार्थ का परिवहन करते हैं और अक्सर हवा, पानी या जानवरों के माध्यम से फैलते हैं। अपने लचीले बाहरी आवरण, जिसे एक्साइन (exine) कहा जाता है, के कारण परागकण अपघटन के प्रति उल्लेखनीय प्रतिरोध प्रदर्शित करते हैं और तलछट की परतों में लंबे समय तक संरक्षित रह सकते हैं। परागकण प्रजाति -विशिष्ट होते हैं, अर्थात किसी विशिष्ट अवधि के दौरान किसी दिए गए क्षेत्र में मौजूद पौधों का निर्धारण करने के लिए उन्हें सूक्ष्मदर्शी से पहचाना जा सकता है। तलछट के नमूने में विभिन्न प्रकार के परागों के अनुपात का विश्लेषण करके, शोधकर्ता अतीत की वनस्पतियों की संरचना और समय के साथ उनमें हुए परिवर्तनों का अनुमान लगा सकते हैं।

चतुर्भुज विधि द्वारा वनस्पति मानचित्रण

इस प्रक्रिया में झीलों, पीट बोग्स या समुद्र तल जैसे स्थानों से तलछट कोर निकालना शामिल है। ये कोर प्राकृतिक अभिलेखों के रूप में कार्य करते हैं, और विशिष्ट समयावधियों के अनुरूप परागकणों को अलग-अलग परतों में संरक्षित करते हैं। सूक्ष्मदर्शी और रासायनिक प्रसंस्करण का उपयोग करके, शोधकर्ता नमूनों में पाए जाने वाले परागकणों की पहचान और मात्रा निर्धारित करते हैं। इसके लिए पराग विज्ञान , पराग और बीजाणुओं के अध्ययन, और तुलना के लिए संदर्भ संग्रह में विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है।

वनस्पति समुदाय मानचित्रण

वनस्पति की निगरानी अतीत के भूदृश्यों के मात्रात्मक पुनर्निर्माण के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है, क्योंकि यह पराग डेटा की सटीक व्याख्या के लिए एक आधार रेखा स्थापित करता है। सटीक वनस्पति निगरानी शोधकर्ताओं को प्रजातियों के वितरण और पारिस्थितिक गतिशीलता की अपनी समझ को बेहतर बनाने में मदद करती है, जो वनस्पति प्रकारों और पर्यावरणीय कारकों के बीच जटिल संबंधों की पहचान के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। तलछट कोर में पराग संयोजनों के साथ समकालीन वनस्पति पैटर्न की तुलना करके, वैज्ञानिक मॉडल की सटीकता बढ़ा सकते हैं और यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि पुनर्निर्माण ऐतिहासिक पारिस्थितिक तंत्रों की जटिलता को प्रतिबिंबित करें। वर्तमान वनस्पति अध्ययनों और पुरापारिस्थितिक डेटा का यह एकीकरण वर्तमान पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने के दायरे का विस्तार करता है और अतीत के रुझानों को भविष्य की संभावनाओं से जोड़कर संरक्षण रणनीतियों को सूचित करता है।

वनस्पति डेटा संग्रह टीम

पराग डेटा को सटीक वनस्पति पुनर्निर्माण में बदलने के लिए, शोधकर्ता परिष्कृत गणितीय मॉडलों का उपयोग करते हैं, जिनमें शामिल हैं:

- **आधुनिक एनालॉग तकनीक (MAT):** यह विधि पराग डेटा को समकालीन वनस्पति संरचना के साथ संरेखित करती है।
- **भारित औसत आंशिक न्यूनतम वर्ग (WA-PLS):** यह मॉडल तापमान और वर्षा जैसे पर्यावरणीय चरों का पूर्वानुमान लगाता है।
- **REVEALS मॉडल:** यह दृष्टिकोण पराग प्रतिनिधित्व में पूर्वाग्रहों को समायोजित करता है और क्षेत्रीय वनस्पति पैटर्न का अनुमान लगाता है।

प्राचीन पराग के डीएनए विश्लेषण और मशीन लर्निंग अनुप्रयोगों सहित प्रौद्योगिकी में प्रगति, मात्रात्मक पुनर्निर्माण की सटीकता को बढ़ा रही है। ये नवाचार अतीत की वनस्पति और जलवायु अंतःक्रियाओं के और भी सूक्ष्म विवरणों का विश्लेषण करने की संभावना रखते हैं।

वनस्पति मानचित्रण के लिए हवाई तस्वीरें

पराग-आधारित मात्रात्मक पुनर्निर्माण पुरापारिस्थितिकी विज्ञान की आधारशिला है, जो पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्रों के इतिहास में अमूल्य अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। प्राचीन वनस्पति के सूक्ष्म अवशेषों का अध्ययन करके, शोधकर्ता पारिस्थितिक और जलवायु विकास के जटिल ताने-बाने को एक साथ जोड़ रहे हैं, जिससे पर्यावरणीय लचीलेपन और परिवर्तन की हमारी समझ को दिशा मिल रही है।

भारत के प्रमुख मानसूनी क्षेत्र से प्राप्त अवसादी नमूनों के विश्लेषण के माध्यम से होलोसीन कालीन वनस्पति गतिकी एवं जलवायु परिवर्तन का पुनर्निर्माण, कृषिकीय गतिविधियों की उत्पत्ति और उनके विकास की गति, तथा झील स्तर में हुए परिवर्तनों का अध्ययन हेतु नमूनों का संग्रहण।

श्री नागेन्द्र प्रसाद एवं डॉ फिरोज क़मर

चित्रों का विवरण

1. उष्णकटिबंधीय पर्णपाती वन, कोरबा जिला, छत्तीसगढ़, मध्य भारत; 2. वर्तमान/ आधुनिक परागकण एनालॉग हेतु सतही नमूनों का संग्रह 3. बुका झील, कोरबा जिला, छत्तीसगढ़, 4. बुका झील, कोरबा, उप-सतही नमूनों के संग्रह हेतु ट्रेंच प्रोफ़ाइल; 5 और 6. तुमान झील, कोरबा, उप-नमूनों के संग्रह हेतु ट्रेंच प्रोफ़ाइल; 7. लेमरू झील, कोरबा, उप-नमूनों के संग्रह हेतु ट्रेंच प्रोफ़ाइल 8. राजा रानी झील, कोरबा जिला, छत्तीसगढ़ की तस्वीर।

जनसंपर्क एवं अन्य गतिविधियाँ

बीएसआईपी में अपने नवाचारों का पेटेंट विषय पर कार्यशाला

पृथ्वी विज्ञान, विशेषकर पुरावनस्पति विज्ञान, परागाणु विज्ञान और भूविज्ञान में बौद्धिक संपदा अधिकारों (IPR) के महत्व को रेखांकित करने हेतु बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ में 12 अप्रैल 2024 को **अपने नवाचारों का पेटेंट** विषय पर विचार-मंथन कार्यशाला आयोजित की गई। इस कार्यक्रम का उद्देश्य वैज्ञानिकों और शोधार्थियों को नवाचारों की सुरक्षा में पेटेंट की भूमिका के प्रति जागरूक करना था। मुख्य अतिथि, केएसकेवीकेयू के कुलपति प्रो. मोहन पटेल ने वैज्ञानिक आविष्कारों की सुरक्षा में पेटेंट अधिकारों की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डाला। उन्होंने विज्ञानों में पेटेंटिंग की व्यापक संभानाओं पर प्रकाश डाला तथा आर्थिक विकास और राष्ट्र निर्माण में इसकी भूमिका को रेखांकित करने के लिए राष्ट्रीय और वैश्विक पेटेंट आंकड़े साझा किया।

बीएसआईपी में पृथ्वी दिवस का आयोजन

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बीएसआईपी), लखनऊ में 22 अप्रैल 2024 को पृथ्वी दिवस मनाया गया। उद्यान समिति (अभिजीत मजूमदार, अनसूया भंडारी, अद्रिता चौधरी, वर्षा शाह) द्वारा आयोजित इस कार्यक्रम में वैज्ञानिकों, तकनीकी व प्रशासनिक कर्मचारियों ने उत्साहपूर्वक वृक्षारोपण कर पर्यावरण संरक्षण और धारणीय जीवनशैली के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की।

10वां अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस 2024 पर बीएसआईपी परिसर में वैज्ञानिकों, छात्रों और कर्मचारियों ने “स्वयं और समाज के लिए योग” विषय पर आधारित कार्यक्रम में भाग लिया। डॉ. ज्योति श्रीवास्तव और श्री अशोक कुमार ने सौम्य योग सत्र का संचालन किया, जिसमें आसन, प्राणायाम और ध्यान तकनीकों का अभ्यास कराया गया। प्रतिभागियों ने योग से ऊर्जा, एकाग्रता और स्वास्थ्य लाभ की अनुभूति साझा की। उद्घाटन भाषण में निदेशक प्रो. महेश जी. ठक्कर ने योग की बढ़ती वैश्विक मान्यता और स्वास्थ्य संरक्षण में इसकी भूमिका पर प्रकाश डाला।

कार्यक्रम का समापन डॉ. कमलेश कुमार के धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुआ, जिसमें संस्थान की समग्र स्वास्थ्य और कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता दोहराई गई।

बीएसआईपी में प्रथम राष्ट्रीय अंतरिक्ष दिवस समारोह

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान , लखनऊ ने 23 अगस्त 2024 को **चंद्रमा से जीवन तक: भारत की अंतरिक्ष गाथा** विषय पर प्रथम राष्ट्रीय अंतरिक्ष दिवस मनाया। इस अवसर पर चंद्रयान-3 की ऐतिहासिक उपलब्धि को स्मरण करते हुए संस्थान की ग्रहीय एवं अंतरिक्ष अनुसंधान में भूमिका को रेखांकित किया गया। मुख्य अतिथि प्रो. ए. के. सिंह (डीन, इंजीनियरिंग एवं प्रौद्योगिकी संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय) ने **सूर्य-पृथ्वी अंतःक्रिया और जलवायु परिवर्तनीयता** पर व्याख्यान दिया, जिसमें अंतरिक्ष मौसम के संचार, उपग्रह प्रणाली, जलवायु और मानव स्वास्थ्य पर प्रभावों को रेखांकित किया। इसके साथ ही प्रदर्शनी, प्रश्नोत्तरी व पोस्टर प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं, जिनमें छात्रों ने अपनी रचनात्मकता और वैज्ञानिक दृष्टि प्रस्तुत की। पुरस्कार वितरण के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। यह आयोजन बीएसआईपी की अंतरिक्ष अनुसंधान को बढ़ावा देने और युवाओं में वैज्ञानिक जिज्ञासा को प्रोत्साहित करने की प्रतिबद्धता को सुदृढ़ करता है।

विशेष स्वच्छता अभियान 4.0 के अंतर्गत जागरूकता कार्यक्रम

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान ने विशेष स्वच्छता अभियान 4.0 के अंतर्गत 15 और 16 अक्टूबर 2024 को लखनऊ में दो जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए। 15 अक्टूबर को शिया पीजी कॉलेज में आयोजित सत्र में स्नातक छात्रों को दैनिक जीवन और सार्वजनिक स्थलों में स्वच्छता के महत्व से अवगत कराया गया। इसमें इंटरैक्टिव चर्चाओं और स्वच्छ भारत अभियान पर आधारित वृत्तचित्र फिल्मों के माध्यम से युवाओं को नागरिक उत्तरदायित्व निभाने के लिए प्रेरित किया गया। 16 अक्टूबर को कालीचरण डिग्री कॉलेज में कार्यशाला एवं फिल्म प्रदर्शन आयोजित हुआ, जिसमें स्वच्छता, प्रदूषण, माइक्रोप्लास्टिक और सतत् प्रथाओं जैसे पर्यावरणीय मुद्दों पर चर्चा हुई। प्रतिभागियों को पर्यावरणीय क्षरण की चुनौतियों और उनके समाधान में व्यक्तिगत जिम्मेदारी की भूमिका के प्रति संवेदनशील बनाया गया। दोनों कार्यक्रमों का सफल समन्वय विशेष स्वच्छता अभियान 4.0 समिति के सदस्यों – डॉ. एस. के. बसुमतारी, डॉ. विश्वजीत ठाकुर, डॉ. शिल्पा पांडे, डॉ. निमिष कपूर, डॉ. एस. के. सिंह और डॉ. निलय गोविंद ने किया।

इसके अतिरिक्त बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान ने 24 और 25 अक्टूबर 2024 को दो और महत्वपूर्ण कार्यक्रम आयोजित किए। 24 अक्टूबर को विशेष स्वच्छता अभियान 4.0 के तहत वृत्तचित्र फिल्म प्रदर्शन सत्र में स्वच्छता, प्रदूषण और माइक्रोप्लास्टिक जैसे विषयों पर लघु फिल्में दिखाई गईं। इसका मुख्य आकर्षण "सेविंग द सेवियर" रही, जो एक 12 वर्षीय कूड़ा बीनने वाले बिल्ला की प्रेरणादायक कहानी प्रस्तुत करती है, जिसने वुलर झील की सफाई कर पर्यावरण संरक्षण का उदाहरण स्थापित किया। 25 अक्टूबर को एस्पायर (विज्ञान संचार और जन सहभागिता को बढ़ावा देने) कार्यशाला का आयोजन हुआ। डॉ. निमिष कपूर द्वारा संचालित इस सत्र में 35 शोधार्थियों को जटिल वैज्ञानिक अवधारणाओं को सरल, प्रभावी और जन-सुलभ तरीके से प्रस्तुत करने के कौशल सिखाए गए। इस दौरान एस्पायर लोकप्रिय विज्ञान लेख प्रतियोगिता का शुभारंभ भी किया गया, जिससे शोधार्थियों को अपने कार्य को समाज से जोड़ने का अवसर मिला। दोनों कार्यक्रमों ने बीएसआईपी की स्वच्छता, सतत विकास और विज्ञान संचार के प्रति प्रतिबद्धता को सुदृढ़ किया।

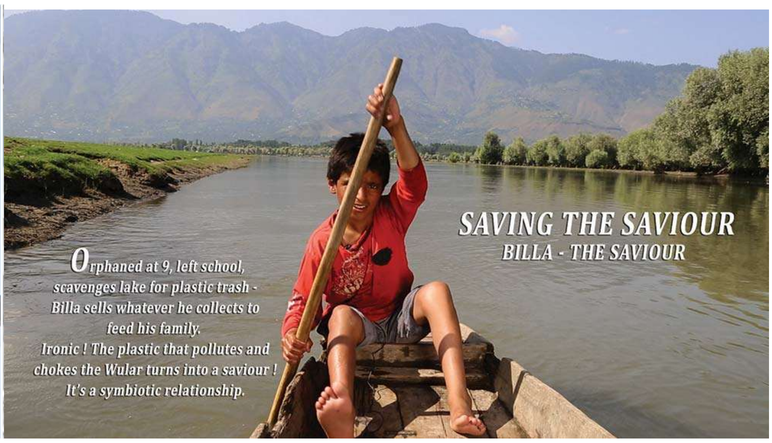

2024 मिशन कर्मयोगी विज्ञान संचार पर कार्यशाला

मिशन कर्मयोगी के अंतर्गत राष्ट्रीय शिक्षण सप्ताह (19–25 अक्टूबर 2024) के तहत बीएसआईपी, लखनऊ में 23 अक्टूबर को "विज्ञान संचार की कला" विषय पर कार्यशाला आयोजित की गई। वैज्ञानिक डॉ. निमिष कपूर द्वारा संचालित इस संवादात्मक सत्र का उद्देश्य शोधार्थियों व वैज्ञानिकों को जटिल वैज्ञानिक अवधारणाओं को सरल, प्रभावी और जन-सुलभ तरीके से प्रस्तुत करने की तकनीकों से परिचित कराना था। इसमें कहानी कहने, उपमाओं, दृश्य साधनों और सरल भाषा के प्रयोग पर विशेष बल दिया गया। कार्यशाला ने मिशन कर्मयोगी के संस्थागत क्षमता निर्माण व प्रभावी ज्ञान प्रसार के लक्ष्य को आगे बढ़ाते हुए विज्ञान संचार को सामाजिक प्रभाव और शोध प्रसार के लिए एक महत्वपूर्ण कौशल के रूप में रेखांकित किया। कार्यक्रम का समन्वयन मिशन कर्मयोगी समिति ने किया।

विश्व हिंदी दिवस समारोह

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ में 10 जनवरी 2025 को विश्व हिंदी दिवस उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस वर्ष की विषयवस्तु हिंदी: एकता और सांस्कृतिक गौरव की वैश्विक आवाज़ रही। निदेशक प्रो. महेश जी ठक्कर ने स्वागत भाषण में हिंदी के ऐतिहासिक विकास, सांस्कृतिक भूमिका और संस्थान की राजभाषा पत्रिका **पुराविज्ञान स्मारिका** को नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, लखनऊ द्वारा प्राप्त **प्रथम पुरस्कार** की उपलब्धि पर प्रकाश डाला। मुख्य अतिथि प्रो. हेमांशु सेन (लखनऊ विश्वविद्यालय) ने वैश्विक भाषा के रूप में हिंदी : स्थिति एवं संभावना विषय पर व्याख्यान देते हुए हिंदी की सांस्कृतिक एकता में भूमिका और वैश्विक संभावनाओं पर चर्चा की। कार्यक्रम का संचालन डॉ. स्वाति त्रिपाठी ने किया तथा समापन डॉ. नीलम के धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुआ। वैज्ञानिकों, शोधार्थियों और कर्मचारियों की सक्रिय सहभागिता से समारोह सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

भ्रष्टाचार- विरोधी एवं सतर्कता मामले/ भ्रष्टाचार-निरोध एवं सतर्कता विषयक पहलू पर एक दिवसीय कार्यशाला

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान ने 13 जनवरी 2025 को निदेशक प्रो. महेश जी ठक्कर के मार्गदर्शन में “भ्रष्टाचार विरोधी और सतर्कता मामलों” पर एक दिवसीय कार्यशाला आयोजित की। मुख्य अतिथि व वक्ता श्री राजीव वर्मा (पूर्व निदेशक, केन्द्रीय सतर्कता आयोग) ने सतर्कता तंत्र, भ्रष्टाचार निरोधक उपायों, शिकायत निवारण तंत्र तथा सीवीसी की भूमिका पर विस्तृत जानकारी दी और वास्तविक उदाहरणों के माध्यम से भ्रष्टाचार के दुष्प्रभावों को रेखांकित किया। अपने स्वागत भाषण में प्रो. ठक्कर ने विज्ञान और शासन में ईमानदारी के महत्व को रेखांकित करते हुए ऐसी कार्यशालाओं को संस्थागत विकास के लिए आवश्यक बताया। कार्यक्रम में वैज्ञानिकों, कर्मचारियों और शोधार्थियों ने सक्रिय भागीदारी की। इसी अवसर पर सतर्कता जागरूकता सप्ताह भाषण प्रतियोगिता के विजेताओं को सम्मानित किया गया।

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस 2025 समारोह

बीएसआईपी, लखनऊ ने 28 फरवरी 2025 को **राष्ट्रीय विज्ञान दिवस** को **विकसित भारत के लिए विज्ञान और नवाचार में वैश्विक नेतृत्व हेतु भारतीय युवाओं का सशक्तिकरण** विषय पर उत्साहपूर्वक मनाया। मुख्य अतिथि डॉ. अनिल रस्तोगी ने बीएसआईपी की हाल की वैज्ञानिक उपलब्धियों जैसे यूएसवी, माइक्रो-सीटी सुविधा और कोयला गुणवत्ता मूल्यांकन प्रयोगशाला की सराहना करते हुए युवाओं को विज्ञान को कला व संस्कृति से जोड़ने की प्रेरणा दी। कार्यक्रम की अध्यक्षता निदेशक प्रो. महेश जी. ठक्कर ने की, जिन्होंने नवाचार और रमन प्रभाव के महत्व पर प्रकाश डाला। विशेष व्याख्यान में डॉ. श्रीनिवास बिकिना ने आर्कटिक-अंटार्कटिक में कालिख के प्रभावों पर अपने शोध निष्कर्ष प्रस्तुत किए। साथ ही 120 से अधिक विद्यार्थियों ने भाषण व पोस्टर प्रतियोगिताओं में भाग लिया तथा "एक दिन वैज्ञानिक के रूप में" पहल के तहत प्रयोगशाला भ्रमण और संवादात्मक सत्रों के माध्यम से वैज्ञानिक कार्य का अनुभव प्राप्त किया।

अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भागीदारी

सुश्री आर्या पांडे और श्री सूरज कुमार साहू ने अंतर्राष्ट्रीय परागकण विज्ञान कांग्रेस/अंतर्राष्ट्रीय जीवाश्म वनस्पति विज्ञान संगठन सम्मेलन (IPC/IOPC) 2024 में, जो प्राग, चेक गणराज्य में आयोजित किया गया था, में मौखिक प्रस्तुति दी। उन्होंने प्राग के चार्ल्स विश्वविद्यालय में आयोजित REVEALS मॉडल पर एक कार्यशाला को भी सफलतापूर्वक पूर्ण किया।

डॉ. पूनम वर्मा, वैज्ञानिक बीएसआईपी ने जून, 2024 में फ्रांस के मोंटपेलियर में AASP-द पेलिनोलॉजिकल सोसाइटी की 56वीं वार्षिक बैठक व कार्यक्रम के दौरान आयोजित क्षेत्रीय कार्यशाला में भी प्रतिभाग किया। इस कार्यक्रम के दौरान **उच्च वर्षा ने प्रारंभिक इओसीन जलवायु अनुकूलतम (EECO) के दौरान पुराउष्णकटिबंधीय वर्षावनों की तन्यक्ता : पश्चिमी भारत से पेलिनोलॉजिकल साक्ष्य** शीर्षक पर अपना शोध प्रस्तुत किया और **क्वाटरनरी से परे** शीर्षक सत्र की अध्यक्षता भी की।

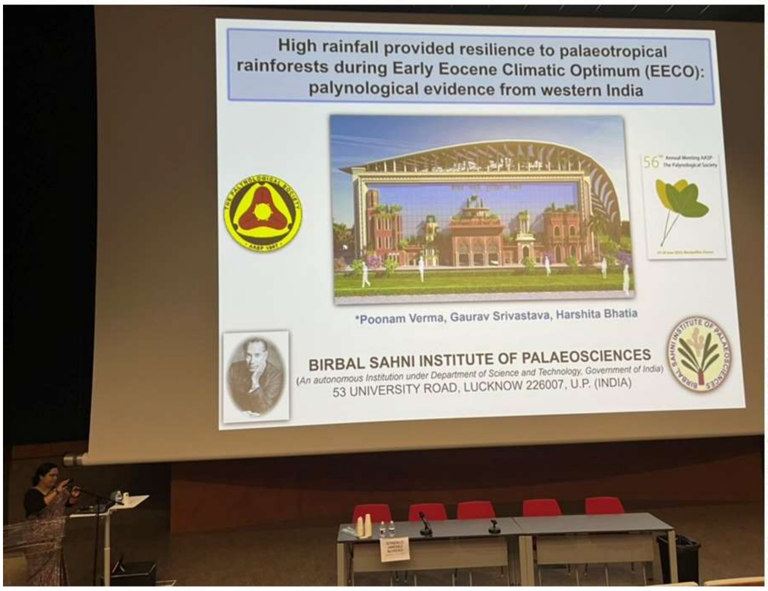

धरती की कहानी, जीवाश्मों की जुबानी — बीएसआईपी संग्रहालय (2024–25)

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (BSIP) का संग्रहालय दुर्लभ जीवाश्मों और नमूनों के संरक्षण के साथ-साथ जीवंत प्रदर्शनी, सूचनात्मक सामग्री और outreach कार्यक्रमों के माध्यम से भू-विज्ञान के प्रति जन-जागरूकता बढ़ाता है। विज्ञान मेलों, एक्सपो और सामुदायिक आयोजनों में इसकी सक्रिय भागीदारी जीवाश्म साक्षरता को प्रोत्साहित करती है।

वर्ष 2024–25 में 15 से अधिक विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं संस्थानों के साथ कई गणमान्य व्यक्तियों ने संग्रहालय का भ्रमण किया और इसकी प्रशंसा की जिनमें प्रमुख हैं: **डॉ. सुन्दर मनोहरन** (महानिदेशक, पं. दीनदयाल ऊर्जा विश्वविद्यालय) – विज्ञान और समाज को जोड़ने में संग्रहालय की भूमिका पर बल दिया। **प्रो. जगत भूषण नड्डा** (निदेशक, कंसोर्टियम फॉर एजुकेशनल कम्युनिकेशन) – विज्ञान शिक्षा पर इसके प्रभाव की सराहना की। **प्रो. प्रतिभा**

गोयल (कुलपति, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय) – शैक्षिक कार्यक्रमों की महत्ता को रेखांकित किया। **डॉ. अनिल कुमार रस्तोगी** (पूर्व वैज्ञानिक, सीएसआईआर-सीडीआरआई एवं अभिनेता) – युवाओं को प्रेरित करने और विज्ञान जागरूकता बढ़ाने में इसके प्रयासों की प्रशंसा की।

शोध प्रबंध सारांश

शोधकर्ता का नाम	डॉ बिनीता फर्तियाल
शोध का शीर्षक	ट्रांस हिमालय क्षेत्र, लद्दाख में अंतिम क्वाटरनरी काल के दौरान अवसादन: जलवायु और टेक्टोनिक्स हेतु निहितार्थ
पर्यवेक्षक	भूगर्भ विज्ञान विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय
संबद्धता	कुमाऊँ विश्वविद्यालय, भूविज्ञान विभाग में डॉक्टरेट ऑफ साइंस (D.Sc.) की प्रथम डिग्री
पुरस्करण वर्ष	2024

सारांश

यह शोध कार्य भारत के ट्रांस-हिमालय क्षेत्र में स्थित लद्दाख क्षेत्र में अंतिम क्वाटरनरी काल के दौरान की विवर्तनिक और जलवायु संबंधी इतिहास को उजागर करता है। इस क्षेत्र में स्थित सिन्धु नदी घाटी और इसकी सहायक नदियों जैसे तांगसे -श्योक नदी घाटियों में पाए गए अवसादी अभिलेखों का अध्ययन किया गया है। लद्दाख क्षेत्र में महाद्वीपीय स्तर की भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं ने इस क्षेत्र के भूदृश्य की आधारभूत रूपरेखा तैयार की है, जबकि क्षेत्रीय और स्थानीय स्तर की भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में टेक्टोनिक्स और जलवायु ने स्थलाकृतियों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जलवायु प्रणालियाँ किसी भी क्षेत्र की भूआकृतिक गतिशीलता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसलिए ठंडे, शुष्क, ऊँचाई वाले और विवर्तनिक रूप से सक्रिय लद्दाख क्षेत्र, जो कि पश्चिमी तिब्बती पठार में स्थित है, इसका अपवाद नहीं है। अंतिम क्वाटरनरी काल के दौरान इस क्षेत्र में भूदृश्य और अवसादन प्रणालियों में भारी परिवर्तन देखने को मिलता है, जैसा कि हिमनदीय, नदीय, कोलुवियल और झीलों से संबंधित अवसादों में दिखता है, जो सिंधु और इसकी सहायक नदियों (श्योक, नुब्रा, तांगसे, हैनले, ज़ांस्कार, सुरु, वाखाचू, द्रास) की घाटियों में स्पष्ट रूप से उजागर होते हैं। हालाँकि नवविवर्तनिक, मौसमीय अपक्षय और तीव्र अपरदन के सम्मिलित प्रभावों के कारण ये अवसादी परतें काफी हद तक नष्ट हो चुकी हैं, फिर भी ये परतें घाटियों के दोनों किनारों पर लगभग सतत रूप में या खंडों में, व्यापक रूप में संरक्षित हैं। हिमनदीय झीलों से प्राप्त उच्च-विभेदन वाले पुराजलवायु अभिलेख प्रस्तुत किए गए हैं, जो जलवायु की भूमिका, इसके प्रेरक कारकों और पर्वतीय स्थलाकृति के विकास को बेहतर समझने में मदद करते हैं। इस क्षेत्र में दीर्घकालिक संतुलन की स्थिति में हुई जलवायु विविधता और क्वाटरनरी काल में विवर्तनिक अस्थिरता के प्रमाण भी देखे गए हैं।

शोधकर्ता का नाम	डॉ राज कुमार
शोध का शीर्षक	जैसलमेर बेसिन, राजस्थान के मेसोज़ोइक तलछट से जीवाश्म विज्ञान संबंधी रिकॉर्ड: पुरा-पर्यावरणीय निहितार्थ
पर्यवेक्षक	डॉ नीलम (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ); प्रो. बिंध्याचल पांडे (बी. एच. यू., वाराणसी)
संबद्धता	भूविज्ञान विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत
पुरस्करण वर्ष	2024

सारांश

राजस्थान का जैसलमेर बेसिन मेसोजोइक युग की एक महत्वपूर्ण भूवैज्ञानिक संरचना है, जिसकी अवसादी अनुक्रम प्रारंभिक जुरासिक से लेकर प्रारंभिक-मध्य एल्बियन काल तक फैली हुई हैं। इस अध्ययन में इस बेसिन की पाँच प्रमुख लिथोस्ट्रैटिग्राफिक संरचनाओं - लाठी, जैसलमेर, भदासर, परिवार और हाबूर - का विश्लेषण किया गया है। कुल 14 स्तरीकृत खंडों से शैल नमूने, परागकण , पैलीनोफैसिज़ और पौधों के मेगाफॉसिल्स एकत्र किए गए हैं। तमिरा राय मंदिर (लाठी फॉर्मेशन), भदासर रिज और मोकल नाला (भदासर फॉर्मेशन), तथा सेरावा (परिवार फॉर्मेशन) खंड विशेष रूप से वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पाए गए हैं, जहाँ से उच्च गुणवत्ता के पैलीनोलॉजिकल और वनस्पति जीवाश्म डेटा प्राप्त हुए। इस शोध का मुख्य उद्देश्य इन क्षेत्रों से प्राप्त लिथोस्तंभों)शिलाखंडों(का मापन, विभेदन एवं विवरण प्रस्तुत कर शैलस्तरात्मक अभिलेखों में सुधार करना है। इस परियोजना का प्रमुख लक्ष्य जैसलमेर बेसिन की मेसोज़ोइक चट्टानों में निहित पादप मेगाफॉसिल, पैलिनोमॉर्फ्स)परागकण एवं बीजाणु (तथा पैलिनोफेसीज़ का सम्यक् एवं

वैज्ञानिक विश्लेषण करना है। ये अध्ययन क्षेत्र की पुराजीवविज्ञानिक, पुरापारिस्थितिकीय और पुरापर्यावरणीय परिस्थितियों को समझने में सहायक सिद्ध होंगे। तमीरा राय मंदिर, भादसर रिज और मोकल नाला सेक्शन में पैलिनोफेसिस और परागजीवाश्म विश्लेषण के आधार पर विशिष्ट पैलिनोफेसिस समुच्चय की पहचान की गई है। जिसके पारिणाम स्वरूप तीनों सेक्शन से मूल्यवान परिणाम प्राप्त हुए हैं और ये पुराअवसादी और पुरापर्यावरणीय विश्लेषणों के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं। भदासर रिज और मोकल नाला खंडों से कुल 41 परागकण प्रजातियों की पहचान की गई है, जिनमें से 33 प्रजातियाँ पहली बार लेट टिथोनियन–निओकोमियन अनुक्रम से दर्ज की गई हैं। महत्वपूर्ण टैक्सा में *अरौकेरियासाइट्स ऑस्ट्रेलिस, कैलियालैस्पोराइट्स* समूह की विभिन्न प्रजातियाँ, *गौबिनीस्पोरा इंडिका*, और *पोडोकार्पिडाइट्स कैनाडेंसिस* शामिल हैं। *गौबिनीस्पोरा इंडिका,* की उपस्थिति से इस टैक्सन की आयु सीमा को विस्तारित करते हुए अब इसे प्रारंभिक ट्राइसिक से लेकर निओकोमियन तक माना गया है, जो पूर्व में केवल डामोदर बेसिन के प्रारंभिक–मध्य ट्राइसिक अनुक्रम से ज्ञात था। सेरवा सेक्शन से लगभग 100 से ज्यादा मेगा जीवाश्म बरामद किए गए हैं। विस्तृत अध्ययन में ऑर्डर बेनेट्टीटेल्स की दो प्रजातियों — *टाइलोफिलम कटचेंस* और *टाइलोफिलम एक्यूटिफोलियम* — की पहचान की गई। इनमें *टाइलोफिलम कटचेंस* की रिपोर्ट पहली बार परिवार फॉर्मेशन से हुई है। विशेष रूप *टाइलोफिलम* के व्यापक वितरण के साथ-साथ जीवाश्मकृत लकड़ी की उपस्थिति और बायोटर्बेशन के प्रमाण, उस काल में जैसलमेर बेसिन में हरित, तटीय, निम्नभूमि वनों की उपस्थिति की पुष्टि करते हैं।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जैसलमेर बेसिन की मेसोजोइक परतें न केवल भूवैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे प्राचीन पर्यावरण, जलवायु और वनस्पति की विस्तृत जानकारी भी प्रदान करती हैं। यह शोध भारतीय उपमहाद्वीप की भूवैज्ञानिक एवं पर्यावरणीय इतिहास को समझने में एक महत्वपूर्ण योगदान देता है।

शोधकर्ता का नाम	**डॉ. दिव्या सिंह**
शोध का शीर्षक	सेमरी समूह के कार्बोनेट शैलों का पुराजैविकी एवं भू-रसायनिकी अध्ययन, विंध्यन सुपरग्रुप, सोनभद्र जनपद, उत्तर प्रदेश, भारत
पर्यवेक्षक	प्रो. मुकुंद शर्मा (पूर्व वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ), प्रो. बिंध्याचल पाण्डेय (बी.एच.यू., वाराणसी); डॉ. संतोष कुमार पाण्डेय (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ)
संबद्धता	भूविज्ञान विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत
पुरस्करण वर्ष	2024

सारांश

विंध्यन सुपरग्रुप मध्य भारत का एक प्रमुख प्रोटेरोज़ोइक तलछटी बेसिन है, जिसमें लगभग 5000 मीटर मोटी तलछटी परतें पाई जाती हैं। इसमें बलुआ पत्थर, क्वार्ट्जाइट, शेल, चूना पत्थर, सिल्टस्टोन और किम्बरलाइट शामिल हैं। यह बेसिन पैलीयोप्रोटेरोज़ोइक से नियोप्रोटेरोज़ोइक काल के बीच सक्रिय रहा, और इसमें पृथ्वी के भूवैज्ञानिक इतिहास से जुड़े जैविक एवं वायुमंडलीय परिवर्तनों के महत्त्वपूर्ण प्रमाण मिलते हैं। विंध्यन सुपरग्रुप की लिथोस्ट्रेटिग्राफी, जीवाश्म विज्ञान, भू-कालक्रमिकी आदि पर काफी अध्ययन हुए हैं, लेकिन अब भी कई ज्ञानात्मक रिक्तताएँ हैं, जिन्हें भरने के लिए इस शोध में उन्नत तकनीकों का प्रयोग किया गया। मुख्य अध्ययन तीन कार्बोनेट इकाइयों पर केंद्रित है – कजराहट, सलखन और रोहतासगढ़ चूना पत्थर:

1) **कजराहट चूना पत्थर:** यह सबसे पुरानी रासायनिक अवसादी इकाई है जिसमें प्लाटेला नामक नया स्ट्रोमैटोलाइट प्रकार मिला। इसके भीतर जैविक संरचना जैसे फैन-फैब्रिक भी पाई गईं। विस्तृत भू-रासायनिक विश्लेषण (Re-Os डेटिंग, स्थिर समस्थानिक, ट्रेस व REE तत्व) से इसके समुद्री परिवेश, रेडॉक्स दशाओं और अवसादन की स्थितियों को समझा गया। उन्नत डेटिंग तकनीकों की सहायता से निष्कर्ष निकाला गया है कि ये आयु 'कोलंबियन महाद्वीपीय' के विघटन की शुरुआत से संबंधित हैं।

2) **सलखन चूना पत्थर:** यह इकाई माइक्रोफॉसिल्स और स्ट्रोमैटोलाइट्स के लिए प्रसिद्ध है। इसमें पाए गए माइक्रोफॉसिल्स जैसे सायनोबैक्टीरिया व एकाइनीट्स भारत में प्रीकैम्ब्रियन जीवन के सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माने जाते हैं। इस अध्ययन में पहली बार डायजेनेसिस (चट्टानों के परिवर्तन) के प्रभावों को दिखाया गया – जैसे कोशिकाओं की आकृति में बदलाव और संरचना का क्षय। विभिन्न प्रकार की चर्ट्स और डायजेनेटिक अवस्थाओं से यह भी स्पष्ट हुआ कि बेसिन में सूक्ष्म पर्यावरणीय बदलाव माइक्रोफॉसिल्स के संरक्षण को प्रभावित करते थे।

3) **रोहतासगढ़ चूना पत्थर:** पहले जिन संरचनाओं को नोड्यूल माना गया था, वे असल में कंक्रीशन हैं। इनके बनने के लिए आवश्यक पर्यावरणीय स्थितियाँ – जैसे उच्च जैविक उत्पादकता और कम तलछटीकरण दर – चिह्नित की गईं। इनकी उत्पत्ति बैक्टीरियल सल्फेट रिडक्शन और मिथेनोजेनेसिस जैसी प्रक्रियाओं से जुड़ी है, जो एनॉक्सिक से यूजिनिक पर्यावरण को दर्शाती है।

"बोरिंग बिलियन" अवधि, जो 1800 से 800 मिलियन वर्ष पूर्व (Ma) तक फैली हुई थी, जिसमें लगभग 1000 मिलियन वर्षों तक जैविक, भू-रासायनिक और टेक्टोनिक स्थिरता देखी गई थी, को वर्तमान शोध में चुनौती दी गई है। कजराहट की उम्र, δ13C मानों में उतार-चढ़ाव, और युकैरियोट्स के प्रमाण – सभी विवर्तनिक और जैविक सक्रियता को सिद्ध करते हैं। अतः विंध्यन बेसिन को एक जीवंत, जैविक-भूवैज्ञानिक रूप से सक्रिय क्षेत्र के रूप में देखा जाना चाहिए।

शोधकर्ता का नाम	डॉ प्रियंका सिंह
शोध का शीर्षक	उच्च हिमालय से उच्च-रिज़ॉल्यूशन लेट क्वाटर्नरी जलवायु पुनर्निर्माण: एक बहु-संकेतक (मल्टी-प्रॉक्सी) दृष्टिकोण
पर्यवेक्षक	डॉ. पी. मोर्तेकई, (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ), प्रो. कुलदीप प्रकाश, (बी.एच.यू., वाराणसी)
संबद्धता	भूविज्ञान विभाग, विज्ञान संस्थान, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश 221005
पुरस्करण वर्ष	2024

सारांश

शोध का कार्य मुख्य रूप से दो विषयों पर केंद्रित है:

1. पुराकालीन जलवायु (0–16 हजार वर्ष पूर्व) पुनर्निर्माण, और
2. उच्च हिमालय में ल्यूमिनेसेंस कालक्रम निर्धारण।

उच्च हिमालय की काला घाटी हिमनद में स्थित एक 4 मीटर गहरी प्राचीन हिमनदी झील की खोज एवं अध्ययन पुराकालीन जलवायु को समझने के लिए किया गया है । रेडियोकार्बन आयु निर्धारण की तुलना में ल्यूमिनेसेंस विधि से प्राप्त आयु में व्यवस्थित रूप से अधिक अंतर पाया गया, जिसका कारण तलछटों में पाए गए पैट्रोजेनिक जैविक कार्बन (OCpetro = 0.06%) को माना गया। लिपिड बायोमार्कर (एन-एल्केन संरचना) और रमन स्पेक्ट्रोमेट्री द्वारा ग्रेफाइट के रूप में पैट्रोजेनिक जैविक कार्बन की उपस्थिति की पुष्टि की गई है । सामान्य ल्यूमिनेसेंस डेटिंग विधि के अतिरिक्त, क्वार्ट्ज के भीतर विद्यमान फेल्डस्पार के सूक्ष्म समवेशों को ल्यूमिनेसेंस तकनीक के माध्यम से कालनिर्धारित किया गया, जिसके लिए समावेशआधारित डोज़ रेट की गणना हेतु एक नवीन प्रोटोकॉल विकसित किया गया।

स्थिर कार्बन समस्थानिक संरचना ($\delta^{13}C$), तलछट में कुल जैविक कार्बन (TOC), पर्यावरणीय चुम्बकत्व के अंतः-पैरामीट्रिक अनुपात, अंतिम सदस्य मॉडलिंग द्वारा प्राप्त कण आकार डेटा, पराग-फेसिस, n-एल्केन डेटा और भू-रासायनिक संकेतकों के विश्लेषण के आधार पर कर, उच्च हिमालयी क्षेत्र की जलवायु का पिछले लगभग 16 हजार वर्षों (15.3 ± 3.0 हजार वर्ष) का उच्च संकल्प (औसतन 35-वर्षीय) जलवायु पुनर्निर्माण किया गया। अवरोध रहित अनुक्रमण विश्लेषण (Principal Componant Analysis , PCA) – जिसे छोटे पर्यावरणीय ग्रेडिएंट के कारण अपनाया गया है, से यह संकेत प्राप्त हुआ कि इन संकेतकों में परिवर्तन एक प्रमुख घटक के कारण हुआ। संयमित अनुक्रमण विश्लेषण (Redundancy Analysis,, RDA) द्वारा यह प्रमुख घटक वर्षा के साथ संबद्धध पाया गया जिसे PCA 1 स्कोर और डोंगगे गुफा से प्राप्त $\delta^{18}O$ मूल्यों के बीच सहसंबद्धध से पुष्ट किया गया था। इसके अतिरिक्त, Granger कारणात्मकता परीक्षण से यह निष्कर्ष निकला कि PCA 1 स्कोर और δ18O मूल्यों के मध्य केवल सहसंबद्धध ही नहीं, बल्कि एक कारणात्मक संबंध भी विद्यमान है।

16 हजार वर्ष से पूर्व दीर्घकालिक पुराकालीन जलवायु पुनर्निर्माण उच्च हिमालय स्थित कुंती बनार घाटी की मोरेनों के विश्लेषण के माध्यम से किया गया। इस अध्ययन मे मोरेन के निर्माण की तीन प्रमुख अवधियाँ पाई गईं:

- 16 से 17 हजार वर्ष पूर्व,
- 21 से 26 हजार वर्ष पूर्व, और
- 41 से 81 हजार वर्ष पूर्व के मध्य

इस प्रकार, मोरेनों के आधार पर 16 – 80 हजार वर्ष की अविरल न रहने वाली दीर्घकालिक जलवायु स्थितियों का पुनर्निर्माण किया गया ।

इस अध्ययन में, कुंती बनार घाटी का सबसे प्राचीन मोरेन 80 हजार वर्ष पुराना पाया गया।

इस शोध में पहली बार, गैर-रेखीय टाइम सीरीज़ विश्लेषण विधियाँ जैसे कि – रिकरेंस क्वांटिफिकेशन एनालिसिस (RQA), रिकरेंट नेटवर्क एनालिसिस (RNA), और रिकरेंस मैट्रिक्स के लिए लैप्लासियन ईजेनमैप्स (LERM) का उपयोग पश्चिमी विक्षोभ (WD) और भारतीय ग्रीष्म मानसून (Indian Summer Monsoon, ISM) की जलवायुवीय भूमिका को पृथक करने के लिए किया गया।

शोधकर्ता का नाम	**डॉ देवेश्वर प्रकाश मिश्रा**
शोध का शीर्षक	तालचेर कोयला क्षेत्र, महानदी बेसिन, ओडिशा, भारत से पर्मियन-ट्राइएसिक तलछट का जैवस्तरीय और पुराजलवायु अध्ययन
पर्यवेक्षक	डॉ. श्रीकांत मूर्ति (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ); प्रो. बिन्ध्याचल पांडे (बी.एच.यू., वाराणसी)
सम्बद्धता	भूविज्ञान विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत
पुरस्करण वर्ष	2024

सारांश

यह शोध कार्य मुख्य रूप से पैलीनोमॉर्फ (बीजाणु एवं परागकण) के व्यवस्थित विश्लेषण पर आधारित है। इसमे क्रमिक पैलीनोसंघटन का निर्माण, बायोस्ट्रेटीग्राफिक शोधन और भारत एवं विदेशों के अन्य गोंडवाना बेसिनों से सहसंबंध, तथा अध्ययनित खंडों की आयु निर्धारण और उनसे प्राप्त पुराजलवायु संकेतकों की व्याख्या की गई है। इसके साथ ही, पैलीनोमॉर्फ और कार्बन स्थिर आइसोटोप का उपयोग पुरावनस्पति निर्धारण, निक्षेपण पर्यावरण निर्धारण हेतु पैलिनोफेसीज़ विश्लेषण एवं पैलियोवाइल्डफायर घटना के निर्धारण के लिए जीवाश्म चारकोल का अध्ययन किया गया है।

महानदी बेसिन में स्थित गोंडवाना शैल-आवरण भारत के छत्तीसगढ़ और ओडिशा राज्यों के क्षेत्रों में विस्तृत हैं। इनमें से तालचेर कोलफील्ड (वर्तमान अध्ययन क्षेत्र) 1800 वर्ग किमी क्षेत्रफल मे फैला हुआ है और 20°50′ और 21°15′ उत्तरी अक्षांशों और 84°20′ और 85°33′ पूर्वी देशांतरों के बीच स्थित है। इस कोलफील्ड का अधिकांश भाग ओडिशा के ढेंकनाल, अंगुल और संबलपुर जिलों में स्थित है। लिथोस्ट्रेटीग्राफिक दृष्टि से , अध्ययन क्षेत्र का आधार प्रीकैम्ब्रियन काल की चट्टानों से निर्मित है, जिनमें ग्रेनाइट, नीस, शिस्ट, फाइलाइट्स और एम्फीबोलाइट्स सम्मिलित हैं, जो तालचिर समूह के तालचिर संरचना द्वारा असंगत रूप से ढके हुए हैं, जिसके ऊपर क्रमशः दामुडा समूह की करहरबारी, बराकर, बैरन मेज़र और कामती संरचनाएं आरोही क्रम में स्थित हैं। वर्तमान अध्ययन के लिए कुल 73 चट्टानों के नमूने एकत्र किए गए हैं जिनका उपयोग पैलिनोलॉजिकल, जीवाश्म चारकोल, पैलिनोफेसीज और कार्बन स्थिर आइसोटोप विश्लेषण के लिए किया गया है । इनमें भरतपुर कोयला खान अनुभाग से 12 नमूने, जगन्नाथ कोयला खान अनुभाग से 14 नमूने, बोरहोल TTB -7 से 31 नमूने और बोरहोल TTB -10 से 16 नमूने सम्मिलित हैं।

इस अध्ययन में बीजाणुओं और परागों की 52 वंश एवं 123 प्रजातियों की पहचान की गई है। इनमें से बायोस्ट्रेटीग्राफिक दृष्टि से महत्वपूर्ण 48 प्रजातियों का व्यवस्थित रूप से वर्णन किया गया है। ये हैं *कैलामोस्पोरा प्लिकाटा, कैलुमिसपोरा फंगोसा, कैलुमिसपोरा बाराकारेंसिस, माइक्रोफोवेओलाटिसपोरा फोवोलाटा, माइक्रोबाकुलिसपोरा टेंटुला, वेरुकोसिसपोराइट्स ट्राइसिकस, वेरुकोसिसपोराइट्स डेंसस, ओस्मुंडासिडाइट्स सेनेक्टस, इंडोट्राइराडाइट्स स्पार्सस, इंडोट्राइराडाइट्स कोरबेन्सिस, गोंडिसपोराइट्स रानिगंजेंसिस, गोंडिसपोराइट्स रेटिकुलटस, लुंडब्लाडिस्पोरा रानिगंजेंसिस, डेंसोइसपोराइट्स कॉन्टैक्टस, लुंडब्लाडिस्पोरा डेंसिपिनोसा, लुंडब्लाडिस्पोरा रिकर्वटा, लुंडब्लाडिस्पोरा माइक्रोकोनाटा, लुंडब्लाडिस्पोरा विलमोटी, प्लिकैटिपोलेनाइट्स गोंडवेनेंसिस, पैरासैकसाइट्स कोरबेन्सिस, पैरासैकाइट्स ऑब्स्क्यूरस, डेंसिपोलेनाइट्स डेंसस, डेंसिपोलैनाइट्स इनविसस, डेंसिपोलेनाइट्स इंडिकस, डेन्सिपोलेनाइट्स मैग्नीकोर्पस, स्ट्रिओमोनोसाइट्स ओवेटस, गुट्टुलापोलेनाइट्स हैनोनिकस, प्लेफोर्डियास्पोरा कैन्सेलोसा, प्लेफोर्डियास्पोरा क्रेनुलता, प्लेफोर्डियास्पोरा हेक्सारेटिकुलता, शेउरिंगिपोलेनाइट्स मैक्सिमस, शेउरिंगिपोलेनाइट्स टेंटुलस, शेउरिंगिपोलेनाइट्स बाराकारेंसिस, एलिसपोराइट्स डेमुडीकस, एलिसपोराइट्स ओपी, एलिसपोराइट्स इंडिकस, क्लाउसीपोलेनाइट्स शाउबर्गेरी, सैत्सांगिसाकाइट्स ट्राइसिकस, फाल्सीस्पोराइट्स जैपफेई, फाउनिपोलेनाइट्स वेरियस, फौनिपोलेनाइट्स सिंगरौलीएंसिस, स्ट्रिएटोपोडोकार्पाइट्स मैग्नीफिकस, वर्टिसिपोलेनाइट्स गिबोसस, क्रिसेंटिपोलेनाइट्स फ्यूस्कस, लुनाटिसपोराइट्स पेलिएन्सिस, लुनाटिसपोराइट्स पेलुसीडस, राइज़ोमास्पोरा इंडिका, क्रेम्पिपोलेनाइट्स इंडिकस.* पैलिनोलॉजिकल विश्लेषण के परिणामस्वरूप प्रारंभिक पर्मियन से प्रारंभिक ट्राइसिक अंतराल के दौरान अध्ययन किए गए खंडों (भरतपुर और जगन्नाथ कोयला खदान खंड; बोरहोल TTB -7 और TTB -10) में क्रमिक पैलिनोसंघटन का निर्माण हुआ है। सामान्य टैक्सा की उपस्थिति के आधार पर, वर्तमान कार्य के तहत पैलिनोसंघटन का भारत और दुनिया के अन्य हिस्सों में पहले से ही खोजे गए गोंडवाना बेसिन के साथ

सहसंबंध का प्रयास किया गया है, जिसका उपयोग अध्ययन किए गए खंडों को आयु निर्दिष्ट करने में किया गया है।

जीवाश्म चारकोल विश्लेषण केवल भरतपुर कोयला खदान अनुभाग, जगन्नाथ कोयला खदान अनुभाग और बोरहोल TTB -7 के लिए किया गया है। बड़े आकार के मैक्रोस्कोपिक चारकोल खंड, बिना घिसे किनारे और अच्छी तरह से संरक्षित शारीरिक विवरणो की प्रचुरता चारकोल सामग्री की पैराऑटोकथोनस उत्पत्ति का संकेत देती है। जगन्नाथ कोयला खदान अनुभाग और बोरहोल TTB -7 के लिए एक पैलीनोफेसीज़ अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन में पैलियोडिपोजिशनल सेटिंग्स को समझने के लिए इन खंडों में पैलीनोफेसीज़ संयोजनों का विभेदन किया गया है।

कार्बन स्थिर समस्थानिक विश्लेषण केवल बोरहोल TTB-7 और TTB-10 के लिए किया जाता है। अंतिम पर्मियन और प्रारम्भिक ट्राइसिक रिकॉर्ड में इन बोरहोल खंडों में कुल कार्बनिक कार्बन (TOC) प्रतिशत परिवर्तनशील पाया गया है। δ^{13}C मान प्रारम्भिक ट्राइसिक तलछट की तुलना में अंतिम पर्मियन में अपेक्षाकृत कम उतार-चढ़ाव प्रदर्शित करता है। पर्मियन/ट्राइसिक सीमा के पार ~9.4‰ का महत्वपूर्ण कार्बन समस्थानिक ऑफ़सेट पृथ्वी के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में व्यापक पर्यावरणीय परिवर्तन का संकेत देता है। यह परिवर्तन इस अवधि के दौरान घटित वैश्विक एनॉक्सिया से संबंधित है, जो साइबेरियन ट्रैप्स के ज्वालामुखीय विस्फोट और या मीथेन क्लैथ्रेट गैसीकरण के तीव्र उत्सर्जन से जुड़ा हो सकता है।

शोधकर्ता का नाम	**डॉ हिदायतुल्लाह**
शोध का शीर्षक	चतुर्थक काल के अंत में पश्चिमी उष्णकटिबंधीय हिंद महासागर की पुरा समुद्र विज्ञान का पुनर्निर्माण
पर्यवेक्षक	डॉ. पवन गोविल, (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ), डॉ. रजनी पंचांग, (एसोसिएट प्रोफेसर, पर्यावरण विज्ञान विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे)
संबद्धता	एसीएसआईआर अकादमिक केंद्र: बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ- 226007
पुरस्करण वर्ष	2024

सारांश

वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य चतुर्थक काल के अंत के दौरान पश्चिमी उष्णकटिबंधीय हिंद महासागर (पश्चिमी अरब सागर और मोजाम्बिक चैनल के तट के पास) में पुरामानसून, पुरा उत्पादकता स्वरूप, ऊपरी महासागरीय जल स्तंभ स्तरीकरण और ऊपरी महासागर की तापीय संरचना में विविधताओं को समझना है। प्लैंक्टोनिक फोरामेनिफ़ेरा, कुल कार्बनिक पदार्थ (TOC), δ^{13}Corg, कैल्शियम कार्बोनेट प्रतिशत (wt%), ऑक्सीजन (δ18OG. ruber और δ^{18}ON. dutertrei) और कार्बन (δ13CG. ruber) फोरामेनिफ़ेरा के समस्थानिकों की सापेक्ष प्रचुरता के आधार पर दो समुद्री तलछट कोर (VM 3504-PC और 47-PC) पर एक मल्टीप्रॉक्सी विश्लेषण किया गया। दोनों कोर वीएम3504-पीसी और 47-पीसी का कालक्रम रेडियोकार्बन (14C) तिथियों (क्रमशः प्रत्येक कोर से पांच और चार) और δ18OG. ruber और वैश्विक स्टैक LR04 के बीच टाई पॉइंट्स (VM 3504-PC और 47-PC प्रत्येक से नौ) का उपयोग करके स्थापित किया गया है। अध्ययन में कोर वीएम3504-पीसी और 47-पीसी प्रत्येक से क्रमशः ~172 kyr, BP (औसत नमूना रिज़ॉल्यूशन ~940 वर्ष) और ~196.6 kyr, BP (औसत नमूना रिज़ॉल्यूशन ~1.7 kyr, BP) की अवधि को शामिल किया गया है।

इस शोध का परिणाम मध्य-MIS 4 के दौरान, सुपोषी प्रजातियों की बढ़ी हुई सापेक्ष बहुतायत, अल्पपोषी प्रजातियों की सापेक्ष बहुतायत में हुई सहवर्ती कमी और घटते δ^{18}OG. ruber के आधार पर हिमनदों के गर्म होने के संकेत का नया साक्ष्य प्रदान करते हैं। दिलचस्प बात यह है कि इस अध्ययन में यह भी बताया गया है कि हेनरिक घटना H6 और H4 के दौरान अपेक्षाकृत मजबूत अटलांटिक मेरिडियन ओवरटर्निंग सर्कुलेशन (AMOC) और मानसूनी हवा की मजबूती अन्य शेष हेनरिक घटना से देखी गई है, जो उच्च उत्पादकता और बढ़े हुए कार्बनिक पदार्थ संरक्षण को दर्शाती है जिसके कारण पश्चिमी अरब सागर में ऊपरी थर्मोक्लाइन की ओर मध्यवर्ती जल द्रव्यमान (एएआईडब्ल्यू/एसएएमडब्ल्यू; AAIW/SAMW) का कमजोर वायु-संचार हुआ। हिमयुग (MIS 6) के दौरान, महासागर सतह स्तरीकरण अत्यधिक स्पष्ट था, जिसमें अल्पपोषी प्रजातियां प्रचुर मात्रा में थीं, जबकि मिश्रित परत सुपोषी प्रजातियां अपेक्षाकृत कम प्रचुर मात्रा में थीं। MIS 2 का परिणाम दर्शाता है कि सुपोषी प्रजातियों के साथ-साथ थर्मोक्लाइन में रहने वाली प्रजातियों की उपस्थिति में मध्यम वृद्धि हुई है और अल्पपोषी प्रजातियों की सापेक्ष प्रचुरता में कमी, जो इंगित करता है कि शीतकालीन संवहन मिश्रण ने ऊपरी थर्मोक्लाइन और मिश्रित परत में उत्पादकता को उत्तेजित किया, जिसके परिणामस्वरूप MIS 6 की तुलना में ऊपरी महासागरीय जल स्तंभ में कम स्तरीकरण हुआ। समाप्ति 2 (T2) और समाप्ति 1 (T1) पर कैल्शियम कार्बोनेट (उच्च) और TOC (निम्न) के बीच अधिक स्पष्ट व्युत्क्रम संबंध की सूचना दी गई है, जो यह बताता है कि अपेक्षाकृत बहुत कम कार्बन डाइऑक्साइड की उपलब्धता और कम अवसादन दर के कारण कैल्शियम कार्बोनेट का विघटन नगण्य था, इस प्रकार, मध्यवर्ती जल द्रव्यमान के अच्छे वायु-संचार के कारण घुलित ऑक्सीजन सांद्रता की उपस्थिति डूबने वाले कार्बनिक

पदार्थों के उच्च पुनर्खनिजीकरण और तलछट में कार्बनिक पदार्थों की कम दफन दक्षता प्रदान करती है। अंतरहिमनद काल MIS 5e और अभिनव युग के दौरान, कैल्शियम कार्बोनेट और TOC के बीच एक मजबूत सहसंबंध पाया गया, जो दर्शाता है कि कैल्शियम कार्बोनेट का विघटन उच्च अवसादन दर की उपस्थिति और वायूपीय प्रक्रिया द्वारा स्थलीय निवेश से संबंधित हो सकता है। इसके अलावा, कार्बनिक पदार्थों का गहन संरक्षण और कैल्शियम कार्बोनेट का अच्छा संरक्षण, जो कार्बनिक पदार्थों के तेजी से डूबने का संकेत देता है और ऑक्सीजन युक्त मध्यवर्ती जल द्रव्यमान के खराब वायु-संचार के कारण जीवों द्वारा होने वाले क्षरण में महत्वपूर्ण कमी प्रदान करता है तथा साथ ही तलछट के शीघ्र निपटान से मध्य-MIS 4 के दौरान विघटन प्रक्रिया से कार्बोनेट कण को पलायन में मदद मिल सकती है। प्लैंक्टोनिक फोरामिनिफेरल संयोजन और ऑक्सीजन समस्थानिक (δ^{18}OG. ruber और δ^{18}ON. dutertrei) के आधार पर, परिणाम, मिश्रित परत प्रजातियों (%) में वृद्धि का सुझाव देते हैं और, इसलिए, अंतर-हिमनद अवधियों (MIS 5 और 1) के दौरान मिश्रित परत के मोटे होने के तहत सतह स्तरीकरण में कमी और थर्मोक्लाइन की गहराई मे वृद्धि होती है और हिमनद अवधि (MIS 6) के दौरान इसके प्रतिकूल स्थिति को दर्शाता है।

संयोजनों और ऑक्सीजन के समस्थानिक अध्ययन के आधार पर, पुलेनियाटिना मैक्सिमम इवेंट (PME) मध्य-होलोसीन (8 से 5 किलो वर्ष, BP) के दौरान लेख्यांकित की गई थी, जो यह सुझाव देती है कि सकारात्मक आईओडी जैसी औसत स्थिति और अल नीना घटना, मोजाम्बिक चैनल के तट के पास आईटीएफ वॉल्यूम परिवहन को कम कर दिया। विभिन्न जल राशियों के ऊर्ध्वाधर मिश्रण और दक्षिणी गोलार्ध के ललाट तंत्र के उत्तर की ओर प्रवास के कारण निचले से ऊपरी थर्मोक्लाइन पर उच्चतम उत्पादकता दर्ज की गई, जैसा कि हिमयुग (MIS 4 और 2) और स्थैतिक काल (MIS 5 D और 5 B) के दौरान सुपोषी प्रजातियों की सापेक्ष प्रचुरता में वृद्धि से संकेत मिलता है। दोनों कोर स्थानों (VM 3504-PC और 47-PC) में δ^{13}Corg का मान यह सुझाव देता है कि कार्बनिक पदार्थों का मिश्रित स्रोत है जैसे समुद्री पादप प्लवक और निकटवर्ती महाद्वीपों से वायूपीय प्रक्रिया के माध्यम से स्थलीय रूप से प्राप्त कार्बनिक पदार्थों का निवेश है। समाप्ति T2 और T1 पर, निचले से ऊपरी थर्मोक्लाइन सुपोषी प्रजातियों की सापेक्ष प्रचुरता में गिरावट, ऊर्ध्वाधर मिश्रण में कमी और दक्षिणी गोलार्ध ललाट प्रणाली में दक्षिण की ओर बदलाव के कारण उत्पादकता में कमी को इंगित करती है। अध्ययन क्षेत्र में ऑक्सीजन युक्त मध्यवर्ती जल राशियों से प्रभावित होने के कारण TOC सांद्रता के आधार पर संरक्षण क्षमता कम है तथा अपघटन अधिक है। MIS 6 और MIS 3 के अंतिम चरण के दौरान, TOC की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक थी, जिससे यह अनुमान लगाया गया कि कार्बनिक पदार्थ महासागरीय जल स्तम्भ में न्यूनतम क्षरण के साथ गहरे जल वाले क्षेत्रों में पहुंच रहे थे। MIS 5, 4, 2 और 1 के दौरान कम TOC प्रतिवेदित किया गया, जो ऑक्सीजन युक्त मध्यवर्ती जल द्रव्यमान की उपस्थिति के कारण कार्बनिक पदार्थों के व्यापक क्षरण और कम संरक्षण का सुझाव देती है। MLS (%) और TLC (%) के साथ-साथ मिश्रित और थर्मोक्लाइन परत प्रजातियों ($\Delta\delta^{18}$Or-d) के बीच समस्थानिक अंतर के आधार पर यह सुझाव देता है कि अंतरहिमनद अवधियों (MIS 5 और MIS 3) के दौरान उथली थर्मोक्लाइन और हिमनद अवधियों (MIS 6, प्रारंभिक MIS 4 और MIS 2) के दौरान गहरी थर्मोक्लाइन दर्ज़ की गई है।

शोधकर्ता का नाम	**डॉ रिम्पी चेतिया**
शोध का शीर्षक	पश्चिमी राजस्थान के बारसिंघर और जालिपा खदानों के लिग्नाइट निक्षेपों की कार्बनिक भू-रासायनिक एवं शैल-वर्णिक विशेषताओं का अध्ययन
पर्यवेक्षक	डॉ. आर पी मैथ्यूस , (वैज्ञानिक, बी.एस.आई.पी., लखनऊ), प्रो. एम. पी. सिंह, (बी.एच.यू., वाराणसी)
संबद्धता	भूविज्ञान विभाग, विज्ञान संस्थान, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश – 221005
पुरस्करण वर्ष	2025

सारांश

यह अध्ययन भारत के पश्चिमी भाग में स्थित पेलियोसीन-इओसीन काल के लिग्नाइट-युक्त अवसादी अनुक्रमों पर आधारित है, जो मुख्यतः गुजरात और राजस्थान के क्षेत्रों में संरक्षित हैं। प्रारंभिक पेलियोजीन काल की आर्द्र (नम) और उष्ण (गर्म) "हॉटहाउस" जैसी जलवायु परिस्थितियों ने उष्णकटिबंधीय वर्षावनों (रेनफॉरेस्ट्स) के विस्तार को प्रोत्साहित किया, जिससे इन क्षेत्रों में विशाल लिग्नाइट निक्षेप (जमाव) बने। यद्यपि कुछ पूर्ववर्ती अध्ययन उपलब्ध हैं, फिर भी इन अनुक्रमों की वैज्ञानिक समझ अब भी अधूरी है। हाल के उच्च-रिज़ॉल्यूशन (सूक्ष्म स्तर के) अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो रहा है कि इन लिग्नाइट निक्षेपों का एक साथ विकास (कोएवोल्यूशन) नहीं हुआ, जैसा कि पहले अनुमानित था। बीकानेर-नागौर और बाड़मेर खनिज क्षेत्रों में लिग्नाइट-युक्त अनुक्रमों का अध्ययन एक नवीन तथा बहु-विषयक (मल्टीडिसिप्लिनरी) दृष्टिकोण से किया गया है। यह अध्ययन शैल (शेल) एवं

लिग्नाइट परतों की उत्पत्ति, स्रोत वनस्पति (सोर्स फ्लोरा) की पहचान, उसकी वनस्पति-भौगोलिक (फाइटोजियोग्राफिक) प्रवृत्तियाँ, रासायनिक वर्गिकी, प्राचीन अवसादन पर्यावरण(पालेयो-डिपोज़िशनल एन्वायरनमेंट, तथा संसाधन उपयोगिता की विस्तृत विवेचना करता है। इस हेतु कार्बनिक सूक्ष्मशिलाविज्ञान (ऑर्गैनिक पेट्रोग्राफी), परागकण विज्ञान (पैलीनोलॉजी), फील्ड एमिशन स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी (FESEM) और जैव-रासायनिक पद्धतियाँ (जैसे FTIR, दुर्लभ पृथ्वी तत्व – REE एवं ट्रेस एलिमेंट विश्लेषण) अपनाई गई हैं। इन जैविक एवं अजैविक संकेतकों (प्रॉक्सीज़) के माध्यम से प्राप्त सूचनाएँ भारतीय भूगर्भीय परिप्रेक्ष्य में विशेष महत्व रखती हैं।

बारसिंगसर (बीकानेर-नागौर बेसिन) और जालिपा (बाड़मेर बेसिन) के लिग्नाइट अनुक्रमों की वनस्पति स्रोत संरचना स्पष्ट रूप से भिन्न थी। विश्लेषण से पता चला है कि बारसिंगसर में मुख्यतः जिम्नोस्पर्म (नग्नबीज पौधों) की प्रधानता थी, जबकि जालिपा में प्रमुख रूप से एंजियोस्पर्म (आवृतबीज पौधे) पाए गए। यह पहली बार हुआ है कि पश्चिमी भारत के किसी लिग्नाइट क्षेत्र में बायोमार्कर (जैव संकेतक अणु) के माध्यम से जिम्नोस्पर्म की स्पष्ट प्रधानता दर्शाई गई है, जिसे परागकण विश्लेषण (पैलीनोलॉजिकल स्टडी) से भी समर्थन प्राप्त है।

पूर्ववर्ती अध्ययनों में यह दर्शाया गया था कि कांबे और कच्छ बेसिन (पश्चिम भारत) तथा असम-अराकान बेसिन (पूर्वोत्तर भारत) के लिग्नाइट में मुख्यतः डिप्टेरोकार्पेसी (Dipterocarpaceae) कुल के उष्णकटिबंधीय आवृतबीज पौधों का योगदान था। जबकि, बाड़मेर बेसिन के टरपेनॉइड (जैव-सुगंधित यौगिक) विश्लेषणों में यह संकेत मिले कि कुछ शंकुधारी पौधे (जैसे पोडोकार्पेसी – Podocarpaceae) का भी योगदान संभव था, परंतु बीकानेर-नागौर क्षेत्र में पहले इस प्रकार के जिम्नोस्पर्म से संबंधित टरपेनॉइड नहीं पहचाने गए थे। इसलिए, इस शोध में पहली बार विस्तृत प्राचीन रासायनिक वर्गिकी (पालेयो-केमोटैक्सोनॉमी) की गई है। पोडोकार्पेसी जैसे पौधे सामान्यतः गोंडवाना महाद्वीपीय भूखंडों (Gondwanaland) में सीमित थे। संभवतः माइक्रोकॉन्टिनेंटल टुकड़ों के बहाव (राफ्टिंग) और टेक्टोनिक संलयन (अक्रीशन) के माध्यम से इनकी लम्बी दूरी तक प्रसार हुआ। राजस्थान के पेलियोसीन लिग्नाइट में इस समूह की उपस्थिति – बायोमार्कर, परागकण एवं लकड़ी कोयला (चारकोल) कणों के माध्यम से – ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह पूर्ववर्ती "आइलैंड हॉपिंग" सिद्धांत की सीमाओं को उजागर करता है।

पुरापर्यावरण की दृष्टि से, बाड़मेर क्षेत्र के दलदली वन आज के बोर्नियो, सरावाक (मलेशिया) एवं कालिमंतान (इंडोनेशिया) के तटीय क्षेत्र जैसे हैं, जहाँ खारे पानी के मैंग्रोव वनों के पीछे निचले वर्षावन फैले हुए हैं। वहीं, बीकानेर क्षेत्र अधिक स्थलीय था जहाँ मीठे जल की अधिकता से वनस्पति अवशेषों की निरंतरता स्पष्ट है। अतः, बारसिंगसर में लिग्नाइट अधिक स्थलीय परिवेश में बना जबकि जालिपा में यह एक संक्रमणीय (मार्जिनल मरीन) वातावरण में बना।

यद्यपि दोनों बेसिनों में आर्द्र उष्णकटिबंधीय जलवायु रही, बारसिंगसर में बारंबार आग लगने के संकेत जैसे जले हुए लकड़ी के कोयले, दोनों प्रकार की वनस्पतियों (अनवृतबीजी और आवृतबीजी /एंजियोस्पर्म और जिम्नोस्पर्म) के चारकोल कण तथा उच्च प्रिस्टेन/फाइटेन (Pr/Ph) अनुपात पाए गए, जिससे स्पष्ट होता है कि वहाँ अपेक्षाकृत सूखे कालखंड भी थे। जालिपा में परिस्थितियाँ अधिक स्थिर एवं पश्चिमी भारत के अन्य लिग्नाइट क्षेत्रों जैसी थीं। दोनों खनिज क्षेत्रों में केरोजन प्रकार (कार्बनिक पदार्थ का प्रकार) और उसकी परिपक्वता के आधार पर ऊर्जा उत्पादन की अच्छी संभावना है। यद्यपि ये पूर्ण परिपक्व अवस्था में नहीं हैं, फिर भी इनका तकनीकी मूल्यांकन दर्शाता है कि पारंपरिक हाइड्रोकार्बन उत्पादन की क्षमता विद्यमान है। जैविक सूक्ष्म संरचना (मेसरल्स) और उनके अपवहन व्यवहार (adsorption/desorption) से यह ज्ञात हुआ कि जालिपा में ऊपर और नीचे की परतों में यह क्षमता अधिक है, जबकि बारसिंगसर में यह क्षमता नीचे की ओर बढ़ती है। दुर्लभ पृथ्वी तत्व (REE) और सूक्ष्म तत्व (ट्रेस एलिमेंट्स) के प्राथमिक विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि Cr, Pb, Th, V एवं Y जैसे तत्वों की औसत मात्रा विश्व कोयले के औसत से अधिक है। विशेष रूप से Scandium (Sc) की मात्रा दोनों क्षेत्रों में वैश्विक औसत से अधिक पाई गई है, जो भविष्य में आर्थिक दृष्टिकोण से अत्यंत उपयोगी हो सकती है।

बायोमार्कर विश्लेषण से बारसिंगसर की वनस्पति संरचना ऑस्ट्रेलिया के गिप्सलैंड बेसिन और न्यूज़ीलैंड के टारानाकी बेसिन से तुलनीय पाई गई, जो पश्चिमी भारत में पेलियोसीन वनस्पति क्षेत्र की समानता दर्शाती है। AGI (Angiosperm Gymnosperm Index) मूल्यों की तुलना से यह अनुमान लगता है कि ये लिग्नाइट परतें डेनियन और मास्ट्रिक्शियन (Danian–Maastrichtian) युगों की हो सकती हैं। बारसिंगसर में *वोडहाउसिया स्पिनाटा* (*Wodehouseia spinata*) की उपस्थिति, जो इस काल की विशेष वनस्पति थी, और अन्य शंकुधारी परागकणों की बहुतायत से इस काल निर्धारण को बल मिलता है। संपूर्णतः, यह अध्ययन पश्चिमी भारत के लिग्नाइट-युक्त अनुक्रमों की गहन समझ प्रदान करता है, जिसमें दो प्रमुख खनिज क्षेत्रों – बारसिंगसर (बीकानेर-नागौर) और जालिपा (बाड़मेर) – को आधार बनाया गया है। इस शोध की विशिष्टता यह है कि इसमें जैव-रासायनिक संकेतकों जैसे टरपेनॉइड्स का स्रोत-विशिष्ट विश्लेषण किया गया है, जो न केवल वनस्पति वर्गीकरण में सहायक है बल्कि प्राचीन वनस्पति-भौगोलिक संरचना (पुराजैवभौगोलिक/ पालेयोबायोजियोग्राफी) को समझने में भी एक प्रभावी टूल सिद्ध होता है।

हिन्दी के प्रयोग के लिए वर्ष 2025–26 का वार्षिक कार्यक्रम

क्र.सं.	कार्य विवरण	क क्षेत्र	ख क्षेत्र	ग क्षेत्र
1	हिंदी में मूल पत्राचार (ई-मेल सहित)	1.क क्षेत्र से क क्षेत्र को 100% 2.क क्षेत्र से ख क्षेत्र को 100 % 3. क क्षेत्र से ग क्षेत्र को 70 % 4. क क्षेत्र से क व ख क्षेत्र को 100 % के राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र के कार्यालय/व्यक्ति	1.ख क्षेत्र से क क्षेत्र को 90 % 2. ख क्षेत्र से ख क्षेत्र को 90% 3. ख क्षेत्र से ग क्षेत्र को 60 % 4. ख क्षेत्र से क व ख क्षेत्र को 90% के राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र के कार्यालय/व्यक्ति	1. ग क्षेत्र से क क्षेत्र को 60 % 2. ग क्षेत्र से ख क्षेत्र को 60 % 3. ग क्षेत्र से ग क्षेत्र को 60 % 4. ग क्षेत्र से क व ख क्षेत्र को 60 % के राज्य/ संघ राज्य क्षेत्र के कार्यालय/व्यक्ति
2	हिंदी में प्राप्त पत्रों का उत्तर हिंदी में दिया जाना	100 %	100 %	100 %
3	हिंदी में टिप्पण	80%	55%	35%
4	हिंदी माध्यम से प्रशिक्षण कार्यक्रम	75%	65%	35%
5	हिंदी टंकण करने वाले कर्मचारी एवं आशुलिपिक की भर्ती	80%	70%	45%
6	हिंदी में डिक्टेशन/की बोर्ड पर सीधे टंकण (स्वयं तथा सहायक द्वारा)	70%	60%	35%
7	हिंदी प्रशिक्षण (भाषा, टंकण, आशुलिपि)	100 %	100 %	100 %
8	द्विभाषी प्रशिक्षण सामग्री तैयार करना	100 %	100 %	100 %
9	जर्नल और मानक संदर्भ पुस्तकों को छोड़कर पुस्तकालय के कुल अनुदान में से डिजिटल सामग्री अथार्त हिंदी ई-पुस्तक, सीडी/डीवीडी,पैनड्राइव तथा अँग्रेजी और क्षेत्रीय भाषाओं से हिंदी में अनुवाद पर व्यय की गयी राशि सहित हिंदी पुस्तकों की खरीद पर किया गया व्यय	50%	50%	50%

10	हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में काम करने की सुविधायुक्त इलेक्ट्रोनिक उपकरणों जिनमें कंप्यूटर भी शामिल है, की खरीद	100 %	100 %	100 %
11	वेबसाइट द्विभाषी हो	100 %	100 %	100 %
12	नागरिक चार्टर तथा जन सूचना बोर्ड आदि द्विभाषी रूप में प्रदर्शित किए जाएं।	100 %	100 %	100 %
13	(i) मंत्रालयों/विभागों और कार्यालयों के अधिकारियों (उ.स/निदे./सं.स) तथा राजभाषा विभाग के अधिकारियों द्वारा अपने मुख्यालय से बाहर स्थित कार्यालयों का निरीक्षण (कार्यालयों का प्रतिशत)	30% (न्यूनतम)	30% (न्यूनतम)	30% (न्यूनतम)
	(ii) मुख्यालय में स्थित अनुभागों का निरीक्षण	30% (न्यूनतम)	30% (न्यूनतम)	30% (न्यूनतम)
	(iii) विदेश में स्थित केंद्र सरकार के स्वामित्व एवं नियंत्रण के अधीन कार्यालयों/उपक्रमों का संबंधित अधिकारियों तथा राजभाषा विभाग के अधिकारियों द्वारा संयुक्त निरीक्षण	वर्ष में कम से कम एक निरीक्षण		
14	राजभाषा संबंधी बैठकें (क) हिंदी सलाहकार समिति (ख) नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (ग) राजभाषा कार्यान्वयन समिति	 वर्ष में 2 बैठकें वर्ष में 2 बैठकें(प्रति छमाही एक बैठक) वर्ष में 4 बैठकें (प्रति तिमाही एक बैठक)		
15	कोड, मैनुअल, फार्म, प्रक्रिया साहित्य का हिंदी अनुवाद	100 %	100 %	100 %
16	मंत्रालयों/विभागों/ कार्यालयों/बैंक/उपक्रमों के एसे अनुभाग जहां संपूर्ण कार्य हिंदी में हो।	40%	30%	20%
सार्वजनिक क्षेत्र के उन उपक्रमों/ निगमों आदि, जहां अनुभाग जैसी कोई अवधारणा नहीं है, "क" क्षेत्र में कुल कार्य का 40% "ख" क्षेत्र में 15% कार्य हिन्दी में किया जाए।				

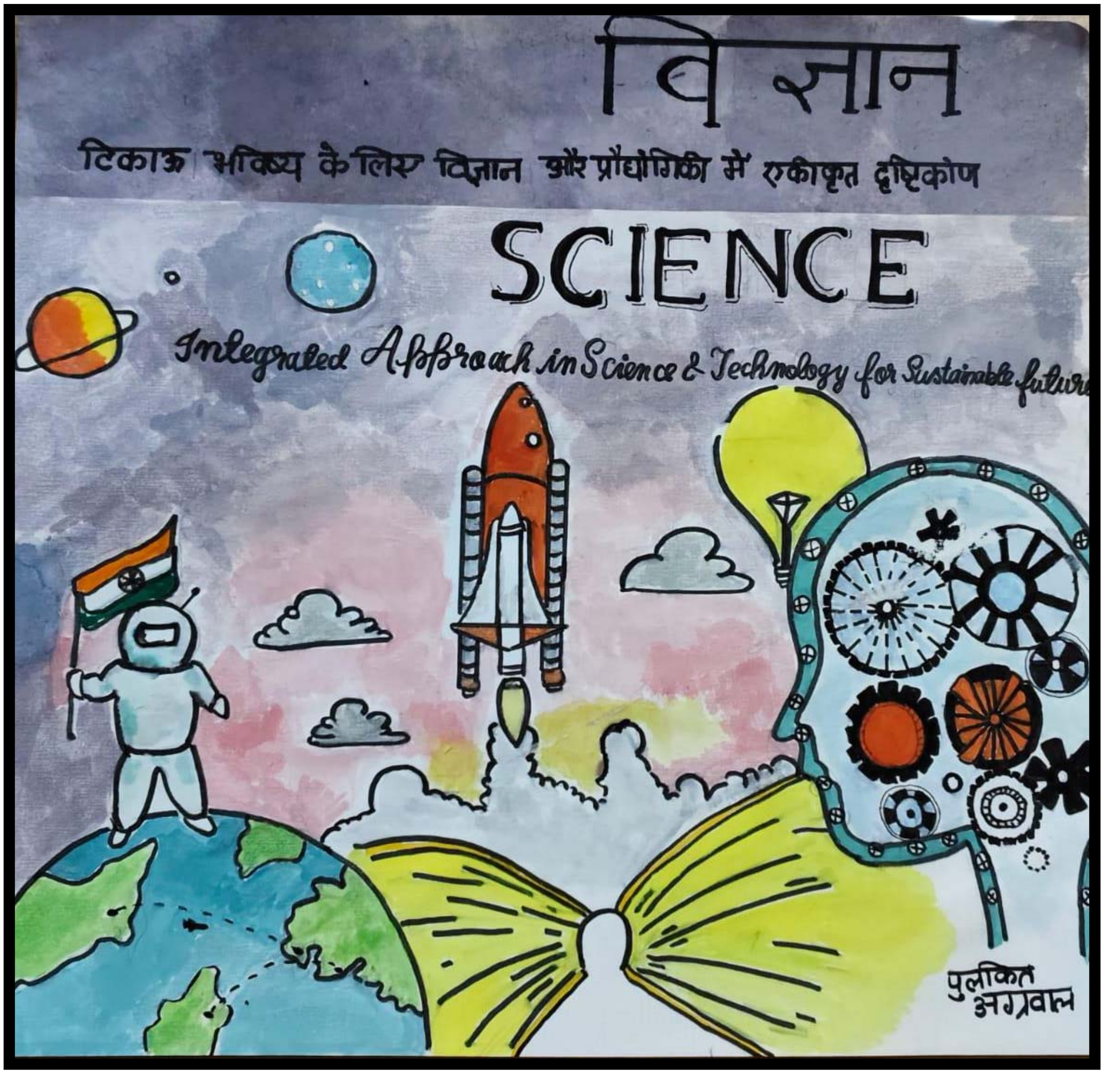

पुलकित अग्रवाल (सुपुत्र डॉ. नेहा अग्रवाल, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ) के नन्हें हाथों से !

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्थान,
भारत सरकार, नई दिल्ली
http://www.bsip.res.in